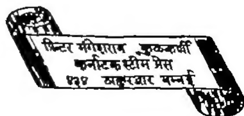
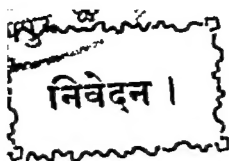
प्रकाशक—

नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग पो० गिरगांव बम्बई।







निवेदन ।

दिवगत दानवीर सेठ माणिकचन्दके नामको चिरस्मरणीय बनानेवाली ग्रन्थमालाका यह २१ वाँ ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। यह एक ग्रन्थ नहीं, किन्तु छोटे बडे २५ ग्रन्थोंका गुच्छक है। अब तक मालामें इस प्रकारके ६ गुच्छक प्रकाशित हो चुके हैं, यह सातवाँ गुच्छक है। आगे भी इस प्रकारके अनेक ग्रन्थगुच्छ प्रकाशित करनेकी हमारी इच्छा है। क्योकि हमारे दिगम्बराचार्यों और विद्वानोंके बनाये हुए इस तरहके छोटे छोटे किन्तु महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंकी सख्या बहुत अधिक है और उनके प्रकाशित होनेकी भी बहुत आवश्यकता है।

इस गुच्छकमें सब मिलाकर २५ ग्रन्थ हैं जिनमें ६ प्राकृत तथा अपभ्रंशके और शेष १९ सस्कृतके हैं। इनमें दो टीकासहित और शेष सब मूल मात्र हैं। प्राकृत ग्रन्थोंमें सिद्धान्तसार और निजात्माकष्टके अतिरिक्त शेष चारो ग्रन्थोंकी सस्कृतच्छाया नई बनवाई गई है और उसके कर्त्ता श्रीयुक्त प० पन्नालालजी सोनी हैं। इस सग्रहके अधिकांश ग्रन्थ अलभ्य नहीं तो दुर्लभ्य अवश्य हैं। बहुत कम सरस्वती-भडारोंमें इनकी प्रतियाँ हैं।

जिन जिन सज्जनोंकी हस्तलिखित प्रतियोंकी सहायतासे यह गुच्छक तयार हुआ है, उन सबका उल्लेख एक जुदा पृष्ठमें कर दिया गया है। यहाँ हम उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकाशित करके अनेकानेक साधुवाद दिये विना नहीं रह सकते। ग्रन्थमालाके लिए उनकी इस कृपाको हम बहुत बडी सहायता समझते हैं।

जैनधर्मभूषण श्रीयुक्त ब्रह्मचारी शीतलप्रसादके भी हम बहुत ही कृतज्ञ हैं जिनकी इस ग्रन्थमालाके प्रति हार्दिक सहानुभूति है और जिनके परिश्रम और प्रयत्नसे ग्रन्थमालाको लगभग दस हजार रुपयोंकी सहायता प्राप्त हो चुकी है।

हमारे अनेक मित्रोंकी और विद्वानोंकी शिकायत है कि ग्रन्थमालाका सम्पादन और संशोधन सन्तोषजनक नहीं होता है। अवश्य ही यह शिकायत निर्मूल नहीं है। ग्रन्थमालाके इस दोषको हम स्वीकार करते हैं और यह हमारी दृष्टिसे बाहर भी नहीं है; परन्तु इसको दूर करनेमें जो कठिनाइयाँ हैं वे भी साधारण नहीं हैं।

एक तो हमारा समाज इस विषयमें बहुत उदासीन है। साधारण लोगोंकी बात तो जाने दीजिए, बड़े बड़े पण्डितों और विद्वानों तकको इस कार्यसे कोई विशेष अनुराग नहीं है और यही कारण है कि बहुत कुछ प्रयत्न करनेपर भी ग्रन्थोंकी जितनी चाहिए उतनी हस्तलिखित प्रतियाँ हमें प्राप्त नहीं होती हैं और इसका फल यह होता है कि हमें अनेक ग्रन्थ केवल एक ही एक बुरी भली प्रतिके आधारसे मुद्रित कराना पड़ते हैं और इससे जैसा चाहिए वैसा संशोधन नहीं हो सकता है।

दूसरे ग्रन्थसंशोधन और सम्पादन करनेकी भी एक कला है और इस कलाके जाननेवाले तथा जी खोलकर पूरा पूरा परिश्रम करनेवाले अनुभवी विद्वानोंका हमारे समाजमें प्रायः अभाव है।

तीसरे ग्रन्थमालाका फण्ड बहुत ही थोड़ा है और इस लिए इस कार्यमें जितना चाहिए उतना खर्च नहीं किया जा सकता। जब तक इसके लिए दो चार वैतनिक विद्वान् स्थायीरूपसे न रक्खे जावें और उन्हें सम्पादन-संशोधन-कलाका अभ्यास न कराया जाय साथ ही हस्तलिखित ग्रन्थोंकी प्रतियाँ प्राप्त करनेमें सर्वसाधारण सज्जनों तथा विद्वानोंसे सहायता प्राप्त न हो तब तक इस दोषका सर्वथा दूर हो जाना कठिन है। फिर भी जहाँ तक बन सकता है इस विषयमें प्रयत्न अवश्य किया जाता है।

यह हम पहले ही जानते थे कि संस्कृत प्राकृत ग्रन्थोंकी बिक्री बहुत ही थोड़ी होती है, परन्तु हमें आशा थी कि जब लोगोंकी रुचि स्वाध्यायकी ओर झुकेगी और दानी धर्मात्माओंके द्वारा इन ग्रन्थोंकी सौ सौ दो दो सौ प्रतियाँ वितरण करनेके लिए खरीदी जाती रहेंगी। शुरू शुरूमें कुछ सज्जनोंने हमारी इस आशाको पूर्ण भी किया परन्तु अब तो सारा समाज ही इस ओरसे उदासीन दिखलाई देता है। समझमें नहीं आता कि जैनधर्मकी उन्नति और प्रभावना चाहनेवाले इस ज्ञानदानकी महिमाको कब समझेंगे?

अन्तमें इस गुच्छकके एक नोटके सम्बन्धमें थोड़ीसी सूचना देकर हम इस निवेदनको समाप्त करेंगे।

इस गुच्छकके पार्श्वनाथस्तोत्रके नीचे श्रीयुक्त पं० पन्नालालजी सोनीने इस प्रकारका नोट दिया है—"अस्य स्तोत्रस्य दशरामशरारूपा एकैव प्रेसपुस्तिका समप्राप्ता सा तु 'वाबू जुगलकिशोरजी' इत्येतैः संशोधिताप्यतीवाशुद्धा।" अर्थात् इस स्तोत्रकी एक ही प्रेसकापी प्राप्त हुई, जो कि वाबू जुगलकिशोरजीके द्वारा संशोधित होनेपर भी अतिशय अशुद्ध थी। इस पर श्रीयुक्त वाबू जुगलकिशोरजी अपने पत्रमें लिखते हैं कि "उक्त नोटको पढकर मुझे बहुत दु ख हुआ। क्योंकि उसमें पुस्तककी प्रेसकापीका मेरे द्वारा संशोधन होना लिखा है, जो बिल्कुल मिथ्या है। मैंने कभी आपको यह नहीं लिखा कि इसका संशोधन मेरे द्वारा हुआ है। इसकी कापी आराके एक पुजारीसे कराई थी और फिर प० शान्तिराज आदिने 'कापी टु कापी' मिलान मात्र किया था। संशोधन दूसरी वस्तु है। मालूम नहीं सोनीजीने यह नोट किस आधार पर दिया है।" हमको भी आश्चर्य है कि पण्डितजीने ऐसा नोट क्यों दिया, विशेष कर यह बात बहुत ही खटकनेवाली है कि 'वाबू जुगलकिशोरजीके द्वारा संशोधित होनेपर भी बहुत अशुद्ध थी।' यदि यह बात बाबू साहबको नीचा दिखानेके खयालसे लिखी गई है, तो बहुत ही अनुचित है

विनीत—

नाथूराम-प्रेमी।

प्रार्थना ।



यह ग्रन्थमाला प्राचीन जैनग्रन्थोंका जीर्णोद्धार करनेके लिए निकाली गई है । इसमें प्रकाशित हुए ग्रन्थ बिना किसी मुनाफेके, लागतके मूल्य पर बेचे जाते हैं । इसकी सहायता करना प्रत्येक जैनीका कर्तव्य है । इसके फण्डमें चन्दा देने और इसके ग्रन्थोंको खरीदने तथा बाँटनेसे इसकी यथेष्ट सहायता हो सकती है ।

—मंत्री ।

ग्रन्थकर्त्ताओंका परिचय ।



१–श्रीजिनचन्द्राचार्य ।

इस संग्रहके प्रथम ग्रन्थ 'सिद्धान्तसार'के मूलकर्त्ता जिनचन्द्र नामके आचार्य हैं जैसा कि उक्त ग्रन्थकी ७८ वीं गाथासे और उसकी टीकासे भी मालूम होता है। प्रारंभमें ' जिनेन्द्राचार्य ' नाम संशोधककी भूलसे मुद्रित हो गया है।

इस नामके कई आचार्य और भट्टारक हो गये हैं, परन्तु ग्रन्थमें प्रशस्ति आदिका अभाव होनेके कारण निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि इसके कर्त्ता कौन हैं और इसकी रचना किस समयमें हुई है। आश्चर्य नहीं जो इसके कर्त्ता भास्करनन्दिके गुरु वे जिनचन्द्र हों जिनका कि उल्लेख श्रवणबेलगुलके ५५ वें शिलालेखमें किया गया है।

मद्रासकी ओरियण्टल लायब्रेरीमें तत्त्वार्थकी सुखबोधिका टीका (नं० ५१६५) की एक प्रति है, उसकी प्रशस्तिमें लिखा है —

> तस्यासीत्सुविशुद्धदृष्टिविभवः सिद्धान्तपारंगतः
> शिष्यः श्री जिनचन्द्रनामकलितश्चारित्रचूडामणिः ।
> शिष्यो भास्करनन्दिनामविबुधस्तस्याभवत्तत्त्ववित्
> तेनाकारि सुखादिबोधविषया तत्त्वार्थवृत्तिः स्फुटम् ॥

इससे मालूम होता है कि यह टीका भास्करनन्दिकी बनाई हुई है और उनके गुरु जिनचन्द्र सिद्धान्तशास्त्रोंके पारंगत थे।

जिनचन्द्र नामके एक और आचार्य हो गये हैं जो धर्मसंग्रहश्रावकाचारके कर्ता पं० मेधावीके गुरु थे और शुभचन्द्राचार्यके शिष्य थे। ये शुभचन्द्राचार्य पद्मनन्दि आचार्यके पट्टधर थे और पाण्डवपुराण आदि ग्रन्थोंके कर्त्ता शुभचन्द्रसे पहले हो गये हैं। पं० मेधावीने त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति ग्रन्थकी दानप्रशस्तिमें* उनका परिचय इस प्रकार दिया है —

---

* देखो पिटर्सनसाहबकी चौथी रिपोर्ट और जैनहितैषी भाग १५, अंक ३–४।

अथ श्रीमूलसंघेऽस्मिन्नन्दिसंघेऽनघेऽजनि ।
बलात्कारगणस्तत्र गच्छः सारस्वतस्त्वभूत् ॥ ११ ॥
तत्राजनि प्रभाचन्द्रः सूरिचन्द्रो जितांगजः ।
दर्शनज्ञानचारित्रतपोवीर्यसमन्वितः ॥ १२ ॥
श्रीमान्बभूव मार्तण्डस्तत्पट्टोदयभूधरे ।
पद्मनन्दी बुधानन्दी तमश्छेदी मुनिप्रभुः ॥ १३ ॥
तत्पट्टाम्बुधिसच्चन्द्रः शुभचन्द्रः सतां वरः ।
पंचाक्षवनदावाग्निः कषायक्ष्माधराशनिः ॥ १४ ॥
तदीयपट्टाम्बरभानुमाली क्षमादिनानागुणरत्नशाली ।
भट्टारकश्रीजिनचन्द्रनामा सैद्धान्तिकानां भुवि योऽस्ति सीमा १५

इससे मालूम होता है कि ये जिनचन्द्र भी सैद्धान्तिक विद्वान् थे और इस लिए उक्त सिद्धान्तसारका इनके द्वारा भी निर्मित होना सब प्रकारसे संभव है।

पं० मेधावीकी उक्त प्रशस्ति वि० संवत् १५१९ में लिखी गई थी और उस समय जिनचन्द्र भट्टारक मौजूद थे अतएव सिद्धान्तसारका रचनाकाल भी इसीके लगभग माना जा सकता है। सिद्धान्तसारके संस्कृतटीकाकार ज्ञानभूषणका समय जैसा कि आगे निश्चय किया गया है—वि० संवत् १५३४ से १५६१ तक आता है अतएव उनके द्वारा इस ग्रन्थकी टीका किया जाना सर्वथा दुरुस्त है। बल्कि इन दोनोंकी समयसमीपताको देखकर यह खयाल होता है कि भ० ज्ञानभूषणको अवश्य ही अपने कुछ ही पहलेके—प्रायः समकालीन—इन्हीं जिनचन्द्रके ग्रन्थकी टीका लिखनेका उत्साह हुआ होगा और इससे हमारे खयालमें भास्करनन्दिके गुरु जिनचन्द्रकी अपेक्षा पं० मेधावीके गुरु जिनचन्द्रकी सिद्धान्तसारके कर्ता होनेके विषयमें विशेष संभावना है।

इस सिद्धान्तसारकी एक कनड़ी टीका भी है जो प्रभाचन्द्रकी बनाई हुई है और आराके सरस्वती भवनमें मौजूद है। यह कबकी बनी हुई है, यह नहीं मालूम हो सका।

२,३—भ० श्रीज्ञानभूषण और शुभचंद्र।

इस संग्रहमें भट्टारक ज्ञानभूषणकृत सिद्धान्तसार भाष्य और भ० शुभचन्द्रकृत अंगपण्णत्ति या अङ्गप्रज्ञप्ति नामक ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं, और पिछले

ग्रंथके कर्त्ता भ० शुभचद्र ज्ञानभूषणके प्रशिष्य थे, अतएव इन दोनोंका परिचय पाठकोंको एक साथ कराया जाता है।

सिद्धान्तसारके भाष्यमें यद्यपि भाष्यकारने अपना कोई स्पष्ट परिचय नहीं दिया है और न उसमें कोई प्रशस्ति ही है, परतु मगलाचरणके नीचे लिखे श्लोकसे मालूम होता है कि वह भ० ज्ञानभूषणका ही बनाया हुआ है —

श्रीसर्वज्ञं प्रणम्यादौ लक्ष्मीवीरेन्दुसेवितम्।
भाष्यं सिद्धान्तसारस्य वक्ष्ये ज्ञानसुभूषणम्॥

इसमें सर्वज्ञको जो ज्ञानभूषण विशेषण दिया है, वह निश्चय ही भाष्यकर्त्ताका नाम है। और भी कई ग्रन्थकर्त्ताओंने मगलाचरणोंमें इसी तरह अपने नाम प्रकट किये हैं*।

उक्त मगलाचरणके 'लक्ष्मीवीरेन्दुसेवितम्' पदसे यह भी मालूम होता है कि **लक्ष्मीचन्द्र** और **वीरचन्द्र** नामके उनके (ज्ञानभूषणके) कोई शिष्य या प्रशिष्यादि होंगे जिनके पढनेके लिए उक्त भाष्य बनाया गया होगा। ज्ञानभूषणके प्रशिष्य शुभचन्द्राचार्यकी बनाई हुई स्वामिकार्तिकेयानुपेक्षा-टीकाकी प्रशस्तिके १०–११वें श्लोकमें जो कि आगे उद्धृत की गई है–इन लक्ष्मीचन्द्र और वीरचन्द्रका उल्लेख है और उस उल्लेखसे हम कह सकते हैं कि भाष्यके मगलाचरणका 'लक्ष्मीवीरेन्दुसेवितम्' पद उन्हींको लक्ष्य करके लिखा गया है।

भट्टारक ज्ञानभूषण मूलसघ, सरस्वतीगच्छ और बलात्कारगणके आचार्य थे। उनकी गुरुपरम्पराका प्रारंभ भ० पद्मनन्दिसे होता है। पद्मनन्दिसे पहलेकी परंपराका अभी तक ठीक ठीक पता नहीं लगा है। १ **पद्मनन्दि—२ सकलकीर्ति—३ भुवनकीर्ति** और ४ **ज्ञानभूषण**। यह ज्ञानभूषणकी गुरुपरंपराका क्रम है।

ज्ञानभूषणके बाद ५ **विजयकीर्ति** और फिर उनके शिष्य ६ **शुभचन्द्र** हुए हैं और इस तरह शुभचन्द्र ज्ञानभूषणके प्रशिष्य हैं। यहाँ यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि प्रत्येक भट्टारकके अनेकानेक शिष्य होते थे, परतु उपर्युक्त

---

* यथा सोमदेवकृत नीतिवाक्यामृतमें–" सोमदेवं मुनिं नत्वा नीतिवाक्यामृत ब्रुवे।" और अनन्तवीर्यकी लघीयस्त्रयवृत्तिमें–" अनन्तवीर्यमानौमि स्याद्वादन्यायनायकम्" इत्यादि।

शिष्यक्रममें केवल उन्हींका नाम दिया गया है जो एकके बाद दूसरे भट्टारकके पदके या गद्दीके अधिकारी होते गये हैं । उक्त शिष्यक्रमको स्पष्ट करनेके लिए हम आगे स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा-टीकाकी प्रशस्ति उद्धृत करते हैं—

श्रीमूलसंघेऽजनि नन्दिसंघो वरो बलात्कारगणप्रसिद्धः ।
श्रीकुन्दकुन्दो वरसूरिवर्यो विभाति भाभूषणभूषिताङ्गः ॥
तदन्वये श्रीमुनिपद्मनन्दी ततोऽभवच्छ्रीसकलादिकीर्तिः ।
तदन्वये श्रीभुवनादिकीर्तिः श्रीज्ञानभूषो वरवृत्तिभूषः ॥ ३ ॥
तदन्वये श्रीविजयादिकीर्तिस्तत्पट्टधारी शुभचन्द्रदेवः ।
तेनेयमाकारि विशुद्धटीका श्रीमत्सुमत्यादिसुकीर्तितश्च ॥ ४ ॥
सूरिश्रीशुभचन्द्रेण वादिपर्वतवज्रिणा ।
त्रिविद्येनानुप्रेक्षाया वृत्तिर्विरचिता वरा ॥ ५ ॥
श्रीमद्विक्रमभूपतेः परिमिते वर्षे शते षोडशे
माघे मासि दशाग्रवह्निसहिते ख्याते दशम्यां तिथौ ।
श्रीमच्छ्रीमहिसारसारनगरे चैत्यालये श्रीगुरोः
श्रीमच्छ्रीशुभचन्द्रदेवविहिता टीका सदा नन्दतु ॥ ६ ॥
वर्णिश्रीक्षेमचन्द्रेण विनयेन कृतप्रार्थना (?) ।
शुभचन्द्रगुरो स्वामिन् कुरु टीकां मनोहरां ॥ ७ ॥
तेन श्रीशुभचन्द्रेण त्रैविद्येन गणेशिना ।
कार्तिकेयानुप्रेक्षाया वृत्तिर्विरचिता वरा ॥ ८ ॥
तथा साधुसुमत्यादिकीर्तिना कृतप्रार्थना ।
सार्थीकृता समर्थेन शुभचन्द्रेण सूरिणा ॥ ९
भट्टारकपदाधीशा मूलसंघे विदां वराः ।
रमावीरेन्दुचिद्रूपगुरवो हि गणेशिनः ॥ १०
लक्ष्मीचन्द्रगुरुस्वामी शिष्यस्तस्य सुधीयशाः ।
वृत्तिर्विस्तारिता तेन श्रीशुभेन्दुप्रसादतः ॥ ११
इति श्रीस्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षायां त्रिविधविद्याधर-षड्भाषाकवि-चक्रवर्तिश्रीशुभचन्द्रविरचितायां टीकायां ॥*

---

* देखो प्रो० पिटर्सनकी रिपोर्ट सन् १८९४ की छपी हुई ।

आगे शुभचन्द्राचार्यकी शिष्यपरम्पराका क्रम इस प्रकार निश्चित होता है.—७-सुमतिकीर्ति-८ गुणकीर्ति-९ वादिभूषण-१० रामकीर्ति-११ यशःकीर्ति और १२ पद्मनन्दि आदि। इनमेंसे वादिभूषण तककी परम्पराका उल्लेख अध्यात्मतरंगिणीकी उस प्रतिके लिखनेवालेकी प्रशस्तिमें* मिलता है जो स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्दजीके सरस्वतीभण्डारमें मौजूद है और वादिभूषणके बादके भट्टारकोंका उल्लेख बलात्कारगणकी गुर्वावलीमें है जो भ० नेमिचन्द्रकी बनाई हुई है और हमारे पास मौजूद है।

जैनसिद्धान्तभास्करकी प्रथम किरणमें (पृ० ४५-४६) प्रकाशित शुभचन्द्रकी पट्टावलीसे भी यही क्रम निश्चित होता है।

श्रीज्ञानभूषण मागबाडे (बागड़) की गद्दीके भट्टारक पदपर आसीन थे। भास्करकी चौथी किरण (पृ० ४३-४५) में जो पट्टावली प्रकाशित हुई है उससे मालूम होता है कि "वे गुजरातके रहनेवाले थे। गुजरातमें उन्होंने सागारधर्म धारण किया, अहीर (?) देशमें ग्यारह प्रतिमा धारण कीं और वाग्वर या वागड़ देशमें दुर्धर महाव्रत ग्रहण किये। तौलव देशके यतियोंमें उनकी बडी प्रतिष्ठा हुई, तैलग देशके उत्तम उत्तम पुरुषोंने उनके चरणोंकी वन्दना की, द्रविड देशके विद्वानोंने उनका स्तवन किया, महाराष्ट्र देशमें उन्हें बहुत यश मिला, सौराष्ट्रदेशके धनी श्रावकोंने उनके लिए महामहोत्सव किया, रायदेशके निवासियोंने उनके वचनोंको अतिशय प्रमाण माना, मेदपाठ (मेवाड़) के मूर्ख लोगोंको उन्होंने प्रतिबोधित किया, मालवदेशके भव्य जनोंके हृदयकमलको विकसित किया, मेवात देशमें उनके अध्यात्मरहस्यपूर्ण व्याख्यानसे विविध विद्वान् श्रावक प्रसन्न हुए, कुरुजागल देशके लोगोंका अज्ञान रोग दूर किया, तूरव (?) के षट्दर्शन और तर्कके जाननेवालों पर विजय प्राप्त किया, विराट देशके

---

* "संवत् १६५२ वर्षे ज्येष्ठद्वितीयकृष्णदशम्यां शुक्रे मूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्रीकुन्दकुन्दान्वये भ० श्रीपद्मनन्दि देवास्तत्पट्टे भ० सकलकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ० भुवनकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ० ज्ञानभूषणदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीविजयकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ० शुभचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीसुमतिकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीगुणकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीवादिभूषणगुरुस्तच्छिष्य प० देवजी पठनार्थं।"

मार्गोंके समय ग्राम (सागार अनगार ?) सिंहकाके मणियाड (निमाड ?) देशमें जैनधर्मकी प्रभावना की। उस राटाट्टीयकी आपार बागड (?) आदि जनपदोंमें प्रतिबोधके निमित्त विहार किया, भैरव नामक राजाने उनकी भक्ति की, इन्द्र राजाने चरण पूजे, राजाधिराज देवराजने चरणोंकी आराधना की, जिनधर्मके आराधक मुदलियार रामनाथराय बोम्मरसराय कलपराय पाण्डुराय आदि राजाओंने चरण पूजे और उन्होंने अनेक तीर्थोंकी यात्रायें कीं। व्याकरण-छन्द-अलंकार-साहित्य-तर्क-आगम-अध्यात्म आदि शास्त्ररूपी कमलोंपर विहार करनेके लिए वे राजहंस थे और शुद्ध ध्यानामृतपानकी उन्हें लालसा थी। इस अतिशयपूर्ण वर्णनसे ज्ञानभूषण महारककी महत्ताका बहुत कुछ पता लगता है। इसमें सन्देह नहीं कि वे अपने समयके बहुत ही प्रसिद्ध प्रतिष्ठित और विद्वान् आचार्य थे।

भ० ज्ञानभूषणके तत्त्वज्ञानतरंगिणी और सिद्धान्तसार-भाष्य ये दो ग्रंथ मुद्रित हो चुके हैं। परमार्थोपदेश शीघ्र ही प्रकाशित होगा। इनके सिवाय नेमिनिर्वाण काव्यकी पंजिकाटीका पञ्चास्तिकायटीका दशलक्षणोद्यापन आदीश्वर-फाग भक्तामरोद्यापन और सरस्वतीपूजा * इन ग्रन्थोंका भी ज्ञानभूषणके नामसे उल्लेख मिलता है। संभव है कि इनमें अन्य किसी ज्ञानभूषणके ग्रंथ भी शामिल हों।

---

* 'गोम्मटसारटीका' को भी कुछ लोगोंने ज्ञानभूषणकृत मान रक्खा है। परन्तु यह भूल है। २१ अगस्त १९१५ के जैनमित्रमें इस टीकाकी जो प्रशस्ति प्रकाशित हुई है उससे मालूम होता है कि इसके कर्ता वे नेमिचन्द्र हैं जिन्होंने ज्ञानभूषणसे दीक्षा ली थी, भट्टारक प्रभाचन्द्रने जिन्हें आचार्यपद पर बिठाया था, दक्षिण देशके सुप्रसिद्ध आचार्य मुनिचन्द्रके पास जिन्होंने सिद्धान्त पढ़े थे, विशालकीर्तिने जिन्हें टीकारचनामें सहायता दी थी और जो लाला ब्रह्मचारीके आग्रहवश गुजरातसे आकर चित्रकूट (चित्तौर) में जिनदासशाहके बनाये हुए पार्श्वनाथ-मन्दिरमें रहे थे। यह टीका वीरनिर्वाण संवत् २१७७ में समाप्त हुई है। गोम्मटसारके कर्ताके मतसे २१७७ में विक्रम संवत् (२१७७–६०५= १५७२+१३५) १७०७ पड़ता है। अतएव उक्त नेमिचन्द्रके गुरु ज्ञानभूषण भी कोई दूसरे ही ज्ञानभूषण हैं जो सिद्धान्तसार भाष्यके कर्तासे सौ सवा सौ वर्ष बाद हुए हैं।

सिद्धान्तसार भाष्यकी रचना किस समय हुई, यह जाननेका कोई साधन नहीं है, परन्तु तत्त्वज्ञानतरगिणी विक्रम सवत् १५६० में वनी है। यथा—

यदैव विक्रमातीताः शतपञ्चदशाधिकाः।
षष्टिसंवत्सरा जातास्तदेयं निर्मिता कृतिः॥ ५३॥

जैनसिद्धान्तभास्कर (किरण ४ पृ० ९६) में उसके सम्पादक महाशयने लिखा है कि ज्ञानभूषण वि० स० १५७५ तक भट्टारक पद पर आसीन रहे हैं, परन्तु यह उन्होंने किस प्रमाणके आधार पर लिखा है यह मालूम नहीं हो सका।

वीसनगर (गुजरात) के शान्तिनाथके श्वेताम्बर-मन्दिरकी एक दिगम्बर प्रतिमा पर इस प्रकारका लेख है—"**सं० १५५७ वर्षे माघवदि ५ गुरौ श्री मूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० सकलकीर्तिस्तत्पट्टे भ० श्रीभुवनकीर्तिस्तत्पट्टे भ० श्रीज्ञानभूषणस्तत्पट्टे भ० श्रीविजयकीर्तिगुरूपदेशात् हूंबडज्ञातीय . . एते श्रीशान्तिनाथं नित्यं प्रणमन्ति।**" इसी तरह पेथापुरके श्वेताम्बर मन्दिरकी भी एक दिगम्बर प्रतिमापर लेख* है—"**सं० १५६१ चैत्रवदि ८ शुक्रे मूलसंघे भ० ज्ञानभूषण भट्टारक श्रीविजयकीर्ति उपदेशात् हुम्बड कडुआ श्रीनेमिनाथबिम्बं।**"

इन दोनों लेखोंसे मालूम होता है कि वि० स० १५५७ और १५६१ में ज्ञानभूषणजी भट्टारक पदपर नहीं थे किन्तु उनके शिष्य विजयकीर्ति थे। इससे यह मानना भ्रम है कि वे वि० स० १५७५ तक भट्टारक पदपर थे। वास्तवमें वे १५५७ के पहले ही इस पदको छोड़ चुके थे और इस लिए तत्त्वज्ञानतरगिणीकी रचना उन्होंने उस समय की है जब भट्टारकपद विजयकीर्तिको मिल चुका था।

पूर्वोक्त 'जैनधातुप्रतिमा लेखसग्रह' नामक ग्रन्थमें विक्रम सवत् १५३४-३५ और १५३६ के तीन प्रतिमालेख× और हैं जिनसे मालूम होता है कि उक्त सवतोंमें ज्ञानभूषण भट्टारक पदपर थे। अतएव उन्होंने १५५७ के पहले ही

---

* देखो श्रीबुद्धिसागरसूरिसम्पादित 'जैनधातुप्रतिमालेखसग्रह,' प्रथम भाग, पृष्ठ ८७ और १२३।

× देखो न० ६७२, १५०९ और ५६७ के लेख।

कार्णाटके उभय भाग (सागर अवसार ?) तिलवाये नमियाड (निमाड ?) देशमें जैनधर्मकी प्रभावना की उप राठउडीयकी नागर भाग (?) आदि जनपदोंमें प्रतिबोधके निमित्त विहार किया भैरव नामक राजाने उनकी भक्ति की इन्द्र राजने चरण पूजे राजाधिराज देवराजने चरणोंकी आराधना की जिनधर्मके आराधक मुदलियार रामनाथराय बोम्मरसराय कलपराय पाण्डुराय आदि राजाओंने चरण पूजे और इन्होंने अनेक तीर्थोंकी यात्रायें कीं । व्याकरण–छन्द–अलंकार–साहित्य–तर्क–आगम–अध्यात्म आदि शास्त्ररूपी कमलोंपर विहार करनेके लिए वे राजहंस थे और शुद्ध ध्यानामृतपानकी उन्हें लालसा थी । इस अतिशयपूर्ण वर्णनसे ज्ञानभूषण भट्टारककी महत्ताका बहुत कुछ पता लगता है । इसमें सन्देह नहीं कि वे अपने समयके बहुत ही प्रसिद्ध प्रतिष्ठित और विद्वान् आचार्य थे ।

भ० ज्ञानभूषणके तत्त्वज्ञानतरंगिणी और सिद्धान्तसार भाष्य ये दो ग्रंथ मुद्रित हो चुके हैं । परमार्थोपदेश शीघ्र ही प्रकाशित होगा । इनके सिवाय नेमिनिर्वाण काव्यकी पंजिकाटीका पंचास्तिकायटीका दशलक्षणोद्यापन आदीश्वर-फाग भक्तामरोद्यापन और सरस्वतीपूजा * इन ग्रन्थोंका भी ज्ञानभूषणके नामसे उल्लेख मिलता है । सम्भव है कि इनमें अन्य किसी ज्ञानभूषणके ग्रंथ भी शामिल हों ।

---

* 'गोम्मटसारटीका' को भी कुछ लोगोंने ज्ञानभूषणकृत मान रक्खा है । परंतु यह भूल है । २१ अगस्त १९१५ के जैनमित्रमें इस टीकाकी जो प्रशस्ति प्रकाशित हुई है उससे मालूम होता है कि इसके कर्ता नेमिचन्द्र हैं जिन्होंने ज्ञानभूषणसे दीक्षा ली थी भट्टारक प्रभाचन्द्रने जिन्हें आचार्यपद पर स्थापित किया था दक्षिण देशके सुप्रसिद्ध आचार्य मुनिचन्द्रके पास जिन्होंने सिद्धान्त पढ़े थे विशालकीर्तिने जिन्हें टीकारचनामें सहायता दी थी और जो लालावर्णीके आग्रहसे गुजरातसे आकर चित्रकूट (चित्तौड़) में जिनदासशाहके बनाये हुए पार्श्वनाथ मन्दिरमें रहे थे । यह टीका वीरनिर्वाण संवत् २१७७ में समाप्त हुई है । गोम्मटसारके कर्ताके मतसे २१७७ में विक्रम संवत् (२१७७–६ [illegible] १५ ९+११५) १ [illegible] ७ पड़ता है अतएव उक्त नेमिचन्द्रके गुरु ज्ञानभूषण भी कोई दूसरे ही ज्ञानभूषण हैं जो सिद्धान्तसार भाष्यके कर्तासे सौ सवा सौ वर्ष बाद हुए हैं ।

उद्यापनमदीपिष्ट पल्योपमविधेश्च यः ।
चारित्रशुद्धितपसश्चतुस्त्रिद्वादशात्मनः ॥ ७६
संशयिवदनविदारणमपशब्दसुखण्डनं परं तर्कं ।
सत्तत्त्वनिर्णयं वरस्वरूपसंबोधिनीं वृत्तिम् ॥ ७७
अध्यात्मपद्यवृत्तिं सर्वार्थापूर्वसर्वतोभद्रम् ।
योऽकृतसद्व्याकरणं चिन्तामणिनामधेयं च ॥ ७८
कृत येनागप्रज्ञप्तिः सर्वाङ्गार्थप्ररूपिका ।
स्तोत्राणि च पवित्राणि षड्वादाः श्रीजिनेशिनां ॥ ७९
तेन श्रीशुभचन्द्रदेवविदुषा सत्पाण्डवानां परम् ।
पुष्यत्पुण्यपुराणमत्र सुकरं चाकारि प्रीत्या महत् ॥ ८०
श्रीमद्विक्रमभूपतेर्द्विकहते स्पष्टाष्टसंख्ये शते
रम्येऽष्टाधिकवत्सरे सुखकरे भाद्रे द्वितीयातिथौ ;
श्रीमद्वाग्वरनिर्वृतीदमतुले श्रीशाकवाटे पुरे
श्रीमच्छ्रीपुरुपाभिधे विरचितं स्थेयात्पुराणं चिरम् ॥ ८६

अर्थात् पाण्डवपुराणके कर्त्ता शुभचन्द्राचार्यके बनाये हुए नीचे लिखे ग्रन्थ हैं —

१ चन्द्रप्रभचरित, २ पद्मनाभचरित, ३ जीवधरचरित, ४ चन्दनाकथा, ५ नन्दीश्वरकथा, ६ आशाधरकृत अर्चा (नित्यमहोद्योत) की टीका, ७ त्रिंशच्चतुर्विंशतिपूजापाठ, ८ सिद्धचक्रव्रतपूजा, ९ सरस्वतीपूजा, १० चिन्तामणियंत्रपूजा, ११ कर्मदहनविधान, १२ गणधरवलयपूजा, १३ (वादिराजकृत) पार्श्वनाथकाव्यकी पंजिका टीका,* १४ पल्यव्रतोद्यापन, १५ चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतोद्यापन (१२३४ व्रतका उद्यापन), १६ संशयिवदनविदारण (श्वेताम्बरमतखण्डन), १७ अपशब्दखण्डन, १८ तत्त्वनिर्णय, १९ स्वरूपसम्बोधन-(अकलंकदेवकृत [2]) की वृत्ति, २० अध्यात्मपद्यटीका, २१ सर्वतोभद्र, २२ चिन्तामणि नामक× प्राकृतव्याकरण, २३ अंगप्रज्ञप्ति, २४ अनेकस्तोत्र, २५ षड्वाद और पाण्डवपुराण ।

---

* यह ग्रन्थ स्वर्गीय सेठ माणिकचन्दजीके ग्रन्थभाण्डारमें मौजूद है ।

× यह ग्रन्थ माणिकचन्दग्रन्थमालामें प्रकाशित होनेवाला है ।

किसी समय यह पद छोड़ा है। परन्तु यह निश्चय है कि भट्टारक पद छोड़नेके बाद भी वे बहुत समयतक जीवित रहे हैं।

भट्टारक शुभचन्द्र भी बहुत बड़े विद्वान् हुए हैं। त्रिविधविद्याधर (शब्दागम युक्त्यागम और परमागमके ज्ञाता) और षड्भाषाकविचक्रवर्ती ये उनकी पदवियाँ थीं। भास्करमें प्रकाशित पट्टावलीमें लिखा है कि वे प्रमाणपरीक्षा पत्रपरीक्षा पुष्पपरीक्षा(?), परीक्षामुख प्रमाणनिर्णय न्यायमकरंद न्यायकुमुदचन्द्रोदय न्यायविनिश्चय श्लोकवार्तिक राजवार्तिक प्रमेयकमलमार्तण्ड आप्तमीमांसा अष्टसहस्री चिन्तामणिमीमांसाविवरण वाचस्पतितत्त्वकौमुदी आदि न्यायग्रन्थोंके जैनेन्द्र शाकटायन ऐन्द्र पाणिनि कलाप आदि व्याकरणग्रन्थोंके त्रैलोक्यसार गोम्मटसार लब्धिसार क्षपणासार त्रिलोकप्रज्ञप्ति सुविज्ञप्ति(?) अध्यात्माष्टसहस्री(?) और छन्दोऽलंकार आदि शास्त्रसमुद्रोंके पारगामी थे। उन्होंने अनेक देशोंमें विहार किया था अनेक विद्यार्थियोंका वे पालन करते थे उनकी सभामें अनेक विद्वज्जन रहते थे गौड़ कलिंग कर्णाट तौलव पूर्व गुर्जर मालव आदि देशोंके वादियोंको उन्होंने पराजित किया था और अपने तथा अन्य धर्मोंके वे बड़े भारी ज्ञाता थे।

भ० शुभचन्द्रजीके बनाये हुए अनेक ग्रन्थ हैं और प्रायः उन सभीकी अन्तःप्रशस्तियोंमें उन्होंने अपनी गुरुपरम्पराका परिचय दिया है। स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाटीकाकी प्रशस्ति हम इसी लेखमें पहले उद्धृत कर चुके हैं। पाण्डवपुराणकी प्रशस्ति भी हमारे पास है। परन्तु यहाँ हम उसके उतने ही अंशको प्रकाशित करते हैं जिसमें उनकी तमाम ग्रन्थरचनाओंका उल्लेख है:—

चन्द्रनाथचरितं चरितार्थं पद्मनाभचरितं शुभचन्द्रम्।
मन्मथस्य महिमानमतन्द्रो जीवकस्य चरितं च चकार ॥ ७२
चन्दनायाः कथा येन दृब्धा नान्दीश्वरी तथा।
आशाधरकृतार्चायाः(र्चायाः) वृत्तिः सद्वृत्तिशालिनी ॥ ७३
त्रिंशच्चतुर्विंशतिपूजनं च सद्वृत्तसिद्धार्चनमव्ययश्च।
सारस्वतीयार्चनमत्र शुद्धं चिन्तामणीयार्चनमुच्चरिष्णुः ॥ ७४
श्रीकर्मदाहविधिबन्धुरसिद्धसेवां नानागुणौघगणनाथसमर्चनं च।
श्रीपार्श्वनाथवरकाव्यसुपञ्जिका च यः संचकार शुभचन्द्रयतीन्द्रचन्द्रः ॥ ७५

उद्यापनमदीपिष्ट पल्योपमविधेश्च यः ।
चारित्रशुद्धितपसश्चतुस्त्रिंद्वादशात्मनः ॥ ७६
संशयिवदनविदारणमपशब्दसुखण्डनं परं तर्कं ।
सत्तत्त्वनिर्णयं वरस्वरूपसंवोधिनीं वृत्तिम् ॥ ७७
अध्यात्मपद्यवृत्तिं सर्वार्थापूर्वसर्वतोभद्रम् ।
योऽकृतसद्व्याकरणं चिन्तामणिनामधेयं च ॥ ७८
कृत येनागप्रज्ञप्तिः सर्वाङ्गार्थप्ररूपिका ।
स्तोत्राणि च पवित्राणि षड्वादाः श्रीजिनेशिनां ॥ ७९
तेन श्रीशुभचन्द्रदेवविदुपा सत्पाण्डवाना परम् ।
पुष्यत्पुण्यपुराणमत्र सुकरं चाकारि प्रीत्या महत् ॥ ८०
श्रीमद्विक्रमभूपतेर्द्विकहते स्पष्टाष्टसंख्ये शते
रम्येऽष्टाधिकवत्सरे सुखकरे भाद्रे द्वितीयातिथौ ;
श्रीमद्वाग्वरनिर्वृतीदमतुले श्रीशाकवाटे पुरे
श्रीमच्छ्रीपुरुषाभिधे विरचितं स्थेयात्पुराणं चिरम् ॥ ८६

अर्थात् पाण्डवपुराणके कर्त्ता शुभचन्द्राचार्यके वनाये हुए नीचे लिखे ग्रन्थ है.—

१ चन्द्रप्रभचरित, २ पद्मनाभचरित, ३ जीवधरचरित, ४ चन्दनाकथा, ५ नन्दीश्वरकथा, ६ आशाधरकृत अर्चा (नित्यमहोद्योत) की टीका, ७ त्रिंशच्चतुर्विंशतिपूजापाठ, ८ सिद्धचक्रव्रतपूजा, ९ सरस्वतीपूजा, १० चिन्तामणियन्त्रपूजा, ११ कर्मदहनविधान, १२ गणधरवलयपूजा, १३ (वादिराजकृत) पार्श्वनाथकाव्यकी पजिका टीका,* १४ पल्यव्रतोद्यापन, १५ चतुस्त्रिंशदधिकद्वादश शतोद्यापन (१२३४ व्रतका उद्यापन), १६ सशयिवदनविदारण (श्वेताम्वरमतखण्डन), १७ अपशब्दखण्डन, १८ तत्त्वनिर्णय, १९ स्वरूपसम्बोधन- (अकलकदेवकृत ?) की वृत्ति, २० अध्यात्मपद्यटीका, २१ सर्वतोभद्र, २२ चिन्तामणि नामक× प्राकृतव्याकरण, २३ अगप्रज्ञप्ति, २४ अनेकस्तोत्र, २५ षड्वाद और पाण्डवपुराण ।

---

* यह ग्रन्थ स्वर्गीय सेठ माणिकचन्दजीके ग्रन्थभाण्डारमें मौजूद है ।

× यह ग्रन्थ माणिकचन्दग्रन्थमालामें प्रकाशित होनेवाला है ।

पाण्डवपुराण भी संवत् १६०८ में समाप्त हुआ है। अतएव इसके पहलेके रचे हुए ग्रन्थोंके ही नाम इस प्रशस्तिसे मालूम हो सकते हैं। पाण्डवपुराणके बाद भी उन्होंने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की होगी और इसके प्रमाणमें हम दो ग्रन्थोंको पेश कर सकते हैं—एक तो स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाटीका जो संवत् १६१३ में समाप्त हुई है और दूसरा करकण्डुचरित्र जो संवत् १६११ में बना है। तलाश करनेसे इस तरहके और भी कई ग्रन्थोंका पता लगना संभव है।

४—श्रीयोगीन्द्रदेव।

इस संग्रहके योगसार, निजात्माष्टक और अमृताशीति नामक ग्रन्थोंके कर्त्ता आचार्य योगीन्द्रदेव हैं। इनमेंसे पहला अपभ्रंशमें दूसरा प्राकृतमें और तीसरा संस्कृतमें है। परमात्मप्रकाशके कर्त्ता भी यही योगीन्द्रदेव हैं। योगसार और परमात्मप्रकाशकी रचना बिलकुल एक ही ढंगकी है। दोनोंमें प्रायः दोहा छन्दका उपयोग किया गया है और मंगलाचरण दोनोंका लगभग एकसा है। परमात्मप्रकाशका मंगलाचरण देखिए:—

जे जाया झाणग्गियए, कम्मकलंक डहेवि।
णिच्चणिरंजणणाणमय ते परमप्प णवेवि॥ १

योगसारमें भी इसीकी छाया है:—

णिम्मलझाणपरिट्ठिया, कम्मकलंक डहेवि।
अप्पा लद्धउ जेण परु ते परमप्प णवेवि॥ २

इससे इसमें तो कोई भी सन्देह नहीं हो सकता कि इन दोनोंके कर्त्ता एक ही योगीन्द्रदेव हैं। निजात्माष्टक और अमृताशीतिके कर्त्ता भी वे ही जान पड़ते हैं। इन दोनोंका विषय भी योगीन्द्र देवका प्यारा योग तथा अध्यात्म है। अध्यात्मसन्दोह नामका ग्रन्थ भी इन्हींका बनाया हुआ कहा जाता है; परन्तु अभी तक वह कहीं देखनेमें नहीं आया।

श्रीपद्मप्रभमलधारिदेवकी नियमसार-टीका (पृ. ५९) में 'तथा चोक्तं श्रीयोगीन्द्रदेवैः' कहकर 'मुक्त्यंगनालिमपुनर्भवसौख्यमूलं' आदि पद्य उद्धृत किया है जो 'अमृताशीति' में नहीं है। संभव है कि वह पूर्वोक्त अध्यात्मसन्दोहका या उनके अन्य किसी ग्रन्थका हो।

आचार्य योगीन्द्रदेव कब हुए हैं, और वे किस संघके आचार्य थे, इसका अभी तक कुछ भी पता नहीं लगा है।

परमात्मप्रकाश प्रभाकरभट्टके सम्बोधनके लिए उसीकी प्रार्थनासे बनाया गया है, ऐसा उक्त ग्रन्थमें कई जगह उल्लेख है —

भाविं पणविवि पंचगुरु सिरिजोइंदुजिणाऊ।
भट्टपहायरि विण्णयउ, विमलकरेविणु भाउ ॥ ८
पुण पुण पणविवि पंचगुरु, भाविं चित्त धरेवि।
भट्टपहायर णिसुणि तुहुं, अप्पा तिहुवि कहेवि ॥ ११
इत्थु ण लिव्वउ पंडियहिं, गुणदोसुवि पुणुरुत्तु।
भट्ट पभायरकारणइं, मइ पुणु पुणु वि पउत्तु ॥ ३४२

मालूम नहीं ये भट्टप्रभाकर कौन हैं। विद्यानन्दिस्वामीने अपने ग्रन्थोंमें प्रभाकरके और भट्टके सिद्धान्तोंका खण्डन किया है और वे दोनों बड़े भारी दार्शनिक हो गये हैं। 'भट्ट' कुमारिलभट्टका संक्षिप्त नाम है। क्या उनके हितके लिए योगीन्द्रदेवने परमात्मप्रकाशकी रचना की थी? परमात्मप्रकाशके सम्बोधनोंको और उसमें प्रभाकर भट्टकी विनीत प्रार्थनाओंको पढ़कर तो ऐसा नहीं जान पड़ता है कि वह कोई जैनेतर दर्शनका श्रद्धालु है। वह एक जगह कहता है–'**सिरिगुरु अक्खहि मोक्ख महु**'–हे श्रीगुरु मुझे मोक्ष बतलाइए। दूसरी जगह वह परमेष्ठीको नमस्कार करता है–'**भाविं पणविव पंचगुरु**'। योगीन्द्रदेव भी उसे जगह जगह 'योगिन्' अर्थात् 'हे योगी' कहकर सम्बोधन करते हैं। इससे तो यही स्पष्ट होता है कि वह कोई योगीन्द्रदेवका ही जैन शिष्य है जिसे शुद्ध निश्चयका स्वरूप समझानेका प्रयत्न किया गया है।

अमृताशीति (पृ० ९६) में विद्यानन्द स्वामीका '**अभिमतफलसिद्धेः**' आदि श्लोक उद्धृत किया गया है और प्रभाकर तथा भट्ट विद्यानन्द स्वामीसे पहले हुए हैं अतएव उनका और योगीन्द्र देवका समसामयिक होना संभव नहीं है। अकलंकदेवने भी प्रभाकर और भट्टका खण्डन किया है और अकलंकदेव विद्यानन्द स्वामीसे भी पहलेके हैं।

समयसारकी तात्पर्यवृत्तिमें जयसेनसूरिने योगीन्द्रदेवका निम्नलिखित दोहा उद्धृत किया है —

पाण्डवपुराण वि॰ संवत् १६०८ में समाप्त हुआ है। अतएव इसके पहलेके रचे हुए ग्रन्थोंके ही नाम इस प्रशस्तिसे मालूम हो सकते हैं। पाण्डवपुराणके बाद भी उन्होंने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की होगी और इसके प्रमाणमें हम दो ग्रन्थोंको पेश कर सकते हैं—एक तो स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाटीका जो संवत् १६१३ में समाप्त हुई है और दूसरा करकण्डुचरित्र जो संवत् १६११ में बना है। तलाश करनेसे इस तरहके और भी कई ग्रन्थोंका पता लगना संभव है।

४—श्रीयोगीन्द्रदेव।

इस संग्रहके योगसार, निजात्माष्टक और अमृताशीति नामक ग्रन्थोंके कर्ता आचार्य योगीन्द्रदेव हैं। इनमेंसे पहला अपभ्रंशमें, दूसरा प्राकृतमें और तीसरा संस्कृतमें है। परमात्मप्रकाशके कर्ता भी यही योगीन्द्रदेव हैं। योगसार और परमात्मप्रकाशकी रचना प्रायः एक ही ढंगकी है, दोनोंमें प्रायः दोहा छन्दका उपयोग किया गया है और मंगलाचरण दोनोंका लगभग एकसा है। परमात्मप्रकाशका मंगलाचरण देखिए:—

> जे जाया झाणग्गियए, कम्मकलंक डहेवि।
> णिच्चणिरंजणणाणमय ते परमप्प णवेवि॥ १

योगसारमें भी इसीकी छाया है:—

> णिम्मलझाणपरिट्ठिया कम्मकलंक डहेवि।
> अप्पा लद्धउ जेण परु ते परमप्प णवेवि॥ २

इससे इसमें तो कोई भी सन्देह नहीं हो सकता कि इन दोनोंके कर्ता एक ही योगीन्द्रदेव हैं। निजात्माष्टक और अमृताशीतिके कर्ता भी ये ही जान पड़ते हैं। इन दोनोंका विषय भी योगीन्द्र देवका प्यारा योग तथा अध्यात्म है। अध्यात्मसन्दोह नामका ग्रन्थ भी इन्हींका बनाया हुआ कहा जाता है; परन्तु अभी तक वह कहीं देखनेमें नहीं आया।

श्रीपद्मप्रभमलधारिदेवकी नियमसार-टीका (पृ॰ ५९) में 'तथा चोक्तं श्रीयोगीन्द्रदेवैः' कहकर 'मुक्त्यङ्गनालिमपुनर्भवसौख्यमूलं' आदि पद्य उद्धृत किया है जो 'अमृताशीति' में नहीं है। संभव है कि यह पूर्वोक्त अध्यात्मसन्दोहका या उनके अन्य किसी ग्रन्थका हो।

आचार्य योगीन्द्रदेव कब हुए हैं, और वे किस संघके आचार्य थे, इसका अभी तक कुछ भी पता नहीं लगा है।

परमात्मप्रकाश प्रभाकरभट्टके सम्बोधनके लिए उसीकी प्रार्थनासे बनाया गया है, ऐसा उक्त ग्रन्थमें कई जगह उल्लेख है —

भावि पणविवि पचगुरु सिरिजोइंदुजिणाऊ।
भट्टपहायरि विण्णयउ, विमलकरेविणु भाउ॥ ८
पुण पुण पणविवि पंचगुरु, भावि चित्त धरेवि।
भट्टपहायर णिसुणि तुहुं, अप्पा तिहुवि कहेवि॥ ११
इत्थु ण लिव्वउ पंडियहिं, गुणदोसुवि पुणुरुत्तु।
भट्ट पभायरकारणइं, मइ पुणु पुणु वि पउत्तु॥ ३४२

मालूम नहीं ये भट्टप्रभाकर कौन हैं। विद्यानन्दिस्वामीने अपने ग्रन्थोंमें प्रभाकरके और भट्टके सिद्धान्तोंका खण्डन किया है और वे दोनों बडे भारी दार्शनिक हो गये हैं। 'भट्ट' कुमारिलभट्टका संक्षिप्त नाम है। क्या उनके हितके लिए योगीन्द्रदेवने परमात्मप्रकाशकी रचना की थी? परमात्मप्रकाशके सम्बोधनोंको और उसमे प्रभाकर भट्टकी विनीत प्रार्थनाओंको पढकर तो ऐसा नहीं जान पडता है कि वह कोई जैनेतर दर्शनका श्रद्धालु है। वह एक जगह कहता है–'**सिरिगुरु अक्खहि मोक्ख महु**'–हे श्रीगुरु मुझे मोक्ष बतलाइए। दूसरी जगह वह परमेष्ठीको नमस्कार करता है–'**भावि पणविव पंचगुरु**'। योगीन्द्रदेव भी उसे जगह जगह 'योगिन्' अर्थात् 'हे योगी' कहकर सम्बोधन करते हैं। इससे तो यही स्पष्ट होता है कि वह कोई योगीन्द्रदेवका ही जैन शिष्य है जिसे शुद्ध निश्चयका स्वरूप समझानेका प्रयत्न किया गया है।

अमृताशीति (पृ० ९६) में विद्यानन्द स्वामीका '**अभिमतफलसिद्धेः**' आदि श्लोक उद्धृत किया गया है और प्रभाकर तथा भट्ट विद्यानन्द स्वामीसे पहले हुए हैं अतएव उनका और योगीन्द्र देवका समसामयिक होना संभव नहीं है। अकलंकदेवने भी प्रभाकर और भट्टका खण्डन किया है और अकलंकदेव विद्यानन्द स्वामीसे भी पहलेके हैं।

समयसारकी तात्पर्यवृत्तिमें जयसेनसूरिने योगीन्द्रदेवका निम्नलिखित दोहा उद्धृत किया है —

" योगीन्द्रदेवैरप्युक्तं—

पावि सप्पइ पावि मरइ, बंध ण मोक्खु करेइ ।
जिउ परमत्थे जोइया जिणवरु एउ भणेइ ॥

यद्यपि जयसेनसूरिका निश्चित समय मालूम नहीं है; परन्तु उन्हींकी बनाई हुई पंचास्तिकायटीकाकी एक प्रति विक्रम संवत् १३६९ की लिखी हुई है। यदि यह प्रति ग्रन्थ बननेके कमसे कम सौ वर्ष पीछे भी लिखी गई होगी तो जयसेनाचार्यको विक्रमकी तेरहवीं शताब्दिमें मानना चाहिए और तब योगीन्दुका अवश्य समय तेरहवीं शताब्दिसे पहलेका निश्चित होता है।

नियमसारकी श्रीपद्मप्रभमलधारिदेवकृत टीकामें भी योगीन्द्रदेवके कुछ पद्य उद्धृत किये गये हैं; इससे मालूम होता है कि वे पद्मप्रभदेवसे पहले हो गये हैं और पद्मप्रभने पाँचवें अध्यायकी टीकाके अन्तमें श्रीवीरनन्दि मुनिको नमस्कार किया है:—

यस्य प्रतिक्रमणमेव सदा मुमुक्षो-
र्नास्त्यप्रतिक्रमणमप्यणुमात्रमुच्चैः ।
तस्मै नमः सकलसंयमभूषणाय
श्रीवीरनन्दिमुनिनामधराय नित्यं ॥

इससे मालूम होता है कि श्रीवीरनन्दि मुनि पद्मप्रभदेवके कोई समसामयिक आचार्य हैं और उन्हें वे पूज्य दृष्टिसे देखते हैं। आश्चर्य नहीं कि वे उनके गुरु ही हों। टीकाके प्रारंभमें भी उन्होंने तद्विद्याढ्यं वीरनन्दिं मुनीन्द्रम् कहकर नमस्कार किया है। यदि ये वीरनन्दि आचारसारके कर्ता वीरनन्दि ही हों और हमारा अनुमान है कि वे ही होंगे तो इससे पद्मप्रभका समय विक्रम संवत् १२११ के लगभग निश्चित हो जाता है। क्योंकि वीरनन्दिने आचारसारके स्वकृत कनड़ी व्याख्यानमें उसकी रचनाका समय शक संवत् १०७६ लिखा है—

" स्वस्तिश्रीमन्मेघचन्द्रत्रैविद्यदेवर श्रीपादप्रसादासादितात्मप्रभावसमस्तविद्याप्रभावसकलदिग्वर्तिकीर्तिर्श्रीमद्वीरनन्दिसैद्धान्तिकचक्रवर्तिगलु शकवर्षे १०७६ श्रीमुखनामसंवत्सरे ज्येष्ठ-

शुक्ल १ सोमवार दंदु तावु माडिदाचारसारक्के कर्णाटवृत्तिय माडिदपर ॥"

यदि प्रभाचन्द्रका यह समय ठीक है, तो योगीन्द्रदेव वि० संवत् १२११ के भी पहलेके विद्वान् हैं।

'अमृताशीति' के ७८ और ७९ वें नम्बरके दो पद्य भर्तृहरिके वैराग्यशतकके हैं। जान पडता है कि ग्रन्थकर्ताने इन्हें 'उक्तं च' रूपमें दिया होगा, परन्तु लेखकोंकी कृपासे 'उक्तं च' उड गया है और ये मूल ग्रन्थके ही पद्य बन गये हैं। वैराग्यशतकमें भी ये इसी रूपमें मिलते हैं, केवल इतना अन्तर है कि पहले पद्यके पहले दो चरण आगे पीछे हैं। शतकमें इस प्रकार है.—

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं
दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किं।

इस ग्रन्थकी अन्य प्रतियोंमें 'उक्तं च' पद अवश्य लिखा मिलेगा।

योगसार और परमात्मप्रकाशकी भाषाके सम्बन्धमें हम इतना और कह देना चाहते हैं कि जैसा बहुत लोगोंने समझ रक्खा है, वह प्राकृत नहीं है किन्तु अपभ्रंश है जो एक समय लोकभाषा या बोलचालकी भाषा रह चुकी है और दिगम्बर विद्वानोंने जिसमें सैकडों ग्रन्थोंकी रचना की है। इसके प्रयोग प्राकृत व्याकरणके नियमोंसे सिद्ध नहीं होते हैं। जर्मनीके सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० हर्मन जेकोबीने अभी कुछ ही समय पहले दिगम्बर कवि पंडित धनपालके 'पंचमी-कहा' (पञ्चमीकथा) नामक ग्रन्थको प्रकाशित करके इस भाषाके सम्बन्धमें बहुत गहरा प्रकाश डाला है। इस भाषाका साहित्य संभवतः चौथी पाँचवीं शताब्दिसे प्रारंभ होता है। जैनसमाजके पण्डितोंका ध्यान हम इस भाषाकी ओर खास तौरसे आकर्षित करते हैं। अभी अभी हमारी नजरसे इस भाषाके कई अच्छे अच्छे ग्रन्थ गुजर चुके हैं।

५—अजित ब्रह्मचारी।

'कल्याणालोयणा' या कल्याणालोचना नामक प्राकृत ग्रन्थके कर्ता अजितब्रह्म या अजित ब्रह्मचारी हैं जैसा कि इस ग्रन्थकी अन्तिम गाथासे मालूम होता है। ये संभवतः वे ही हैं जिन्होंने 'हनुमच्चरित्र' नामका एक संस्कृत ग्रन्थ रचा है। सुहृद्वर बाबू जुगलकिशोरजीने उक्त ग्रन्थको देखा है। उससे

* योगीन्द्रदेवैरप्युक्तं—

णवि उप्पज्जइ णवि मरइ, बंध ण मोक्खु करेइ।
जिउ परमत्थे जोइया, जिणवर एउ भणेइ॥

यद्यपि जयसेनसूरिका निश्चित समय मालूम नहीं है, परन्तु उन्हींकी बनाई हुई पंचास्तिकायवृत्तिकी एक प्रति विक्रम संवत् १३६९ की लिखी हुई है। यदि यह प्रति ग्रन्थ बननेके कमसे कम सौ वर्ष पीछे भी लिखी गई होगी तो जयसेनाचार्यको विक्रमकी तेरहवीं शताब्दिमें मानना चाहिए और तब योगीन्द्राचार्यका समय तेरहवीं शताब्दिके पहलेका निश्चित होता है।

नियमसारकी श्रीपद्मप्रभमलधारिदेवकृत टीकामें भी योगीन्द्रदेवके कुछ पद्य उद्धृत किये गये हैं; इससे मालूम होता है कि वे पद्मप्रभदेवसे पहले हो गये हैं और पद्मप्रभने पाँचवें अध्यायकी टीकाके अन्तमें श्रीवीरनन्दि मुनिको नमस्कार किया है:—

यस्य प्रतिक्रमणमेव सदा मुमुक्षो-
र्नास्त्यप्रतिक्रमणमप्यणुमात्रमुच्चैः।
तस्मै नमः सकलसंयमभूषणाय
श्रीवीरनन्दिमुनिनामधराय नित्यं॥

इससे मालूम होता है कि श्रीवीरनन्दि मुनि पद्मप्रभदेवके कोई समसामयिक आचार्य हैं और उन्हें वे पूज्य दृष्टिसे देखते हैं। आश्चर्य नहीं कि वे उनके गुरु ही हों। टीकाके प्रारंभमें भी उन्होंने तद्विद्याढ्यं वीरनन्दिं व्रतीन्द्रम् कहकर नमस्कार किया है। यदि ये वीरनन्दि आचारसारके कर्ता वीरनन्दि ही हों और हमारा अनुमान है कि वे ही होंगे तो इससे पद्मप्रभका समय विक्रम संवत् १२११ के लगभग निश्चित हो जाता है। क्योंकि वीरनन्दिने आचारसारकी स्वकृत कनड़ी व्याख्यामें उसकी रचनाका समय शक संवत् १०७६ दिया है—

“स्वस्तिश्रीमन्मेघचन्द्रत्रैविद्यदेवर श्रीपादप्रसादासादितात्मप्रभावसमस्तविद्याप्रभावसकलदिग्वर्तिकीर्तिश्रीमद्वीरनन्दिसैद्धान्तिकचक्रवर्तिगळु शकवर्ष १०७६ श्रीमुखनामसंवत्सरे ज्येष्ठ

शुक्ल १ सोमवार दंदु तावु माडिदाचारसारक्के कर्णाटवृत्तिय माडिदपर ॥"

यदि प्रद्युम्नभका यह समय ठीक है, तो योगीन्द्रदेव वि० संवत् १२११ के भी पहलेके विद्वान् हैं।

'अमृताशीति' के ७८ और ७९ वे नम्बरके दो पद्य भर्तृहरिके वैराग्यशतकके हैं। जान पडता है कि ग्रन्थकर्ताने इन्हें 'उक्त च' रूपमें दिया होगा, परन्तु लेखकोंकी कृपासे 'उक्त च' उड गया है और ये मूल ग्रन्थके ही पद्य बन गये हैं। वैराग्यशतकमें भी ये इसी रूपमें मिलते हैं, केवल इतना अन्तर है कि पहले पद्यके पहले दो चरण आगे पीछे हैं। शतकमें इस प्रकार है:—

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं
दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किं।

इस ग्रन्थकी अन्य प्रतियोंमें 'उक्त च' पद अवश्य लिखा मिलेगा।

योगसार और परमात्मप्रकाशकी भाषाके सम्बन्धमें हम इतना और कह देना चाहते हैं कि जैसा बहुत लोगोंने समझ रक्खा है, वह प्राकृत नहीं है किन्तु अपभ्रंश है जो एक समय लोकभाषा या बोलचालकी भाषा रह चुकी है और दिगम्बर विद्वानोंने जिसमें सैकडों ग्रन्थोंकी रचना की है। इसके प्रयोग प्राकृत व्याकरणके नियमोंसे सिद्ध नहीं होते हैं। जर्मनीके सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० हर्मन जेकोबीने अभी कुछ ही समय पहले दिगम्बर कवि पंडित धनपालके 'पचमी–कहा' (पञ्चमीकथा) नामक ग्रन्थको प्रकाशित करके इस भाषाके सम्बन्धमें बहुत गहरा प्रकाश डाला है। इस भाषाका साहित्य समवत चौथी पॉचवीं शताब्दिसे प्रारंभ होता है। जैनसमाजके पण्डितोंका ध्यान हम इस भाषाकी ओर खास तौरसे अकर्षित करते हैं। अभी अभी हमारी नजरसे इस भाषाके कई अच्छे अच्छे ग्रन्थ गुजर चुके हैं।

५–अजित ब्रह्मचारी।

'कल्याणालोयणा' या कल्याणालोचना नामक प्राकृत ग्रन्थके कर्ता अजितब्रह्म या अजित ब्रह्मचारी हैं जैसा कि इस ग्रन्थकी अन्तिम गाथासे मालूम होता है। ये समवत वे ही हैं जिन्होंने 'हनुमच्चरित्र' नामका एक सस्कृत ग्रन्थ रचा है। सुहृद्वर बाबू जुगलकिशोरजीने उक्त ग्रन्थको देखा है। उससे

" योगीन्द्रदेवैरप्युक्तं—

णवि उप्पज्जइ णवि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ।
जिउ परमत्थें जोइया जिणवरु एउ भणेइ॥

यद्यपि जयसेनसूरिका निश्चित समय मालूम नहीं है, परन्तु उन्हींकी बनाई हुई पंचास्तिकायवृत्तिकी एक प्रति विक्रम संवत् १३६९ की लिखी हुई है। यदि यह प्रति ग्रन्थ बननेके कमसे कम सौ वर्ष पीछे भी लिखी गई होगी तो जयसेनाचार्यको विक्रमकी तेरहवीं शताब्दिमें मानना चाहिए और तब योगीन्द्राचार्यका समय तेरहवीं शताब्दिके पहलेका निश्चित होता है।

नियमसारकी श्रीपद्मप्रभमलधारिदेवकृत टीकामें भी योगीन्द्रदेवके कुछ पद्य उद्धृत किये गये हैं; इससे मालूम होता है कि वे पद्मप्रभदेवसे पहले हो गये हैं और पद्मप्रभने पाँचवें अध्यायकी टीकाके अन्तमें श्रीवीरनन्दि मुनिको नमस्कार किया है:—

यस्य प्रतिक्रमणमेव सदा मुमुक्षो-
र्नास्त्यप्रतिक्रमणमप्यणुमात्रमुच्चैः।
तस्मै नमः सकलसंयमभूषणाय
श्रीवीरनन्दिमुनिनामधराय नित्यम्॥

इससे मालूम होता है कि श्रीवीरनन्दि मुनि पद्मप्रभदेवके कोई समकालीन आचार्य हैं और उन्हें वे पूज्य दृष्टिसे देखते हैं। आश्चर्य नहीं कि वे उनके गुरु ही हों। टीकाके प्रारंभमें भी उन्होंने 'तद्विद्यावर्यं वीरनन्दिं व्रतीन्द्रम्' कहकर नमस्कार किया है। यदि ये वीरनन्दि आचारसारके कर्ता वीरनन्दि ही हों और हमारा अनुमान है कि ये ही होंगे तो इससे पद्मप्रभका समय विक्रम संवत् १२११ के लगभग निश्चित हो जाता है। क्योंकि वीरनन्दिने आचारसारके स्वकृत कनड़ी व्याख्यानमें उसकी रचनाका समय शक संवत् १०७६ लिखा है—

" स्वस्तिश्रीमन्मेघचन्द्रत्रैविद्यदेवर श्रीपादप्रसादासादितात्मप्रभावसमस्तविद्याप्रभावसकलदिग्वर्तिकीर्तिश्रीमद्वीरनन्दिसैद्धान्तिकचक्रवर्तिगळु शकवर्ष १०७६ श्रीमुखनामसंवत्सरे ज्येष्ठ

शुक्ल १ सोमवार दंदु तावु माडिदाचारसारक्के फर्णाटवृत्तिय माडिदपर ॥"

यदि प्रद्मप्रभका यह समय ठीक है, तो योगीन्द्रदेव वि० संवत् १२११ के भी पहलेके विद्वान् हैं।

'अमृताशीति' के ७८ और ७९ वे नम्बरके दो पद्य भर्तृहरिके वैराग्यशतकके हैं। जान पडता है कि ग्रन्थकर्त्ताने इन्हें 'उक्त च' रूपमें दिया होगा, परन्तु लेखकोंकी कृपासे 'उक्त च' उड गया है और ये मूल ग्रन्थके ही पद्य बन गये हैं। वैराग्यशतकमें भी ये इसी रूपमें मिलते हैं, केवल इतना अन्तर है कि पहले पद्यके पहले दो चरण आगे पीछे हैं। शतकमें इस प्रकार हैः—

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं
दत्तं पद शिरसि विद्विषता ततः किं ।

इस ग्रन्थकी अन्य प्रतियोंमें 'उक्त च' पद अवश्य लिखा मिलेगा।

योगसार और परमात्मप्रकाशकी भाषाके सम्बन्धमें हम इतना और कह देना चाहते हैं कि जैसा बहुत लोगोंने समझ रक्खा है, वह प्राकृत नहीं है किन्तु अपभ्रंश है जो एक समय लोकभाषा या बोलचालकी भाषा रह चुकी है और दिगम्बर विद्वानोंने जिसमें सैकडों ग्रन्थोंकी रचना की है। इसके प्रयोग प्राकृत व्याकरणके नियमोंसे सिद्ध नहीं होते हैं। जर्मनीके सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० हर्मन जेकोबीने अभी कुछ ही समय पहले दिगम्बर कवि पंडित धनपालके 'पचमी–कहा' (पञ्चमीकथा) नामक ग्रन्थको प्रकाशित करके इस भाषाके सम्बन्धमें बहुत गहरा प्रकाश डाला है। इस भाषाका साहित्य सभवत चौथी पाँचवीं शताब्दिसे प्रारम होता है। जैनसमाजके पण्डितोंका ध्यान हम इस भाषाकी ओर खास तौरसे अकर्षित करते हैं। अभी अभी हमारी नजरसे इस भाषाके कई अच्छे अच्छे ग्रन्थ गुजर चुके हैं।

५–अजित ब्रह्मचारी।

'कल्याणालोयणा' या कल्याणालोचना नामक प्राकृत ग्रन्थके कर्त्ता अजितब्रह्म या अजित ब्रह्मचारी हैं जैसा कि इस ग्रन्थकी अन्तिम गाथासे मालूम होता है। ये संभवत वे ही हैं जिन्होंने 'हनुमच्चरित्र' नामका एक संस्कृत ग्रन्थ रचा है। सुहृद्वर बाबू जुगलकिशोरजीने उक्त ग्रन्थको देखा है। उससे

मालूम होता है कि ये १६ वीं शताब्दिमें हुए हैं। ये देवेन्द्रकीर्तिके शिष्य थे। इनके पिताका नाम वीरसिंह, माताका वीधा या पृथ्वी और वंश गोलशृंगार (गोल सिंगारे) था। भ० विशालकीर्तिके आदेशसे इन्होंने नगरकल्प नगर (मरौंच) में हनुमच्चरित्रकी रचना की थी। स्व० बाबा दुलीचन्दजीकी ग्रन्थ नामावलीमें उत्तरपयपद्धति नामका एक और ग्रन्थ इनका बनाया हुआ बतलाया गया है।

६—आचार्य श्री शिवकोटि।

आचार्य शिवकोटि दिगम्बरसम्प्रदायमें एक बहुत ही प्रसिद्ध आचार्य हो गये हैं। उनका बनाया हुआ 'भगवती आराधना' नामका प्राकृत ग्रन्थ बहुत ही प्राचीन है। इसकी रचनाशैली और इसकी भाषा भी इसकी प्राचीनताकी साक्षी देती है।

इस ग्रन्थकी प्रशस्तिकी नीचे लिखी ३ गाथायें पढ़िए:—

> अज्ज जिणणंदिगणि सव्वगुत्तगणि अज्ज मित्तणंदीणं।
> अवगमिय पादमूले सम्मं सुत्तं च अत्थं च ॥ ११ ॥
> पुव्वायरियणिबद्धा उवजीवित्ता इमा स सत्तीए।
> आराधणा सिवज्जेण पाणिदलभोइणा रइदा ॥ १२ ॥
> आराधणा भगवदी एवं भत्तीए वण्णिदा संती।
> संघस्स सिवज्जस्स य समाधिवरमुत्तमं देउ ॥ १४ ॥

अर्थात्—आर्य जिननन्दि गणि सर्वगुप्त गणि और आर्य मित्रनन्दिके चरणोंके निकट सूत्र और अर्थको अच्छी तरह समझकर पाणितलभोजी (पाणिपात्र) शिवार्यने यह आराधना रची। यह भगवती आराधना इस तरह भक्तिपूर्वक वर्णित हुई संघको और शिवार्यको उत्तम समाधि देवे।

इससे मालूम होता है कि इस ग्रन्थके कर्ताका नाम शिवार्य था। अपने तीनों गुरुओंके नामके साथ उन्होंने 'आर्य' विशेषण दिया है। इससे जान पड़ता है कि उनके नामके साथ जो 'आर्य' शब्द है, वह भी विशेषण ही है और इस लिए उनका नाम शिवनन्दि, शिवगुप्त या ऐसा ही कुछ होगा जिसे कि संक्षेपमें 'शिव' कहा जा सकता है।

भगवज्जिनसेनाचार्यने अपने आदिपुराणके प्रारंभमें शिवकोटि आचार्यका स्मरण किया है:—

शीतीभूतं जगद्यस्य वाचाराध्यचतुष्टयं ।
मोक्षमार्ग स पायान्नः शिवकोटिमुनीश्वरः ॥ ४९

इस श्लोकके ' आराध्यचतुष्टय ' पदसे भगवती आराधनाका ही बोध होता है और इससे मालूम होता है कि उनका पूरा नाम आर्य शिवकोटि था । भगवती आराधनामें इसी नामको सक्षिप्तरूपसे 'आर्य शिव' या 'शिवार्य' लिखा है।

आराधनाकथाकोशमें समन्तभद्र स्वामीकी जो कथा मिलती है उसमें लिखा है कि शिवकोटि वाराणसीके राजा थे और वे शैव थे। समन्तभद्र स्वामीने उनके समक्ष ' शिवलिङ्ग ' को अपने स्तोत्रके प्रभावसे फोडकर उसमेंसे ' चन्द्रप्रभ ' की प्रतिमा प्रकट की थी । इससे उक्त राजा उनका शिष्य वन गया था और उसीने मुनि अवस्थामें भगवती आराधनाकी रचना की थी । परन्तु इस वातपर विश्वास नहीं होता कि भगवती आराधनाके कर्त्ता वही शिवकोटि राजा होंगे जो समन्तभद्रके शिष्य हो गये थे । यदि ये वही होते तो यह कदापि सभव नहीं था कि वे अपने इतने वडे ग्रन्थमें अपने परमगुरु समन्तभद्रका कहीं उल्लेख भी नहीं करते । कमसे कम उनका स्मरण तो अवश्य ही करते। उन्होंने अपने जिन तीन गुरुओंका स्मरण किया है और जिनके चरणोंके निकट वैठकर उन्होंने अपने ग्रन्थके पदार्थको समझा है, उनमें भी समन्तभद्रका नाम नहीं है । अतएव उक्त कथाको छोडकर जब तक कोई दूसरा प्रवल प्रमाण न मिले, तव तक कमसे कम यह बात सन्देहास्पद अवश्य है ।

हमारी निजकी राय तो यह है कि भगवती आराधना समन्तभद्र स्वामीसे भी पहलेकी रचना है ।

वहुतसे लोगोंका खयाल है कि शिवकोटिका ही दूसरा नाम शिवायन है, परन्तु विक्रान्त कौरवीय नाटकमें शिवकोटि और शिवायनको जुदा जुदा वतलाया है और लिखा है कि ये दोनों ही समन्तभद्रके शिष्य थे —" **शिष्यौ तदीयौ शिवकोटिनामा, शिवायन. शास्त्रविदां वरिष्ठौ ।**"

अभी तक भगवती आराधनाको छोडकर शिवकोटि आचार्यका और कोई भी ग्रन्थ नहीं सुना गया है और न कहीं किसीने उसका उल्लेख ही किया है। परन्तु अभी हाल ही यह ' **रत्नमाला** ' नामक छोटासा ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है जिसके अन्तमें इसके कर्त्ताका नाम शिवकोटि प्रकट किया गया है और ग्रन्थके अ—

मालूम होता है कि ये १६ वीं शताब्दिमें हुए हैं। ये देवेन्द्रकीर्तिके शिष्य थे। इनके पिताका नाम वीरसिंह, माताका पीथा था। पृथ्वी और वंश गोलशृंगार (गोल सिंघाड़े) था। ब्र० विद्यानन्दिके आदेशसे इन्होंने भृगुकच्छ नगर (भड़ोंच) में हनुमच्चरित्रकी रचना की थी। स्व० बाबा दुलीचन्दजीकी ग्रन्थ नाममालामें [illegible] नामका एक और ग्रन्थ इनका बनाया हुआ बतलाया गया है।

६—आचार्य श्री शिवकोटि।

आचार्य शिवकोटि दिगम्बरसम्प्रदायमें एक बहुत ही प्रसिद्ध आचार्य हो गये हैं। उनका बनाया हुआ 'भगवती आराधना' नामका प्राकृत ग्रन्थ बहुत ही प्राचीन है। इसकी रचनाशैली और इसकी भाषा भी इसकी प्राचीनताकी साक्षी देती है।

इस ग्रन्थकी प्रशस्तिकी नीचे लिखी हुई गाथायें पढ़िए:—

अज्ज जिणणंदिगणि सव्वगुत्तगणि अज्ज मित्तणंदीणं।
अवगमिय पादमूले सम्मं सुत्तं च अत्थं च ॥ ११ ॥
पुव्वायरियणिबद्धा उपजीवित्ता इमा ससत्तीए।
आराधणा सिवज्जेण पाणिदलभोइणा रइदा ॥ १२ ॥
आराधणा भगवदी एवं भत्तीए वण्णिदा संती।
संघस्स सिवज्जस्स य समाधिवरमुत्तमं देउ ॥ १४ ॥

अर्थात्—आर्य जिननन्दि गणि, सर्वगुप्त गणि और आर्य मित्रनन्दिके चरणोंके निकट सूत्र और अर्थको अच्छी तरह समझकर पाणितलभोजी (पाणिपात्र) शिवार्यने यह आराधना रची। यह भगवती आराधना इस तरह भक्तिपूर्वक वर्णित हुई संघको और शिवार्यको उत्तम समाधि देवे।

इससे मालूम होता है कि इस ग्रन्थके कर्ताका नाम शिवार्य था। अपने तीनों गुरुओंके नामके साथ उन्होंने 'आर्य' विशेषण दिया है। इससे जान पड़ता है कि उनके नामके साथ जो 'आर्य' शब्द है वह भी विशेषण ही है और इस लिए उनका नाम शिवनन्दि, शिवगुप्त या ऐसा ही कुछ होगा जिसे कि संक्षेपमें 'शिव' कहा जा सकता है।

भगवज्जिनसेनाचार्यने अपने आदिपुराणके प्रारंभमें शिवकोटि आचार्यका स्मरण किया है:—

शीतीभूतं जगद्यस्य वाचाराध्यचतुष्टयं ।
मोक्षमार्गं स पायान्नः शिवकोटिमुनीश्वरः ॥ ४९

इस श्लोकके ' आराध्यचतुष्टय ' पदसे भगवती आराधनाका ही बोध होता है और इससे मालूम होता है कि उनका पूरा नाम आर्य शिवकोटि था । भगवती आराधनामें इसी नामको संक्षिप्तरूपसे 'आर्य शिव' या 'शिवार्य' लिखा है।

आराधनाकथाकोशमें समन्तभद्र स्वामीकी जो कथा मिलती है उसमें लिखा है कि शिवकोटि वाराणसीके राजा थे और वे शैव थे। समन्तभद्र स्वामीने उनके समक्ष ' शिवलिङ्ग ' को अपने स्तोत्रके प्रभावसे फोड़कर उसमेंसे ' चन्द्रप्रभ ' की प्रतिमा प्रकट की थी । इससे उक्त राजा उनका शिष्य बन गया था और उसीने मुनि अवस्थामें भगवती आराधनाकी रचना की थी । परन्तु इस बातपर विश्वास नहीं होता कि भगवती आराधनाके कर्त्ता वही शिवकोटि राजा होंगे जो समन्तभद्रके शिष्य हो गये थे । यदि ये वही होते तो यह कदापि संभव नहीं था कि वे अपने इतने बड़े ग्रन्थमें अपने परमगुरु समन्तभद्रका कहीं उल्लेख भी नहीं करते । कमसे कम उनका स्मरण तो अवश्य ही करते। उन्होंने अपने जिन तीन गुरुओंका स्मरण किया है और जिनके चरणोंके निकट बैठकर उन्होंने अपने ग्रन्थके पदार्थको समझा है, उनमें भी समन्तभद्रका नाम नहीं है । अतएव उक्त कथाको छोड़कर जब तक कोई दूसरा प्रबल प्रमाण न मिले, तब तक कमसे कम यह बात सन्देहास्पद अवश्य है ।

हमारी निजकी राय तो यह है कि भगवती आराधना समन्तभद्र स्वामीसे भी पहलेकी रचना है ।

बहुतसे लोगोंका खयाल है कि शिवकोटिका ही दूसरा नाम शिवायन है, परन्तु विक्रान्त कौरवीय नाटकमें शिवकोटि और शिवायनको जुदा जुदा बतलाया है और लिखा है कि ये दोनों ही समन्तभद्रके शिष्य थे —" **शिष्यौ तदीयौ शिवकोटिनामा, शिवायनः शास्त्रविदां वरिष्ठौ ।**"

अभी तक भगवती आराधनाको छोड़कर शिवकोटि आचार्यका और कोई भी ग्रन्थ नहीं सुना गया है और न कहीं किसीने उसका उल्लेख ही किया है । परन्तु अभी हाल ही यह ' **रत्नमाला** ' नामक छोटासा ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है जिसके अन्तमें इसके कर्त्ताका नाम शिवकोटि प्रकट किया गया है और ग्रन्थके अन्तकी

पंक्तिमें तो उन्हें 'स्वामिसमन्तभद्रशिष्य' तक लिख दिया गया है। हमारा भी पहले यही खयाल था कि यह उन शिवकोटिका ही ग्रन्थ है जिनका स्मरण आदिपुराणके कर्त्ताने किया है और इस सम्बन्धमें हमने जैनहितैषीमें एक छोटासा नोट भी लिखा था; परन्तु ग्रन्थको अच्छी तरह पढ़नेसे अब हमें इस विषयमें बहुत कुछ सन्देह हो गया है। हमारी समझमें यह ग्रन्थ इतना प्राचीन नहीं हो सकता। यह अपेक्षाकृत आधुनिक है और या तो इसके अन्तिम श्लोकके 'शिवकोटित्वमाप्नुयात्' पदसे ही किसीने इसके कर्त्ताके नामकी कल्पना कर ली है और यदि इस पदमें कर्त्ताने अपना नाम भी ध्वनित किया है तो वे कोई दूसरे ही शिवकोटि हैं।

इस ग्रन्थका नीचे लिखा हुआ श्लोक देखिए—

कलौ काले वने वासो वर्ज्यते मुनिसत्तमैः।
स्थीयते च जिनागारे ग्रामादिषु विशेषतः॥ २२

अर्थात् इस कलिकालमें मुनियोंको वनमें न रहना चाहिए। श्रेष्ठमुनियोंने इसको वर्जित बतलाया है। इस समय उन्हें जैनमन्दिरोंमें विशेष करके ग्रामादिकोंमें ठहरना चाहिए।

इससे यह साफ प्रकट होता है कि यह उस समयकी रचना है जब दिगम्बर सम्प्रदायमें चैत्यवास * अच्छी तरह जम गया था और इसके अनुयायी इतने प्रबल हो गये थे कि उन्होंने वनोंमें रहना वर्जित तक बतला दिया था। मन्दिरोंमें और ग्रामोंमें रहनेको किसी तरह जायज बतलाना दूसरी बात है और उन्हींमें रहना चाहिए वनमें नहीं यह दूसरी बात है।

भगवती आराधनाका स्वाध्याय करनेवाले सज्जन इस बातपर अच्छी तरह विचार करें कि उसके कर्त्ता अपने इस दूसरे ग्रन्थमें क्या इस तरहका विधान कर सकते हैं?

जैनसाधु यजमानोंमेंसे भोजनादिके निमित्त याचना नहीं करते। श्रावकोंसे प्राप्त किया हुआ प्रासुक अन्न ही उनके काम आता है। परन्तु इसमें इस नियमके विरुद्ध लिखा है—

---

* चैत्यवासी और वनवासी साधुओंके विषयमें जैनहितैषी भाग १४ अंक ४-५ का विस्तृत लेख देखिए।

पाषाणोत्स्फुटितं तोयं घटीयंत्रेण ताडितं ।
सद्यः सन्तप्तवापीनां प्रासुकं जलमुच्यते ॥ ६३ ॥
देवर्षीणा प्रशौचाय स्नानाय च गृहार्थिनां ।
अप्रासुकं परं वारि महातीर्थजमप्यदः ॥ ६४ ॥

इस विधानसे भी हम यही अनुमान करते हैं कि यह ग्रन्थ आधुनिक है और भगवती आराधनाके कर्त्ताका तो कदापि नहीं है।

इस ग्रन्थको विचारपूर्वक पढनेसे इस तरहकी और भी अनेक वातें मालूम हो सकती हैं।

इस ग्रन्थका ६५ वाँ श्लोक यशस्तिलक चम्पूके उपासकाध्ययनके एक श्लोकसे विलकुल मिलता जुलता हुआ है और ऐसा मालूम होता है कि उसी परसे लिया गया है। चम्पूका वह श्लोक इस प्रकार है—

सर्वमेव हि जैनाना प्रमाणं लौकिको विधिः ।
यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम्

यशस्तिलक शक सवत् ८८१ (वि० सवत् १०१६) में समाप्त हुआ है। इस ग्रन्थमें कोई खास विशेषता नहीं है। मामूली उपदेशरूप ग्रन्थ है जिसमें श्रावकाचारसम्बन्धी प्रकीर्णक वातें लिखी गई हैं। एक महान् आचार्यकी कृतिके योग्य इसमें कुछ भी नहीं है।

७–श्रीमाघनन्दि योगीन्द्र।

ये 'शास्त्रसारसमुच्चय' नामक सूत्रग्रन्थके कर्त्ता हैं। इस नामके भी कई आचार्य हो गये हैं, इस कारण नहीं कहा जा सकता कि इसके कर्त्ता कौनसे माघनन्दि हैं। कर्नाटक-कवि-चरित्रके अनुसार एक माघनन्दिका समय ईस्वी सन् १२६० (वि० सवत् १३१७) है और उन्होंने इस शास्त्रसारसमुच्चयपर एक कनडी टीका लिखी है तथा माघनन्दि-श्रावकाचारके कर्त्ता भी यही हैं। इससे मालूम होता है कि शास्त्रसारसमुच्चय (मूल) के कर्त्ता इनसे पहले हुए हैं और उनका समय भी विक्रमकी चौदहवीं शताब्दिसे पहले समझना चाहिए।

मद्रासकी ओरियण्टल लायब्रेरीमें 'प्रतिष्ठाकल्पटिप्पण' या 'जिनसंहिता' नामका एक ग्रन्थ है। उसके प्रारंभमें लिखा है—

पंक्तिमें तो उन्हें 'स्वामिसमन्तभद्रशिष्य' तक लिख दिया गया है। हमारा भी पहले यही खयाल था कि यह उन शिवकोटिका ही ग्रन्थ है जिनका स्मरण आदिपुराणके कर्त्ताने किया है और इस सम्बन्धमें हमने जैनहितैषीमें एक छोटासा नोट भी लिखा था; परन्तु ग्रन्थको अच्छी तरह पढ़नेसे अब हमें इस विषयमें बहुत कुछ सन्देह हो गया है। हमारी समझमें यह ग्रन्थ इतना प्राचीन नहीं हो सकता। यह अपेक्षाकृत आधुनिक है और या तो इसके अन्तिम श्लोकके 'शिवकोटित्वमाप्नुयात्' पदसे ही किसीने इसके कर्त्ताके नामकी कल्पना कर ली है और यदि इस पदमें कर्त्ताने अपना नाम भी ध्वनित किया है तो वे कोई दूसरे ही शिवकोटि हैं।

इस ग्रन्थका नीचे लिखा हुआ श्लोक देखिए—

> कलौ काले वने वासो वर्ज्यते मुनिसत्तमैः ।
> स्थीयते च जिनागारे ग्रामादिषु विशेषतः ॥ २२

अर्थात् इस कलिकालमें मुनियोंको वनमें न रहना चाहिए। श्रेष्ठमुनियोंने इसको वर्जित बतलाया है। इस समय उन्हें जैनमन्दिरोंमें विशेष करके ग्राम आदिकोंमें ठहरना चाहिए।

इससे यह साफ प्रकट होता है कि यह उस समयकी रचना है जब दिगम्बर सम्प्रदायमें चैत्यवास * अच्छी तरह चल पड़ा था और इसके अनुयायी इतने प्रबल हो गये थे कि उन्होंने वनोंमें रहना वर्जित तक बतला दिया था। मन्दिरोंमें और ग्रामोंमें रहनेको किसी तरह जायज बतलाना दूसरी बात है और उन्हींमें रहना चाहिए वनमें नहीं यह दूसरी बात है।

भगवती आराधनाका स्वाध्याय करनेवाले सज्जन इस बातपर अच्छी तरह विचार करें कि उसके कर्त्ता अपने इस दूसरे ग्रन्थमें क्या इस तरहका विधान कर सकते हैं?

जैनसाधु जलाशयोंमेंसे शौचादिके निमित्त जलग्रहण नहीं करते। श्रावकोंसे प्राप्त किया हुआ प्रासुक जल ही उनके काम आता है। परन्तु इसमें इस नियमके विरुद्ध लिखा है—

---

* चैत्यवासी और वनवासी साधुओंके विषयमें जैनहितैषी भाग १४ अंक ४-५ का विस्तृत लेख देखिए।

पाषाणोत्स्फुटितं तोयं घटीयंत्रेण ताडितं ।
सद्यः सन्तप्तवापीनां प्रासुकं जलमुच्यते ॥ ६३ ॥
देवर्षीणां प्रशौचाय स्नानाय च गृहार्थिनां ।
अप्रासुकं परं वारि महातीर्थजमप्यदः ॥ ६४ ॥

इस विधानसे भी हम यही अनुमान करते हैं कि यह ग्रन्थ आधुनिक है और भगवती आराधनाके कर्त्ताका तो कदापि नहीं है।

इस ग्रन्थको विचारपूर्वक पढनेसे इस तरहकी और भी अनेक बातें मालूम हो सकती हैं।

इस ग्रन्थका ६५ वाँ श्लोक यशस्तिलक चम्पूके उपासकाध्ययनके एक श्लोकसे बिलकुल मिलता जुलता हुआ है और ऐसा मालूम होता है कि उसी परसे लिया गया है। चम्पूका वह श्लोक इस प्रकार है —

सर्वमेव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः ।
यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम्

यशस्तिलक शक सवत् ८८१ (वि० सवत् १०१६) में समाप्त हुआ है।

इस ग्रन्थमें कोई खास विशेषता नहीं है। मामूली उपदेशरूप ग्रन्थ है जिसमें श्रावकाचारसम्बन्धी प्रकीर्णक बातें लिखी गई हैं। एक महान् आचार्यकी कृतिके योग्य इसमें कुछ भी नहीं है।

७–श्रीमाघनन्दि योगीन्द्र।

ये 'शास्त्रसारसमुच्चय' नामक सूत्रग्रन्थके कर्त्ता हैं। इस नामके भी कई आचार्य हो गये हैं, इस कारण नहीं कहा जा सकता कि इसके कर्त्ता कौनसे माघनन्दि हैं। कर्नाटक-कवि-चरित्रके अनुसार एक माघनन्दिका समय ईस्वी सन् १२६० (वि० सवत् १३१७) है और उन्होंने इस शास्त्रसारसमुच्चयपर एक कनडी टीका लिखी है तथा माघनन्दि-श्रावकाचारके कर्त्ता भी यही हैं। इससे मालूम होता है कि शास्त्रसारसमुच्चय (मूल) के कर्त्ता इनसे पहले हुए हैं और उनका समय भी विक्रमकी चौदहवीं शताब्दिसे पहले समझना चाहिए।

मद्रासकी ओरियण्टल लायब्रेरीमें 'प्रतिष्ठाकल्पटिप्पण' या 'जिनसहिता' नामका एक ग्रन्थ है। उसके प्रारंभमें लिखा है —

" श्रीमाघनन्दिसिद्धान्तचक्रवर्तितनूभवः ।
कुमुदेन्दुरहं वच्मि प्रतिष्ठाकल्पटिप्पणम् ॥

और अन्तमें लिखा है:—

इति श्रीमाघनन्दिसिद्धान्तचक्रवर्तितनूभवचतुर्विधपाण्डित्यचक्रवर्तिश्रीवादिकुमुदचन्द्रमुनीन्द्रविरचिते जिनसंहिताटिप्पणे पूज्यपूजकपूजकाचार्यपूजाफलप्रतिपादनं समाप्तम् ॥

इससे मालूम होता है कि प्रतिष्ठाकल्पटिप्पणके कर्ता कुमुदेन्दु या कुमुदचन्द्र माघनन्दिसिद्धान्तचक्रवर्तीके (शिष्य) थे ।

माघनन्दिश्रावकाचार और शास्त्रसारसमुच्चयके टीकाकार माघनन्दिने कन्नडक प्रशस्तिके अनुसार कुमुदेन्दुको अपना गुरु बतलाया है । संभव है कि सिद्धान्तसारसमुच्चयके कर्ता माघनन्दि (पहले) के ही शिष्य ये कुमुदेन्दु हों जिनका उक्त प्रतिष्ठाकल्पटिप्पण नामक ग्रन्थ है और इन्हींके शिष्य श्रावकाचार के कर्ता दूसरे माघनन्दि हों । यदि यह ठीक है तो शास्त्रसारसमुच्चयके कर्ताका समय ५ वर्ष और पहले अर्थात् विक्रमसंवत् १२६७ के लगभग मानना चाहिए ।

८—श्रीवादिराज कवि ।

ज्ञानलोचनस्तोत्र के कर्ता श्रीवादिराज हैं । इन्होंने वाग्भटालंकारपर कविचन्द्रिका+ नामकी एक सुन्दर संस्कृतटीका लिखी है । उसकी प्रशस्तिसे* मालूम होता है कि ये खण्डेलवालवंशमें उत्पन्न हुए थे और इनके पिताका नाम पोमराज था । तक्षकनगरीके राजा राजसिंहके [illegible] थे मंत्री थे और राजसेवा करते हुए ही इन्होंने इस टीकाकी रचना की थी । राजा राजसिंह भीमदेवके पुत्र थे । कविचन्द्रिकाकी समाप्ति इन्होंने विक्रम संवत् १७२९ की दीपमालिकाको की थी । ये बहुत बड़े विद्वान् थे । इन्होंने स्वयं ही कहा है कि इस समय मैं धनंजय आशाधर और वाग्भटका पद धारण करता हूँ । अर्थात् मैं उनकी योग्यता विद्वान् हूँ और जिस तरह उक्त तीनों विद्वान् ग्रहस्थ थे मैं भी ग्रहस्थ हूँ:—

+ कविचन्द्रिका टीका की एक प्रति जयपुरके गोधाजीके मन्दिरमें और दूसरी पाटोदीजीके मन्दिरमें है । पहली प्रति अपूर्ण है ।

* यह प्रशस्ति जैनहितैषी भाग ६ अंक १२ में पूरी प्रकाशित हो चुकी है ।

धनंजयाशाधरवाग्भटानां
धत्ते पदं सम्प्रति वादिराजः।
खाण्डिल्यवंशोद्भवपोमसूनुः
जिनोक्तिपीयूषसुतृप्तगात्रः ॥

प्रशस्तिके एक और श्लोकमें उन्होंने अपनी और वाग्भट्टकी समानता बड़ी खूबसूरतीसे दिखलाई है —

श्रीराजसिंहनृपतिर्जयसिंह एव
श्रीतक्षकाख्यनगरी अणहिल्लतुल्या।
श्रीवादिराजविबुधोऽपरवाग्भटोऽयं
श्रीसूत्रवृत्तिरिह नन्दतु चार्कचन्द्रम् ॥

अर्थात् हमारे राजा राजसिंह जयसिंह (वाग्भटकवि जिस राजाके मंत्री थे) ही हैं और यह तक्षक नगरी अणहिल्लवाड़े (जयसिंहकी राजधानी) के तुल्य है और वादिराज दूसरा वाग्भट है।

इनके बनाये हुए और किसी ग्रन्थका हमें पता नहीं है।

९—श्री जयानन्दसूरि।

'सर्वज्ञस्तवन' और उसकी टीका इन दोनोंके कर्त्ता जयानन्दसूरि श्वेताम्बर आचार्य मालूम होते हैं। श्वेताम्बर-जैनकान्फरेन्स द्वारा प्रकाशित जैनग्रन्थावली (पृष्ठ २८०) के अनुसार इसका नाम 'देवा प्रभो स्तोत्र' भी है। क्योंकि इसका प्रारंभ इन्हीं शब्दोंसे होता है। पाटणके श्वेताम्बर-भडारमें भी इसकी एक प्रति है। ये सोमतिलकसूरिके शिष्य थे और विक्रमकी १५ वीं शताब्दिमें हुए हैं। इनके बनाये हुए और भी कई ग्रन्थ हैं। हेमचन्द्रके व्याकरणपर इनकी एक वृत्ति भी है। इस स्तोत्र-टीकामें जो 'व्याकरणसूत्र' जगह जगह आते हैं, वे भी हेमचन्द्र (श्वेताम्बराचार्य) के ही मालूम होते हैं।

१०—श्री गुणभद्र।

चित्रबन्धस्तोत्रके कर्त्ता गुणभद्र या गुणभद्रकीर्ति नामके कोई आचार्य मालूम होते हैं। परन्तु यह निश्चय है कि ये भगवज्जिनसेनके शिष्य गुणभद्राचार्यके अतिरिक्त कोई दूसरे ही हैं। इस स्तोत्रके २७ वें श्लोकमें इस स्तुतिको 'मेधाविना

"श्रीमाघनन्दिसिद्धान्तचक्रवर्तितनूभवः।
कुमुदेन्दुरहं वच्मि प्रतिष्ठाकल्पटिप्पणम्॥

और अन्तमें लिखा है:—

इति श्रीमाघनन्दिसिद्धान्तचक्रवर्तितनूभवचतुर्विधपाण्डित्यचक्रवर्तिश्रीवादिकुमुदचन्द्रमुनीन्द्रविरचिते जिनसंहिताटिप्पणे पूज्यपूजकपूजकाचार्यपूजाफलप्रतिपादनं समाप्तम्॥"

इससे मालूम होता है कि प्रतिष्ठाकल्पटिप्पणके कर्ता कुमुदेन्दु या कुमुदचन्द्र माघनन्दिसिद्धान्तचक्रवर्तीके (शिष्य) थे।

माघनन्दिश्रावकाचार और शास्त्रसारसमुच्चयके टीकाकार माघनन्दिने कर्नाटककविचरित्रके अनुसार कुमुदचन्द्रको अपना गुरु बतलाया है। संभव है कि सिद्धान्तसारसमुच्चयके कर्ता माघनन्दि (पहले) के ही शिष्य थे कुमुदेन्दु हों जिनका यह प्रतिष्ठाकल्पटिप्पण नामक ग्रन्थ है और उन्हींके शिष्य श्रावकाचारके कर्ता दूसरे माघनन्दि हों। यदि यह ठीक है तो शास्त्रसारसमुच्चयके कर्ताका समय ५ वर्ष और पहले अर्थात् विक्रमसंवत् १२६७ के लगभग मानना चाहिए।

८—श्रीवादिराज कवि।

ज्ञानलोचनस्तोत्र के कर्ता श्रीवादिराज हैं। इन्होंने वाग्भटालंकारपर कविचन्द्रिका+ नामकी एक सुन्दर संस्कृतटीका लिखी है। उसकी प्रशस्तिसे* मालूम होता है कि वे खण्डेलवालवंशमें उत्पन्न हुए थे और इनके पिताका नाम पोमराज था। तक्षकनगरीके राजा राजसिंहके संभवतः ये मंत्री थे और राजसेवा करते हुए ही इन्होंने इस टीकाकी रचना की थी। राजा राजसिंह भीमदेवके पुत्र थे। कविचन्द्रिकाकी समाप्ति इन्होंने विक्रम संवत् १७२९ की दीपमालिकाको की थी। ये बहुत बड़े विद्वान् थे। इन्होंने स्वयं ही कहा है कि इस समय मैं धनंजय आशाधर और वाग्भटका पद धारण करता हूँ। अर्थात् मैं उनकी बराबर विद्वान् हूँ और जिस तरह वे तीनों विद्वान् गृहस्थ थे मैं भी गृहस्थ हूँ —

+ कविचन्द्रिका टीका की एक प्रति जयपुरके लश्करीजीके मन्दिरमें और दूसरी पाटोदीजीके मन्दिरमें है। पहली प्रति अपूर्ण है।

* यह प्रशस्ति जैनहितैषी भाग ६ अंक १२ में पूरी प्रकाशित हो चुकी है।

पढनेवाला बडी उलझनमें पड जाता है। अस्तु। हमारा खयाल है कि पद्मनन्दि मुनि उनके कोई गुरुस्थानीय व्यक्ति हैं और इसी लिए उन्होंने उनका स्मरण किया है।

नियमसारकी तात्पर्यवृत्तिके कर्त्ताका नाम श्रीपद्मप्रभमलधारिदेव है। मालूम नहीं कि इस स्तोत्रके कर्त्ता वे ही हैं, अथवा अन्य कोई दूसरे। पद्मनन्दिनामके भी अनेक विद्वान् हुए हैं, इस लिए उनके विषयमें भी कुछ नहीं कहा जा सकता।

काशीकी यशोविजयजैनग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित जैनस्तोत्रसंग्रह (द्वितीय भाग) में अबसे कोई १६–१७ वर्ष पहले यह स्तोत्र मुद्रित हो चुका है। उसके साथ जो टीका छपी है वह राजशेखरसूरिके शिष्य मुनिशेखरसूरिकृत है, परन्तु हम जो यह टीका छाप रहे हैं यह किसी अन्य विद्वान्की है जो कि अपना नाम प्रकट नहीं करते हैं।

उक्त मुद्रितप्रतिमें और खभातके जैनपुस्तकालयकी प्रतिमें–जिसका जिकर पिटर्सनकी १८८४–८६ की रिपोर्ट (पृ० २१२ न० २८) में किया गया है— इस स्तोत्रका अन्तिम श्लोक इसी रूपमें मिलता है, अतएव इसके कर्त्ता पद्मप्रभदेव ही मालूम होते हैं।

इस स्तोत्रका दूसरा नाम 'लक्ष्मीस्तोत्र' है। क्योंकि इसका प्रारंभ 'लक्ष्मी' शब्दसे शुरू होता है और भक्तामर, कल्याणमन्दिर आदि अनेक स्तोत्रोंके नाम इसी तरह प्रसिद्ध हुए हैं।

१२–श्री अमितगतिसूरि।*

सामायिकपाठके कर्त्ता अमितगतिसूरि वे ही जान पड़ते हैं जिनके बनाये हुए धर्मपरीक्षा, सुभाषितरत्नसन्दोह, अमितगतिश्रावकाचार, योगसारप्राभृत, और भावनाद्वात्रिंशतिका† नामक ग्रन्थ+ मुद्रित हो चुके हैं और जो विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दिके आचार्य थे।

---

* इनका विस्तृत परिचय पानेके लिए मेरी लिखी हुई 'विद्वद्रत्नमाला' का 'श्रीअमितगतिसूरि' नामक लेख पढिए। † यह भी 'सामायिक पाठ' के नामसे छपा है, परन्तु वास्तवमें इसका नाम भावना द्वात्रिंशतिका है। + अमितगतिका 'पंचसंग्रह' नामक ग्रन्थ इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित होनेवाला है।

संस्कृतं' (मेधावीके द्वारा संस्कार की हुई) विशेषण दिया है। संभवतः ये वही पं० मेधावी हैं जो धर्मसंग्रहश्रावकाचारके कर्ता हैं और जिन्होंने 'मूलाचारकी वसुनन्दिवृत्ति' 'त्रिलोकप्रज्ञप्ति' आदि ग्रन्थोंके अन्तमें उक्त ग्रन्थोंके दान करनेवालोंकी बड़ी बड़ी प्रशस्तियाँ जोड़ी हैं। यदि हमारा यह अनुमान ठीक है तो यह स्तोत्र १६ वीं शताब्दिका बना हुआ है। क्योंकि पं० मेधावीने उक्त प्रशस्तियाँ वि० सं० १५१६ और १५१९ में रची हैं।*

मेधावीके समयमें एक गुणभद्र नामके आचार्य थे। इसका पता जैनसिद्धान्तभवन आराके 'ज्ञानार्णव' नामक ग्रन्थकी लेखक-प्रशस्तिसे लगता है। यथा—

संवत् १५२१ वर्षे आषाढ सुदि ६ सोमवासरे श्रीगोपाचलदुर्गे तोमरवंशे राजाधिराजश्रीकीर्तिसिंहराज्यप्रवर्तमाने श्रीकाष्ठासंघे माथुरान्वये पुष्करगणे भ० श्रीगुणकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीयशःकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीमलयकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीगुणभद्रदेवास्तदाम्नाये गर्गगोत्रे ।

इससे मालूम होता है कि वि० सं० १५२१ में ग्वालियरमें गुणभद्रनामके आचार्य थे जो काष्ठासंघ-माथुरान्वय और पुष्करगणकी गद्दीपर आरूढ थे। बहुत संभव है कि चित्रबन्धस्तोत्रके कर्ता यही थे और इन्हींकी रचनाको उसी समयमें होनेवाले पं० मेधावीने संस्कृत किया हो।

११—श्री पद्मप्रभदेव।

पार्श्वनाथस्तोत्रकी अन्तिम पंक्तिमें यद्यपि इसे श्रीपद्मनन्दिमुनिविरचितं लिखा है; परन्तु अन्तिम श्लोकके 'श्रीपद्मप्रभदेवनिर्मितमिदं स्तोत्रं जगन्मंगलं' पदसे यह स्पष्ट है कि इसके कर्ता श्रीपद्मप्रभदेव हैं। क्योंकि पद्मनन्दिमुनिका केवल उल्लेख मात्र किया है और कहा है कि वे तर्क व्याकरण नाटक, और काव्यके कौशलमें विख्यात थे। परन्तु इससे यह नहीं मालूम होता है कि उनका उल्लेख क्यों किया गया और उनसे उनका क्या सम्बन्ध था। इससे

* देखो जैनहितैषी भाग १५, अंक ३–४। पं० मेधावीका बनाया हुआ धर्मसंग्रहश्रावकाचार नामका ग्रन्थ भी है जो वि० संवत् १५४१ में समाप्त हुआ है।

सका। इसी तरह आप्तस्वरूप, पार्श्वनाथसमस्यास्तोत्र, महर्षिस्तोत्र, नेमिनाथ-स्तोत्र और शलाकानिक्षे०के विषयमें यह भी नहीं मालूम हो सका कि इनके रचयिता कौन हैं। जिन प्रतियोंपर से ये छपाये गये हैं, उनमें ग्रन्थकर्त्ताओंके नाम नहीं हैं। इस लिए इनके विषयमें भी कुछ नहीं लिखा जा सका।

इस परिचयके लिखनेमें सुहृद्वर बाबू जुगलकिशोरजीके कई नोटोंसे और उनकी सूचनाओंसे बहुत कुछ सहायता मिली है, अतएव हम उनके बहुत ही कृतज्ञ हैं।

बम्बई, अगहन सुदी १४।
वि० संवत् १९७९।

नाथूराम प्रेमी।

हस्तलिखित प्रतियोंकी सहायता।

१ **श्रीयुक्त ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी**, जैनधर्मभूषण—१ **धम्मरसायण**, २ **सारसमुच्चय** (ख) और ३ **सामायिक पाठ**। इनमेंसे पहले दो ग्रन्थोंकी प्रतियाँ आपने देहलीके पुस्तक भाण्डारसे नकल कराकर भिजवाई थीं और उन्हें पालमनिवासी श्रीयुत छाजूरामजीने लिखा है। तीसरे ग्रन्थकी प्रेसकापी आपने स्वय ही एक प्राचीन प्रतिसे करके भेजी थी।

२ **श्रीयुक्त बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार**, सरसावा—१ **सिद्धान्तसार मूल**, २ **अमृताशीति**, ३ **रत्नमाला**, ४ **शास्त्रसारसमुच्चय**, ५ **पार्श्वनाथस्तोत्र**, ६ **नेमिनाथस्तोत्र**, ७ **निजात्माष्टक** और ८ **आप्तस्वरूप**। इनमेंसे अधिकांश ग्रन्थोंकी कापी आपने जैनसिद्धान्तभवन आराकी प्रतियोंके आधारसे कराके भेजी थी। शास्त्रसारसमुच्चयके सूत्रपाठका संशोधन भी आपने उक्त ग्रन्थकी कनडी टीकाके आधारसे कर दिया था। पिछले ग्रन्थकी प्रेस कापी अपने स्वय अपने हाथसे करके भेजी थी।

३ **श्रीयुक्त पं० रामलाल कंचनलालजी**, मरसेना—१ **सिद्धान्तसार-टीका**, २ **अंगप्रज्ञप्ति**। इन दोनों ग्रन्थोंकी प्रतियाँ श्रीयुक्त बाबू जुगलकिशोरजीने उक्त महाशयसे प्राप्त करके भेजनेकी कृपा की थी।

४ **श्रीयुक्त पं० इन्द्रलालजी** साहित्यशास्त्री जयपुर—१ **ज्ञानलोचनस्तोत्र**, २ **समवसरणस्तोत्र**, ३ **सर्वज्ञस्तवन**, ४ **पार्श्वनाथसमस्यास्तोत्र**, ५ **चित्रबन्धस्तात्रे**, ६ **महर्षिस्तोत्र**, ७ **शखदेवाष्टक**। जयपुरके

इस ग्रन्थका नाम हमें सामायिकपाठ नहीं मालूम होता, साथ ही यह पूर्ण भी नहीं मालूम होता। क्योंकि इसके अन्तमें लिखा है कि 'इति द्वितीयभावना समाप्ता।' अवश्य ही इसके पहले प्रथम भावना रही होगी। अन्तिम श्लोकसे संभव है कि इसका नाम 'तत्त्वभावना' रहा हो।

इसकी कापी जैनधर्मभूषण ब्रह्मचारी श्रीशीतलप्रसादजी अपने प्रवासमें प्राप्त की हुई किसी स्थानके सरस्वतीभण्डारकी प्रति परसे स्वयं करके लाये थे और उसी परसे यह मुद्रित कराई गई है। अतएव जब तक इसकी कोई दूसरी प्रति प्राप्त न हो तब तक इसके नामका और पूर्णता अपूर्णताका निर्णय नहीं हो सकता।

१४–पं० श्री आशाधर।

धर्मामृतशास्त्र के कर्ता पं० आशाधर प्रसिद्ध विद्वान् हैं। उनके बनाये हुए दो ग्रन्थ सागारधर्मामृत (नं० २) और अनगारधर्मामृत (नं० १४) इसी ग्रन्थमालामें मुद्रित हो चुके हैं और उनमें उनका परिचय भी दिया जा चुका है। वे विक्रमकी १३ वीं शताब्दिके अन्त तक मौजूद थे।

अपरिचित ग्रन्थकर्त्ता।

अर्हत्प्रवचनके कर्त्ता प्रभाचन्द्र[1], शंखदेवाष्टकके[2] कर्त्ता भानुकीर्ति[3], धम्मरसायनके कर्त्ता पद्मनन्दि[4], सारसमुच्चयके कर्त्ता कुलभद्र और श्रुतावतारके कर्त्ता विबुध श्रीधरके[5] विषयमें हमें कोई उल्लेखयोग्य परिचय प्राप्त नहीं है।

१–प्रभाचन्द्र नामके अनेक आचार्य और भट्टारक हो चुके हैं। २–अष्टकमें 'हालगिरि शंखदेवम्मि' पाठ है जिससे मालूम होता है कि होय्सल राज्यके पर्वतपर शंखदेव या शंखेश्वर पार्श्वनाथ नामका कोई तीर्थ है। मालूम नहीं इस समय वह ज्ञात है या नहीं। संभवतः वह पश्चिम कर्नाटककी ओर होगा। ३–भानुकीर्ति कई हो गये हैं। एक गण्डविमुक्तदेवके शिष्य देवकीर्तिके गुरुभाई थे और दो १७ वीं शताब्दिमें हुए हैं—एक गुणभद्रसूरिके पट्टपर और दूसरे यशःकीर्तिके पट्टपर होनेवाले जिनके कि शिष्य श्रीभूषण थे। ४–पद्म निर्पचविंशतिकाके कर्त्ता जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिके कर्ता आदि कई पद्मनन्दि हो गये हैं। ५ एक विबुध श्रीधर भविष्यदत्तचरितके कर्त्ता हुए हैं। संभव है वे ही ये हों।

सका । इसी तरह आप्तस्वरूप, पार्श्वनाथसमस्यास्तोत्र, महर्षिस्तोत्र, नेमिनाथ-स्तोत्र और शलाकानिक्षे०के विषयमें यह भी नहीं मालूम हो सका कि इनके रचयिता कौन हैं। जिन प्रतियोंपर से ये छपाये गये हैं, उनमें ग्रन्थकर्त्ताओंके नाम नहीं हैं। इस लिए इनके विषयमें भी कुछ नहीं लिखा जा सका।

इस परिचयके लिखनेमें सुहृद्वर बाबू जुगलकिशोरजीके कई नोटोंसे और उनकी सूचनाओंसे वहुत कुछ सहायता मिली है, अतएव हम उनके वहुत ही कृतज्ञ हैं।

बम्बई, अगहन सुदी १४।
वि० संवत् १९७९।

नाथूराम प्रेमी।

हस्तलिखित प्रतियोंकी सहायता।

१ **श्रीयुक्त ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी,** जैनधर्मभूषण—१ **धम्मरसायण, २ सारसमुच्चय (ख) और ३ सामायिक पाठ**। इनमेंसे पहले दो ग्रन्थोंकी प्रतियाँ आपने देहलीके पुस्तक भाण्डारसे नकल कराकर भिजवाई थीं और उन्हें पालमनिवासी श्रीयुत छाजूरामजीने लिखा है। तीसरे ग्रन्थकी प्रेसकापी आपने स्वय ही एक प्राचीन प्रतिसे करके भेजी थी।

२ **श्रीयुक्त बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार,** सरसावा—१ **सिद्धान्तसार मूल, २ अमृताशीति, ३ रत्नमाला, ४ शास्त्रसारसमुच्चय, ५ पार्श्वनाथस्तोत्र, ६ नेमिनाथस्तोत्र, ७ निजात्माष्टक और ८ आप्तस्वरूप**। इनमेंसे अधिकांश ग्रन्थोंकी कापी आपने जैनसिद्धान्तभवन आराकी प्रतियोंके आधारसे कराके भेजी थी। शास्त्रसारसमुच्चयके सूत्रपाठका सशोधन भी आपने उक्त ग्रन्थकी कनडी टीकाके आधारसे कर दिया था। पिछले ग्रन्थकी प्रेस कापी अपने स्वय अपने हाथसे करके भेजी थी।

३ **श्रीयुक्त प० रामलाल कंचनलालजी,** मरसेना—१ **सिद्धान्तसार-टीका, २ अगप्रज्ञप्ति**। इन दोनों ग्रन्थोंकी प्रतियाँ श्रीयुक्त बाबू जुगलकिशोरजीने उक्त महाशयसे प्राप्त करके भेजनेकी कृपा की थी।

४ **श्रीयुक्त पं० इन्द्रलालजी** साहित्यशास्त्री जयपुर—१ **ज्ञानलोचन-स्तोत्र, २ समवसरणस्तोत्र, ३ सर्वज्ञस्तवन, ४ पार्श्वनाथसमस्यास्तोत्र, ५ चित्रबन्धस्तोत्र, ६ महर्षिस्तोत्र, ७ शखदेवाष्टक**। जयपुरके

प्राचीन पुस्तक-भंडारोंकी प्रतियोंपरसे आपने इन सब स्तोत्रोंकी प्रेसकापी करके भेजी थी।

५ स्वर्गीय पं० मणेचन्द्रजी गोधा जयपुर—१ योगसार* और २ कल्याणालोचना।

६ श्रीयुक्त पं० पन्नालालजी बाकलीवाल—१ श्रुतावतार, २ शास्त्रका निक्षेपचक्र और ३ कल्याणमाला। कोई १० वर्ष पहले आपने जयपुरसे इन्हें नकल कराके भेजा था।

७ श्रीयुत लाला मक्खनलालजी कर्मचारी जैनकी स्कूल मेरठ छावनी—सारसमुच्चय (क) की एक प्राचीन प्रति जिसपर लिखे जाने का संवत् आदि नहीं है।

८ सरस्वतीभंडार—दिगम्बरजैनमन्दिर भोईवाड़ा, बम्बई—अर्हत्प्रवचन।

९ श्रीयुक्त पं० नाना रामचन्द्र नाग कुंभोज—रत्नमालाकी आपने भी एक सुंदर छपी जैनसिद्धान्तभवन आराकी प्रति परसे करके भेजी थी।

---

* इस ग्रन्थकी एक और पुरानी प्रतिसे सहायता प्राप्त हुई है जिसपर लिखा जानेका संवत् नहीं है और न यही मालूम है कि कौनसे सज्जनने इसे भेजा था।

ग्रन्थ-सूची ।



पृष्ठांक.



श्रीपंचगुरुभ्यो नमो नमः ।

सिद्धान्तसारादिसंग्रहः ।

श्रीजिनेन्द्राचार्य-प्रणीतः

सिद्धान्तसारः ।

(भाष्योपेतः ।)

श्रीसर्वज्ञं प्रणम्यादौ लक्ष्मीवीरेन्दुसेवितम् ।
भाष्यं सिद्धान्तसारस्य वक्ष्ये ज्ञानसुभूषणम् ॥ १ ॥

जीवगुणठाणसण्णापज्जतीपाणमग्गणणवूणे ।
सिद्धंतसारमिणमो भणामि सिद्धे णमंसित्ता ॥ १ ॥

जीवगुणस्थानसंज्ञापर्याप्तिप्राणमार्गणानवोनान् ।
सिद्धान्तसारमिदानीं भणामि सिद्धान् नमस्कृत्य ॥

एतद्गाथार्थ —इणमो—इदानीं । सिद्धंतसारं—इति, सिद्धान्तसार-नामग्रन्थं । भणामीति—भणिष्यामि कथयिष्यामि । यावत् किं कृत्वा ? पूर्वं सिद्धे णमसित्ता—सिद्धान् नमस्कृत्य । कथभूतान् सिद्धान् ? जीव-गुणठाणसण्णापज्जतीपाणमग्गणणवूणे—जीवगुणस्थानसंज्ञापर्याप्तिप्राणमार्गणानवकोनान् । जीव इति-चतुर्दशजीवसमासाः । गुणठाण—चतु-

जीवगुणे तह जोए सपच्चए मग्गणासु उवओगे ।
जीवगुणेसु वि जोगे उवओगे पच्चए वुच्छं ॥ ३ ॥

जीवगुणान् तथा योगान् सप्रत्ययान् मार्गणासु उपयोगान् ।
जीवगुणेष्वपि योगान् उपयोगान् प्रत्ययान् वक्ष्ये ॥

सकलग्रन्थार्थसूचनद्वाररूपेय गाथा। वुच्छ इति—वक्ष्ये, कान् ? मग्गणासु—चतुर्दशमार्गणासु जीवगुणान्, जीवाश्चतुर्दशभेदा गुणाश्चतुर्दशगुणस्थानानि । जीवाश्च गुणाश्च जीवगुणास्तान् जीवगुणान् चतुर्दशमार्गणासु वक्ष्ये । मार्गणाः काश्चेत् ? तदाह—गई[1], इत्यादि गाथोक्ताश्चतुर्दशमार्गणाः । तह जोए—तथा तेनैव प्रकारेण चतुर्दशमार्गणासु पञ्चदशयोगान् वक्ष्ये । सपच्चए—मार्गणासु सप्तपञ्चाशत्प्रत्ययान् आस्रवान् वक्ष्ये । तथा मार्गणासु द्वादशोपयोगान् वक्ष्ये । तथा जीवगुणेसु वि—जीवगुणेष्वपि वक्ष्ये। कान् ? जोगे[2]—योगान्, चतुर्दशजीवसमासेषु योगान् पञ्चदश वक्ष्ये । चतुर्दशगुणस्थानेष्वपि पञ्चदश योगान् वक्ष्ये । उवओगे पच्चए वुच्छ—पुनः जीवसमासेषु गुणस्थानेषु च द्वादशोपयोगान् सप्तपञ्चाशत्प्रत्ययांश्च वक्ष्ये । मार्गणासु जीवान् गुणान् तथा योगान् सप्रत्ययान् उपयोगान् वक्ष्ये । अनु[3] च जीवेषु गुणेसु च योगान् उपयोगान् प्रत्ययान् वक्ष्ये इति स्पष्टार्थः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्दशमार्गणासु चतुर्दशजीवसमासान् कथयन्नाह,—

तिगईसु सण्णिजुयलं चउदस तिरिएसु दोण्णि वियलेसु ।
एयपणक्खे वि य चदु पुढवीपणए य चत्तारि ॥ ४ ॥

---

१ गइ इंदिये च काए जोगे वेए कसायणाणे य ।
सजमदसणलेस्साभवियासम्मत्तसण्णिआहारे ॥ १ ॥

२ 'जोए' इति पाठः टीकायां । ३ पश्चात् ।

देशगुणस्थानानि । सण्णा—चतस्रः संज्ञाः । पज्जत्ती—षट्पर्याप्तयः । पाण—दशद्रव्यप्राणाः । मग्गणणव इति—नवसंख्योपेता मार्गणाः । एतै ऊणे—ऊनान् रहितानित्यर्थः ॥ १ ॥

सिद्धाणं सिद्धगई दंसण णाणं च केवलं खइयं ।
सम्मत्तमणाहारे सेसा संसारिए जीवे ॥ २ ॥

सिद्धानां सिद्धगतिः दर्शनं ज्ञानं च केवलं क्षायिकं ।
सम्यक्त्वमनाहारकं शेषाः संसारिणि जीवे ॥

नमस्कारगाथायां प्रोक्तं मार्गणानवरहितान् सिद्धान् नत्वा, तर्हि सिद्धेषु पंच का संतीत्याशंकायामाह—सिद्धाणं सिद्धगई इत्यादि । सिद्धानां सिद्धगतिः स्यात् । सिद्धगतिरिति कोऽर्थः ? सिद्धपर्यायप्राप्तिरित्यर्थः । इत्येका मार्गणा सिद्धेषु वर्तते । तथा, दंसण णाणं च केवलं खइयं—केवलशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते, सिद्धानां केवलदर्शनमिति सिद्धेषु द्वितीया मार्गणा वर्तते । केवलज्ञानमिति तृतीया मार्गणा सिद्धेषु स्यात् । सम्मत्तमणाहारे—सिद्धानां क्षायिकं सम्यक्त्वं चतुर्थी मार्गणा सिद्धेषु विद्यते । सिद्धानामनाहारकत्वं पंचमी मार्गणा सिद्धेषु भवति । तात्पर्यमाह—इत्युक्तपंचमार्गणासहितान् नवमार्गणा रहितान् सिद्धान् नमेत्यर्थः । सेसा संसारिए जीवे—शेषा उद्धरिता मार्गणा संसारिषु वर्तन्ते । अथवा असेसा संसारिए जीवे—ये के संसारिणो जीवा वर्तन्ते तेषु अशेषाश्चतुर्दशमार्गणा स्युरित्यर्थः ॥ २ ॥

अथ प्रथमसूत्रपातनिकामाह;—

१ हता इत्यपपाठः । २ संति इत्या इति पुस्तके पाठः । ३ सम्म इत्यपि मत्तवन्तः पाठः पुस्तके ।

जीवगुणे तह जोए सपच्चए मग्गणासु उवओगे ।
जीवगुणेसु वि जोगे उवओगे पच्चए वुच्छं ॥ ३ ॥

जीवगुणान् तथा योगान् सप्रत्ययान् मार्गणासु उपयोगान् ।
जीवगुणेष्वपि योगान् उपयोगान् प्रत्ययान् वक्ष्ये ॥

सकलग्रन्थार्थसूचनद्वाररूपेयं गाथा। वुच्छ इति—वक्ष्ये, कान् ? मग्गणासु—चतुर्दशमार्गणासु जीवगुणान्, जीवाश्चतुर्दशभेदा गुणाश्चतुर्दशगुणस्थानानि । जीवाश्च गुणाश्च जीवगुणास्तान् जीवगुणान् चतुर्दशमार्गणासु वक्ष्ये । मार्गणाः काश्चेत् ? तदाह—गई[1], इत्यादि गाथोक्ताश्चतुर्दशमार्गणाः । तह जोए[2]—तथा तेनैव प्रकारेण चतुर्दशमार्गणासु पचदशयोगान् वक्ष्ये । सपच्चए—मार्गणासु सप्तपचाशत्प्रत्ययान् आस्रवान् वक्ष्ये । तथा मार्गणासु द्वादशोपयोगान् वक्ष्ये । तथा जीवगुणेसु वि—जीवगुणेष्वपि वक्ष्ये। कान् ? जोगे—योगान्, चतुर्दशजीवसमासेषु योगान् पचदश वक्ष्ये । चतुर्दशगुणस्थानेष्वपि पचदश योगान् वक्ष्ये । उवओगे पच्चए वुच्छ—पुन जीवसमासेषु गुणस्थानेषु च द्वादशोपयोगान् सप्तपंचाशत्प्रत्ययाश्च वक्ष्ये । मार्गणासु जीवान् गुणान् तथा योगान् सप्रत्ययान् उपयोगान् वक्ष्ये । अनु[3] च जीवेषु गुणेसु च योगान् उपयोगान् प्रत्ययान् वक्ष्ये इति स्पष्टार्थः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्दशमार्गणासु चतुर्दशजीवसमासान् कथयन्नाह,—

तिगईसु सण्णिजुयलं चउदस तिरिएसु दोण्णि वियलेसु ।
एयपणक्खे वि य चदु पुढवीपणए य चत्तारि ॥ ४ ॥

---

१ गइ इंदिये च काए जोगे वेए कसायणाणे य ।
संजमदसणलेस्साभवियासम्मत्तसण्णिआहारे ॥ १ ॥

२ 'जोए' इति पाठ टीकायां । ३ पश्चात् ।

त्रिगतिषु संज्ञियुगलं चतुर्दश तिर्यक्षु द्वौ विकलेषु ।
एकपंचाक्षेऽपि च चत्वार पृथिवीपंचके च चत्वारः ॥

' तिग ' इत्यादि । तिसृषु गतिषु नरकमनुष्यदेवगतिषु जीवसमासद्वयं भवति । तत् किं ' सण्णिजुयलं—पंचेन्द्रियसंज्ञिनो युग्ममिति । कोऽर्थः ? नरकगत्यां पंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ जीवसमासौ भवतः । तथा मनुष्यगत्यां देवगत्यां च संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तजीवसमासद्वयं भवति । चउदस तिरिएसु—तिर्यक्षु तिर्यग्गतौ चतुर्दशजीवसमासा भवन्ति । ते के ?—

बादरसुहुमेगिंदियबितिचउरिंदियअसण्णिसण्णी य ।
पज्जत्तापज्जत्ता एवं ते चोद्दसा जीवा ॥ १ ॥

एवं गाथोक्तचतुर्दशजीवसमासा भवन्ति । दोण्णि वियलेसु—द्वित्रिचतुरिन्द्रियेषु, दोण्णि—द्वौ पर्याप्तापर्याप्तौ जीवसमासौ भवतः । एय पणक्खे वि य चदु—एकेन्द्रियेषु पंचेन्द्रियेषु च चत्वारो जीवसमासाः । तत्रैकेन्द्रियेषु एकेन्द्रियसूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्ता इति चत्वारो जीवसमासा सन्ति । पंचेन्द्रियेषु पंचेन्द्रियसंज्ञ्यसंज्ञिन पर्याप्तापर्याप्ता इति चत्वारो जीवसमासा भवन्ति । पुढवीपणए य चत्तारि—पृथ्वीपंचके च चत्वारः पृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतिषु चत्वारो जीवसमासा भवन्ति । ते के ? सूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्ता इति चत्वारः । पृथ्वी सूक्ष्मा बादरा पर्याप्ता अपर्याप्ता च । एवमबादिषु योज्यम् ॥ ४ ॥

दस तसकाए सण्णी सयमणाईसु सत्तजोगेसु ।
वेइंदियादिपुण्णा पणमट्ठे सत्त ओराले ॥ ५ ॥

१ बादरसूक्ष्मैकेन्द्रियद्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिनश्च ।
पर्याप्तापर्याप्ता एवं ते चतुर्दश जीवाः ॥

२ पंचेन्द्रियेषु इति पाठः पुस्तके नास्ति । ३ अपर्याप्ता इति पाठः पुस्तके नास्ति ।

दश त्रसकाये सञ्ज्ञी सत्यमनआदिषु सप्तयोगेषु ।
द्वीन्द्रियादिपूर्णाः पचाष्टमे सप्त ओराले ॥

दस तसकाए—त्रसकायेषु द्वित्रिचतुरिन्द्रियपचेन्द्रियेषु दश जीवसमासा भवन्ति । ते के ? द्वित्रिचतुरिन्द्रियाः पर्याप्तापर्याप्ता इति षट् । पचेन्द्रियसञ्ज्ञ्यसंज्ञिन· पर्याप्तापर्याप्ता इति चत्वार एवं दश । सण्णी सच्चमणाईसु सत्तजोगेसु—सत्यमनःप्रभृतिषु सत्यासत्योभयानुभयमनोयोगेषु सत्यासत्योभयवचनयोगेषु सप्तसु योगेषु प्रत्येकं एकः सञ्ज्ञिपर्याप्तको जीवसमासो भवति । वेइंदियादिपुण्णा पणमट्ठे—अष्टमेऽनुभयवचनयोगे द्वीन्द्रियादयः पर्याप्ताः पंच जीवसमासा भवन्ति । तानाह—द्वित्रिचतुरिन्द्रियपंचेन्द्रियसञ्ज्ञ्यसंज्ञिनः पर्याप्ता इति पच । सत्त ओराले—औदारिकशरीरे सप्तजीवसमासा भवति । एकेन्द्रियसूक्ष्मबादरपर्याप्ता इति द्वयं द्वित्रिचतुरिन्द्रियपचेन्द्रियसञ्ज्ञ्यसंज्ञिनः पर्याप्ता इति पच, एव सप्तजीवसमासा औदारिककाययोगे भवन्तीत्यर्थः ॥ ५ ॥

मिस्से अपुण्णसग इगिसण्णी वेउव्वियादिचउसु च ।
कम्मइए अट्ठ त्थी-पुंसे पंचक्खगयचउरो ॥ ६ ॥

मिश्रे अपूर्णसप्त एकसञ्ज्ञी विगूर्विकादिचतुर्षु च ।
कार्मणे अष्टौ स्त्रीपुसोः पचाक्षगतचत्वारः ॥

मिस्से अपुण्णसग इगिसण्णी—औदारिकमिश्रकाययोगे अपर्याप्ताः सप्त, इगिसण्णी—एक संज्ञिपर्याप्तक एवमष्टौ जीवसमासा. । ते के ? एकेन्द्रियसूक्ष्मबादरद्वित्रिचतुरिन्द्रियपचेन्द्रियसंज्ञ्यसञ्ज्ञिनोऽपर्याप्ताः सप्त, एकः पर्याप्त. सञ्ज्ञी स च केवलिसमुद्घातापेक्षया ग्राह्यः, एवमष्टौ जीवसमासा औदारिकमिश्रकाययोगे भवन्तीति विज्ञेय । वेउव्वियादिचउसु च—वैक्रियिकादिचतुर्षु काययोगेपु चकारादेकः सञ्ज्ञी । अत्र भेद·—

वैक्रियिककाययोगे पंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्त इत्येको भवति । वैक्रियिकमिश्रकाययोगे पंचेन्द्रियसंज्ञ्यपर्याप्तको भवति । आहारककाययोगे पंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तको भवति । आहारकमिश्रकाययोगे पंचेन्द्रियसंज्ञ्यपर्याप्तको भवति । कम्मइए अट्ठ—कार्मणकाययोगे औदारिकमिश्रकायोक्ता अष्ट जीवसमासा भवन्ति । त्थीपुंसे पंचक्खगयचउरो—स्त्रीवेदे पंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्तपंचेन्द्रियासंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ता एते चत्वार । पुंवेदे स्त्रीवेदोक्ताश्चत्वारो जीवसमासा भवन्ति ॥ ६ ॥

संढे कोहे माणे मायालोहे य कुमइकुसुईये य ।
चोद्दस इगि वेभंगे मइसुइअवहीसु सण्णिदुगं ॥ ७ ॥

षंढे क्रोधे माने मायालोभयो च कुमतिकुश्रुतयोः च ।
चतुर्दश एको विभंगे मतिश्रुतावधिषु संज्ञिद्विकं ॥

संढे—नपुंसकवेदे चतुर्दश जीवसमासा भवन्ति । तथा कोहे माणे मायालोहे य—क्रोधे माने मायायां लोभे च चतुर्दश जीवसमासा भवन्ति । तथा कुमइकुसुईये—कुमतौ कुश्रुतौ च चतुर्दश जीवसमासा भवन्ति । इगि वेभंगे—विभंगे अवधिज्ञाने एक पंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तक एव । मइसुइअवहीसु सण्णिदुगं—मतिश्रुतेऽवधिज्ञानेषु त्रिषु प्रत्येकं सण्णिदुगं—पंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ जीवसमासौ स्त इत्यर्थ ॥ ७ ॥

मणकेवलेसु सण्णी पुण्णो सामाइयादिछक्कसु तह य ।
चउदस असंजमे पुण लोयणअवलोयणे छक्कं ॥ ८ ॥

मन केवलयो संज्ञी पूर्णं सामायिकादिषट्सु तथा च ।
चतुर्दश असंयमे पुन लोचनावलोकने षट्कं ॥

१ मतिश्रुतावधिज्ञानेषु इति पुस्तके ।

मणकेवलेसु सण्णी पुण्णो—मन.पर्ययकेवलज्ञानयोः द्वयो. पचेन्द्रिय-सज्ञिपर्याप्त एव एकजीवसमासो भवति। सामाइयादिछसु तह य—तथा तेनैव प्रकारेण च देशसंयम—सामायिक—च्छेदोपस्थापना—परिहारविशुद्धि—सूक्ष्मसॉम्पराय—यथाख्यातसयतेषु षट्सु सयमेषु प्रत्येक संज्ञिपर्याप्त एक एव स्यात् । चउदस असजमे—असयमनाम्नि सप्तमे संयमे चतुर्दशजीवसमासा भवन्ति । पुण लोयणअवलोयणे छक्क—पुनः लोचनावलोकने चक्षुर्दर्शने जीवसमासषट्क भवति । चतुरेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ, पचेन्द्रियासंज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ, पचेन्द्रियसज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ उभौ इति षट्जीवसमासाश्चक्षुर्दर्शने भवन्तीत्यर्थः ॥ ८ ॥

चउदस अचक्खुलोए दो एकं अवहिकेवलालोए ।
किण्हादितिए चउदस तेजाइसु सण्णियदुगं च ॥ ९ ॥

चतुर्दश अचक्षुरालोके द्वौ एकोऽवधिकेवलालोके ।
कृष्णादित्रिके चतुर्दश तेजआदिषु संज्ञिद्विक च ॥

चउदस अचक्खुलोए—अचक्षुर्दर्शने चतुर्दशजीवसमासा भवन्ति । दो एक्क अवहिकेवलालोए—अत्र यथासख्येन व्याख्या, अवधिज्ञाने पचेन्द्रियसज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ जीवसमासौ भवत', केवलदर्शने पचेन्द्रियसज्ञिपर्याप्तक एक एव जीवसमासः स्यात् । किण्हादितिए चउदस—कृष्णादित्रिके कृष्णनीलकापोतासु लेश्यासु तिसृषु चतुर्दशजीवसमासा ज्ञेयाः । तेजाइसु सण्णियदुग च—तेजआदिषु पीतपद्मशुक्ललेश्यात्रिके पचेन्द्रियसज्ञिपर्याप्तापर्याप्तजीवसमासद्विकं भवति ॥९॥

चउदस भव्वाभव्वे दुण्णेगं खाइयादितिसु मिस्से ।
अपुण्णा सग पुण्णा सण्णी इगि चउदस य दोसु कमे ॥१०॥

चतुर्दश भव्याभव्ययोः द्वौ एकः क्षायिकादित्रिषु मिश्रे ।
अपूर्णा सप्त पूर्ण संज्ञी एक चतुर्दश च द्वयोः क्रमेण ॥

भव्यजीवेऽभव्यजीवे च चतुर्दश जीवसमासा भवन्ति । दुण्णेगं खाइयादितिसु मिस्से—अत्र यथासंख्यं व्याख्येयं, क्षायिकादित्रिषु क्षायिकोपशमवेदकसम्यक्त्वेषु पंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्तजीवसमासौ द्वौ भवतः, मिश्रे सम्यक्त्वे पंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तक एक एव जीवसमासो भवति । मिश्रे मरणासंभवादपर्याप्तत्वं [1] न संभवति । अपुण्णा सग पुण्णा सण्णी इगि चउदस य दोसु कमे—कमे इति–क्रमेण, दोसु—द्वयोः सासादनमिथ्यात्वसम्यक्त्वयोः, अपुण्णा सग—अपर्याप्ताः सप्त, सण्णी इगि—पर्याप्तसंज्ञी एक, चतुर्दश च, । अयं व्यक्तिः —सासादनसम्यक्त्वे एकेन्द्रियसूक्ष्मबादरद्वित्रिचतुरेन्द्रियपंचेन्द्रियसंज्ञ्यसंज्ञिन एवं सप्त अपर्याप्ताः पंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्त एक एव एवं अष्टौ जीवसमासाः (सासादनसम्यक्त्वे) भवन्तीति भावः । मिथ्यात्वसम्यक्त्वे एकेन्द्रियाद यश्चतुर्दश जीवसमासा भवन्तीति सूत्रार्थः ॥ १० ॥

सण्णिअसण्णिसु दोण्णि य आहारअणाहारएसु विण्णेया ।
जीवसमासा चउदस अहेम जिणेहिं णिद्दिट्ठा ॥ ११ ॥

संज्ञ्यसंज्ञिनो द्वौ च आहारानाहारकयोः विज्ञेयाः ।
जीवसमासाश्चतुर्दश अधमेव जिनैः निर्दिष्टाः ॥

सण्णिअसण्णिसु दोण्णि य—संज्ञिजीवे पंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ जीवसमासौ भवतः । असंज्ञिजीवे असंज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ जीव

१ सासादने च मिथ्यात्वे च सासादनमिथ्यात्वे ते च ते सम्यक्त्वे तयोरिति विग्रहः । २ अत्रियासादन पुस्तके पाठः । ३ शब्दोऽयं द्विरुक्तोऽत्रः कोष्ठे निहितोऽस्माभिः ।

समासौ स्याताम् । आहारानाहरकेषु ज्ञेया जीवसमासाश्चतुर्दश अष्टाचेव । को भावः ? आहारकमार्गणाया चतुर्दशजीवसमासा विज्ञेया· । अनाहरकमार्गणायामष्टावेव जीवसमासा बोद्धव्या· । ते के इति चेदुच्यते—एकेन्द्रियसूक्ष्मबादरद्वित्रिचतुरिन्द्रियपचेन्द्रियसङ्यसज्ञिन एते सप्त अपर्याप्ताः, एक· सज्ञिपचेन्द्रियपर्याप्तक इत्यष्टौ जीवसमासाः । अनाहारे एतेऽष्टौ कथ सभवतीत्याशकायामाह—क्वचिद्विग्रहगत्यपेक्षया क्वचित्केवलिसमुद्घातापेक्षया । तथा चोक्तः—

विग्गहगइमावण्णा समुग्घाइयकेवलिअजोगिजिणा ।
सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारिया जीवा ॥ १ ॥

जिणेहिं णिद्दिट्ठा—जिनै· कथिता मार्गणासु यथासभव जीवसमासा जिनैर्भणिता इत्युक्तिलेशः ॥ ११ ॥

इति चतुर्दशमार्गणासु जीवसमासाश्चतुर्दश सक्षेपेण कथिता ।

अथ चतुर्दशमार्गणासु चतुर्दशगुणस्थानान्यवतारयन्नाह ग्रन्थकर्ता (मार्गणासु गुणस्थाननिरूपणार्थं गाथामाह)—

णारयतिरियणरामरगईसु चउपंचचउदसचयारि ।
इगिदुतिचउरक्खेसु य मिच्छं विदियं च उववादे ॥१२॥

नारकतिर्यङ्नरामरगतिषु चतुःपचचतुर्दशचत्वारि ।
एकद्वित्रिचतुरक्षेषु च मिथ्यात्व द्वितीय चोपपादे ॥

इय गाथा यथासख्य व्याख्येया । नारकतिर्यङ्नरामरगतिषु चतु·पंचचतुर्दशचत्वारि गुणस्थानानि यथासख्य भवन्ति । इति गतिमार्गणा

---

१ विग्रहगतिमापन्ना समुद्घातकेवल्ययोगिजिना ।
सिद्धाश्चानाहारका शेषा आहारका जीवा ॥

समाप्ता। इगिदुतिचचउरक्खेसु य मिच्छं बिदियं च उववादे—एकद्वित्रिचतुरक्षेषु च एकेन्द्रियेषु द्वीन्द्रियेषु त्रीन्द्रियेषु चतुरिन्द्रियेषु चैकं मिथ्यात्वं। च पुनः एतेष्वेव द्वितीयं सासादनगुणस्थानं, उववादे—उत्पत्तिकाले अपर्याप्तसमये स्यात्। एकेन्द्रियादिषु चतुर्षु मिथ्यात्वसासादनगुणस्थानद्वयं भवतीत्यर्थः ॥ १२ ॥

चउद्दस पंचक्खतसे धरादितिसु दुगिगि तेयपवणेसु।
सच्चाणुभये तेरस मणवयणे बारसऽण्णेसु ॥ १३ ॥

चतुर्दश पंचाक्षत्रसयोः धरादित्रिषु द्वे एकं तेजःपवनयोः।
सत्यानुभययोः त्रयोदश मनोवचनयोः द्वादशान्येषु ॥

चउदसेत्यादि। पंचक्खतसे—पंचाक्षेषु पंचेन्द्रियेषु मिथ्यात्वादिचतुर्दशगुणस्थानानि भवन्ति। इन्द्रियमार्गणा समाप्ता। 'तसे' इव प्रारभ्य कायमार्गणा निरूप्यते—तसे—इति, त्रसकायेषु च मिथ्यात्वादिचतुर्दशगुणस्थानानि स्युः। धरादितिसु दुगि—धरादिषु त्रिषु पृथिव्यप्वनस्पतिकायेषु, दुगि—मिथ्यात्वसासादनगुणस्थानद्वयं भवति। इगि तेयपवणेसु—तेजःपवनकायेषु एकं मिथ्यात्वगुणस्थानं भवति। इति कायमार्गणा समाप्ता। सच्चाणुभये तेरस मणवयणे—सत्यानुभयमनोयोगे मिथ्यात्वादित्रयोदश, सत्यानुभयवचनयोगे त्रयोदश। बारसऽण्णेसु—अन्येषु असत्यमनोयोगोभयमनोयोगासत्यवचनयोगोभयवचनयोगेषु चतुर्षु प्रत्येकं बारस—(द्वादश) मिथ्यात्वादीनि क्षीणकषायान्तानि स्युः ॥१३॥

ओरालिए य तेरस मिस्से कम्मे य मिस्सतियजोगी।
वेउव्वियदुग पढुतिय पमत्तमाहारदुगे य ॥ १४ ॥

---

१ बारस चान्येषु टीकापाठः पुस्तके।

औदारिके च त्रयोदश मिश्रे कार्मणे च मिश्रत्रिकयोगिन ।
वैगूर्विकद्विके चतुःत्रिक प्रमत्तमाहारकाद्विकें च ॥

औदारिककाययोगे मिथ्यात्वादिसयोगकेवलिपर्यन्तानि त्रयोदश गुणस्थानानि भवन्ति। मिस्से कम्मे य मिस्सतियजोगी—मिस्से इति औदारिकमिश्रकाययोगे, कम्मे य—इति, कार्मणकाययोगे च, मिस्सतियजोगी—मिश्रत्रिक सयोगिगुणस्थान च भवति। मिश्रात्रिकामिति कोऽर्थ ? मिथ्यात्वसासादनाविरतानीति मिश्रत्रय भण्यते। औदारिकमिश्रकाययोगे कार्मणकाययोगे च मिथ्यात्वसासादनाविरतसयोगकेवलीनि नामानि चत्वारि गुणस्थानानि भवन्तीत्यर्थ। मिश्रकार्मणकाययोर्मिश्रगुणस्थान कुतो न सभवति ? मरणाभावात्। तथा॰चोक्त,—

' मिश्रे क्षीणे सयोगे च्च मरण नास्ति देहिनाम् '

इति वचनात्। वेउव्वियदुग चदुतिय—वैक्रियिकद्विके चत्वारि त्रीणि यथासख्य। वैक्रियिककाययोगे मिथ्यात्वसासादनमिश्राविरतगुणस्थानचतुष्टय भवति। वैक्रियिकमिश्रकाययोगे मिथ्यात्वससादनाविरत-गुणस्थानत्रिक भवति। पमत्तमाहारदुगे य—आहारकद्विके आहारककाययोगे आहारकमिश्रकाययोगे च प्रमत्ताख्य एक पष्ठ भवति। इति योगमार्गणा समाप्ता॥ १४॥

वेदतिए कोहतिए णवगुणठाणाणि दसय तह लोहे।
अण्णाणतिए दो मइतिए चउत्थादिणव चेव॥ १५॥

वेदत्रिके क्रोधत्रिके नवगुणस्थानानि दशक तथा लोभे।
अज्ञानत्रिके द्वे मतित्रिके चतुर्त्थादिनव चैव॥

वेदातिए—वेदात्रिके स्त्रीवेदपुवेदनपुंसकवेदेषु त्रिषु मिथ्यात्वादीन्यनिवृत्तिकरणपर्यन्तानि नवगुणस्थानानि भवन्ति। इति वेदमार्गणा।

कोहतिए णव—क्रोधत्रिके क्रोधमानमायासु मिथ्यात्वादीन्यनिवृत्तिकरण पर्यन्तानि गुणस्थानानि भवन्ति । दसय तह लोहे—तथा लोभे मिथ्यात्वप्रमतिसूक्ष्मसाम्परायपर्यन्तं गुणस्थानदशकं भवति । इति कषायमार्गणा पूर्णा । अण्णाणतिए दो—अज्ञानत्रिके द्वे गुणस्थाने, कुमतिकुश्रुतकुअवधिषु त्रिषु प्रत्येकं मिथ्यात्वसासादनगुणस्थाने द्वे भवतः । मइतिए चउत्थादिणव चेव—मतित्रिके मतिश्रुतावधिज्ञानेषु चतुर्थादिनव चैव अविरतादिक्षीणकषायपर्यन्तानि नवगुणस्थानानि भवन्ति ॥ १५ ॥

सग मणपज्जे केवलणाणे जोगदुगं पमत्तादी ।
चदु सामाइयजुयले पमत्तजुयलं च परिहारे ॥ १६ ॥

सप्त मनःपर्यये केवलज्ञाने योगिद्विकं प्रमत्तादीनि ।
चत्वारि सामायिकयुगले प्रमत्तयुगलं च परिहारे ॥

सग मणपज्ज—मणपज्जे—इति, मनःपर्ययज्ञाने, सग—इति, सप्त गुणस्थानानि स्युः । तानि कानि चेदुच्यते प्रमत्तादिक्षीणकषायपर्यन्तानि सप्त भवन्ति । केवलणाणे जोगदुगं—केवलज्ञाने योगद्विकं सयोगायोगकेवलिगुणस्थानद्वयं भवति । इति ज्ञानमार्गणा । पमत्तादी चदु सामाइयजुयले—सामायिकयुगले सामायिकच्छेदोपस्थापनयोः प्रमत्तादनिवृत्तिकरणगुणस्थानपर्यन्तानि चत्वारि भवन्ति । पमत्तजुयलं च परिहार—परिहारविशुद्धिसंयमे तृतीये प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानद्वयं भवति ॥ १६ ॥

सुहमे सुहमं अंतिमचत्तारि हवंति अहखादे ।
अविरयाविरए इक्कं पंचमयं असंजमे चउरो ॥ १७ ॥

सूक्ष्मे सूक्ष्मं अन्तिमचत्वारि भवन्ति यथाख्याते ।
अविरताविरते एकं पंचमकं असंयमे चत्वारि ॥

सुहमे—इति, सूक्ष्मसाम्पराये चतुर्थे सयमे, सुहम—इति, सूक्ष्मसाम्परायनाम दशम एकं गुणस्थान भवति। अतिमचत्तारि जहखादे—इति, यथाख्याते पचमसयमे अन्तिमचत्वारि गुणस्थानानि भवन्ति। तानि कानि किन्नामानि चेत् ? उपशान्तकपायक्षीणकपायसयोगायोगकेवलिनामानि ज्ञेयानि। चरियाचरिए ईक्क पचमय—चरिताचरिते सयतासयते पष्ठे सयमे, ईक्क पचमय—इति, पचम देशविरताख्य भवति। असजमे चउरो—असयते सप्तमे मिथ्यात्वादिचतुर्थगुणस्थानानि चत्वारि भवन्ति। इति सयममार्गणा पूर्णा ॥ १७ ॥

वारस चक्खुदुगे णव अवहीए दुण्णि केवलालोए।
किण्हादितिए चउरो तेजापउमासु सत्तगुणा ॥ १८ ॥

द्वादश चक्षुर्द्विके नव अवधौ द्वे केवलालोके।
कृष्णादित्रिके चत्वारि तेज.पद्मयो॰ सप्तगुणाः ॥

वारस चक्खुदुगे—इति, चक्षुर्द्वये चक्षुर्दर्शनेऽचक्षुर्दर्शने च मिथ्यात्वादीनि क्षीणकषायपर्यन्तानि द्वादश गुणस्थानानि स्यु॰। णव अवहीए—अवधिदर्शने अविरतप्रभृतिक्षीणकषायावसानानि नवगुस्थानानि भवन्ति। दुण्णि केवलालोए—केवलालोके केवलदर्शने, दुण्णि—सयोगायोगकेवलिगुणस्थानद्वय स्यात्। इति दर्शनमार्गणा। किण्हादितिए चउरो—कृष्णादित्रिके चउरो—मिथ्यात्वसासादनमिश्राविरत्यभिधानानि गुणस्थानानि चत्वारि भवन्ति। तेजापउमासु—पीतपद्मलेश्ययोर्द्वयोः, सत्तगुणा—मिथ्यात्वादीन्यप्रमत्तान्तानिं सप्त भवन्ति ॥१८॥

सियलेस्साए तेरस भव्वे सव्वे अभव्वए मिच्छं।
इगिदह चदु अड खाइयतिए तहण्णेसु णियइक्कं ॥ १९ ॥

१-२ ‘एक्क’ इति पुस्तके पाठ ।

सितलेश्यायां त्रयोदश भव्ये सर्वाणि अभव्ये मिथ्यात्वं ।
एकादश चत्वारि अष्टौ क्षायिकत्रये तथान्येषु निजैकम् ॥

सिक्कलेस्साए तेरस—सितलेश्यायां शुक्ललेश्यायां मिथ्यात्वप्रभृतित्रयोदशगुणस्थानानि भवन्ति। इति लेश्यामार्गणा। भव्वे सव्वे—इति, भव्य जीवे, सव्वे—इति, मिथ्यात्वाद्ययोगकेवलिपर्यन्तानि चतुर्दशगुणस्थानानि सर्वाणि भवन्ति। अभव्वए—इति, अभव्यजीवे एकं मिथ्यात्वगुणस्थानं भवति। इति भव्यमार्गणा। इगिदह चदु अड खाइयतिए—क्षायिकत्रिके अत्र यथासंख्येन व्याख्या वर्तते तथाहि—क्षायिकसम्यक्त्वे एकादश चतुर्थादिसिद्धपर्यन्तान्येकादशगुणस्थानानि विद्यन्ते। वेदकसम्यक्त्वे, चदु—अविरताद्यप्रमत्तान्तानि चत्वारि गुणस्थानानि प्रतिपत्तव्यानि। उपशमसम्यक्त्वे, अड—अविरताद्युपशान्तकषायान्तानि अष्टौ ज्ञेयानि। तह ऽण्णेसु—तथान्येषु मिथ्यात्वसासादनमिश्रेषु, णियइक्कं—निजैकमिति। कोऽर्थः? मिथ्यात्वसम्यक्त्वे मिथ्यात्वमेकं भवति। सासादनसम्यक्त्वे निजं सासादनगुणस्थानमस्ति। मिश्रनाम्नि सम्यक्त्वे स्वकीयं मिश्रनामगुणस्थानं भवेत्। इति सम्यक्त्वमार्गणा ॥ १९ ॥

सण्णिअसण्णिसु बारस दो पढमादितिदस पण गुणा कमसो ।
आहारअणाहारे एसु इदि मग्गणठाणएसु गुणा ॥ २० ॥

संज्ञ्यसंज्ञिषु द्वादश द्वे प्रथमादित्रयोदश पंच गुणाः क्रमशः ।
आहारकानाहारके एतेषु इति मार्गणास्थानेषु गुणाः ॥

सण्णिअसण्णिसु बारस दो—अत्र यथासंख्याङ्कार। संज्ञिजीवे प्रथमादिक्षीणकषायपर्यन्तानि द्वादशगुणस्थानानि स्युः। असण्णिसु—असंज्ञिजीवेषु द्वौ गुणौ मिथ्यात्वसासादने भवतः इत्यर्थः। इति संज्ञिमार्गणा। पढमादितिदसपणगुणा कमसो आहारअणाहारे—कमसो—इति, अनु

क्रमेण यथासख्यतया, आहारके प्रथममिथ्यात्वादिसयोगान्तानि त्रयोदश-गुणस्थानानि सन्ति । अनाहारके पण गुणा—पञ्चगुणस्थानानि भवन्ति मिथ्यात्वसासादनाविरतिसयोगकेवल्ययोगकेवलिनामानि पञ्चगुणस्थानानि स्यु· । अनाहारके एतानि पञ्चगुणस्थानानि कथं सभवतीत्यारेकाया-माह—मिथ्यात्वसासादनाविरतेषु त्रिषु जीवाना विग्रहगत्या सत्या अ-नाहरकत्व सभवति । सयोगकेवलिनि समुद्घातापेक्षया ज्ञेयं । तथा चोक्त—

विग्गहगइमावण्णा समुग्घयकेवलिअजोगिजिणा ।
सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारिया जीवा ॥ १ ॥

अयोगकेवलिनि तु स्वभावतोऽनाहरकत्वमस्ति । एसु इदि मग्गण-ठाणएसु गुणा—इत्यमुना प्रकारेण एतेषु मार्गणास्थानेषु गुणा गुण-स्थानानि ज्ञेया· ॥ २० ॥

इति मार्गणासु गुणा भणिता ।

अथ चतुर्दशमार्गणासु पंचदशयोगान् प्रकटयन्नाह सूरि·—

आहारयओरालियदुगेहि हीणा हवंति णिरयसुरे ।
आहारयवेउव्वियदुगजोगे इगिदस तिरियक्खे ॥ २१ ॥

आहारकौदारिकद्विकैः हीना भवन्ति नारकसुरेषु ।
आहारकवैक्रियिकद्विकयोगेन एकादश तिरश्चि ॥

आहारय इत्यादि । णिरयसुरे—नरकगतौ देवगतौ च आहारका-हारकमिश्रकाययोगे इति द्वय, औदारिकौदारिकमिश्रकाययोगद्वय इति चतु-र्योगैर्हीना अन्ये उद्धरिता , इगिदस—एकादशयोगा भवन्ति । ते के इति चेत् ? मनोयोगचत्वारि वचनयोगचत्वारि वैक्रियिककाययोग-

वैक्रियिकमिश्रकाययोगकार्मणकाययोगा एवं एकादशयोगा नरकगत्यां देवगत्यां भवन्तीति ज्ञेयं। आहारयवेउव्वियदुगजोगे इगिदस तिरियक्खे— तिर्यग्गतौ आहारकाहारकमिश्रवैक्रियिकतन्मिश्रकाययोगैर्हीना अन्ये एकादशयोगा भवन्ति। ते के ? अष्टौ मनोवचनयोगा औदारिकतन्मिश्रकार्मणकाययोगाश्चेति त्रय एवं एकादश योगाः स्युः ॥ २१ ॥

वेगुव्वियदुगरहिया मणुए तेरस एयक्खकायेसु।
पंचसु ओरालदुगं कम्मइयं तिण्णि वियलेसु ॥ २२ ॥

वैगूर्विकद्विकरहिता मनुजे त्रयोदश एकाक्षकायेषु।
पंचसु औदारिकद्विकं कार्मणं त्रयो विकलेषु ॥

वेगुव्वियरहिया मणुए तेरस—इति, मनुष्यगतौ वैक्रियिकवैक्रियिकमिश्रकाययोगद्वयरहिता अन्ये त्रयोदश योगा भवन्ति। इति गतिमार्गणा। एयक्खकायेसु पंचसु ओरालदुगं कम्मइयं तिण्णि इति, एकेन्द्रिये, कायेसु पंचसु—इति, पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिकायेषु च औदारिकौदारिकमिश्रकाययोगद्वयं, कम्मइयं—कार्मण काययोग इति त्रयो योगा भवन्ति। वियलेसु इति पदस्य व्याख्यानमुत्तरगाथायां वर्तते ॥२२॥ तद्यथा;—

अणुभयवयणेण जुआ चदु पंचक्खे दु पंचदस जोगा।
तसकाए विण्णेया पणदह जोगेसु णियइक्कं ॥ २३ ॥

अनुभयवचनेन युताः चत्वार पंचाक्षे तु पंचदश योगा।
त्रसकाये विज्ञेया पंचदश योगेषु निजैकं ॥

वियलेसु अणुभयवयणेण जुआ चदु—इति, विकलेन्द्रियेषु द्वित्रिचतुरिन्द्रियेषु अनुभयवचनेन युक्ताः चत्वारो योगा भवन्ति। ते के ? औदारिकौदारिकमिश्रकार्मणानुभयवचननामान एते चत्वारो योगाः। पंचक्खे दु पंचदस जोगा—तु पुनः पंचाक्षे पंचेन्द्रियेषु

नचदश योगा भवन्ति । पचेन्द्रियेषु नानाजीवापेक्षया यथासभव-मुत्प्रेक्षणीया· । तसकाए त्रिण्णेया पणदह—इति, त्रसकायेषु सामान्यत्वेन पञ्चदशयोगा· सन्ति । इतीन्द्रियमार्गणाकायमार्गणाद्वयं जात । जोगेसु णियइक्क—इति, पचदशयोगेपु निजैकः स्वकीयः स्वकीयो योगो भवति । को भाव ? सत्यमनोयोगे सत्यमनोयोग·, असत्यमनो-योगेऽसत्यमनोयोग· । एव सर्वत्र ज्ञेय । इति योगमार्गणा ॥ २३ ॥

आहारयदुगरहिया तेरस इत्थीणउंसए पुंसे ।
कोहचउक्के सव्वे अण्णाणदुगे तिदह हुंति ॥ २४ ॥

आहारकद्विकरहिता· त्रयोदश स्त्रीनपुसकयो. पुसि ।
क्रोधचतुष्के सर्वे अज्ञानद्विके त्रयोदश भवन्ति ॥

आहारय इत्यादि । स्त्रीवेदे नपुसकवेदे च आहारकतन्मिश्रकाययोग-द्वयरहिता अन्येऽवशिष्टास्त्रयोदश योगा भवन्ति । पुसे—पुंवेदे, सव्वे—सर्वे पचदश योगा· स्यु· । इति वेदमार्गणा । कोहचउक्के सव्वे—क्रोध-चतुष्के क्रोधमानमायालोभचतुष्टये सर्वे योगा भवन्ति । इति कषाय-मार्गणा । अण्णाणदुगे—अज्ञानद्विके कुमतिकुश्रुतज्ञाने आहारकद्वय-योगवर्ज्यास्त्रयोदश योगा भवन्ति ॥ २४ ॥

मिस्सदुगाहारदुगंकम्मइयविहीण हुंति वेभंगे ।
दस सव्वे णाणतिए मणपज्जे पढमणवजोगा ॥ २५ ॥

मिश्रद्विकाहारद्विककार्मणविहीना भवन्ति विभगे ।
दश सर्वे ज्ञानत्रिके मन·पर्यये प्रथमनवयोगा ॥

मिस्सेत्यादि । विभगज्ञाने कवधिज्ञाने, मिस्सेत्यादि—औदारिकमि-श्रवैक्रियिकमिश्रकाययोगद्वयाहारकतन्मिश्रकाययोगद्वयकार्मणकाययोगवि-हीना उद्धरिता दशयोगा भवन्ति । ते के ? अष्टौ मनोवचनयोगा औ-दारिकवैक्रियिककाययोगौ। एव दश योगा· कवधिज्ञाने भवन्तीत्यथः ।

सव्वे णाणतिए—ज्ञानत्रिके मतिश्रुतावधिज्ञानत्रये सर्वे पंचदशयोगा भवन्ति । मणपज्जे पढमणवजोगा—मनःपर्ययज्ञाने प्रथमे 'अस्मादेवं' प्रथमा नवयोगा भवन्ति । ते के ? अष्टौ मनोवचनयोगा एक औदारिकयोग एवं नवयोगा ॥ २५ ॥

ओरालिय तम्मिस्सं कम्मइयं सच्चअणुभयाणं च ।
मणवयणाण चउक्कं केवलणाणे सगिगिदसयं ॥ २६ ॥

औदारिकं तन्मिश्रं कार्मणं सत्यानुभयानां च ।
मनोवचनानां चतुष्कं केवलज्ञाने सप्त एकादशकं ॥

केवलणाणे—केवलज्ञाने, सग—सप्तयोगा भवन्ति । कियन्नाम ? ओरालियं तम्मिस्सं—औदारिककाययोग, तन्मिश्र औदारिकमिश्रकाययोग, कार्मणकाययोग एते त्रयो योगा । सच्चेत्यादि—सत्यानुभयमनोवचनानां चतुष्कं सत्यमनोयोगानुभयमनोयोगौ, सत्यवचनयोगानुभयवचनयोगौ इति चत्वारो योगा एवं एकीकृत्य सप्तयोगा केवलज्ञाने भवन्तीत्यर्थ । अत्र तटस्थेनोच्यते—औदारिककाययोग औदारिकमिश्रकाययोग कार्मणकाययोगश्चैते त्रय केवलज्ञाने कथं संभवन्तीति चेत्, तदुच्यते—समुद्घातापेक्षया संभावनीया । तथा चोक्तं आगमग्रन्थे—

दंडदुगे ओरालं कवाडजुगले य पयरसंवरणे ।
मिस्सोरालिय भणियं सेसतिए जाण कम्मइय ॥ १ ॥

अस्या अर्थ —दंडकपाटयुग्मे औदारिककाययोगो भवति । कवाटयुगले च—च पुन कपाटप्रतरयुग्मे औदारिककाययोगो भवति । पयरसं-

१ इगिदसयं पुस्तके मूलपाठः टीकापाठोऽपि । २ ओरालियं टीकायां पाठः ।

१ दंडद्विके औदारिकं कपाटयुगले च प्रतरसंवरणे ।
मिश्रौदारिकं भणितं शेषत्रिके जानीहि कार्मणं ॥

वरणे मिस्सोरालिय भणिय—प्रतरसवरणे प्रतरसमुद्घातसकोचने औदारिकमिश्रकाययोगो भणितः। शेप त्रिकं प्रतरलोकपूरणसवरणत्रये कार्मणकाययोग जानीहि। इति ज्ञानमार्गणा। 'इगिदसय' इति पदस्य उत्तरगाथाया सम्बन्धः ॥ २६ ॥

कम्मइयदुवेगुव्वियमिस्सोरालूण पढमजमजुयले।
परिहारदुगे णवयं देसजमे चेव जहखादे ॥ २७ ॥

कार्मणद्विवैक्रियिकमिश्रौदारिकोना. प्रथमयमयुगले।
परिहारद्विके नवक देशयमे चैव यथाख्याते ॥

इगिदसयामिति पूर्वगाथास्थित पद, एकादशयोगा· प्रथमसयमयुगले सामायिकच्छेदोपस्थापनाद्वये भवन्ति। ते के [१] कम्मइय इत्यादि कार्मणकाययोगवैक्रियिकतन्मिश्रकाययोगद्वयौदारिकमिश्रकाययोगैरूना हीना अन्ये एकादशयोगा। ते के [२] अष्टौ मनोवचनयोगा औदारिककाययोग आहारकद्वयमित्येकादशयोगाः। परिहारदुगे णवय—परिहारविशुद्धिसूक्ष्मसापरायसंयमद्वये नवयोगा भवन्ति। ते के [२] अष्टौ मनोवचनयोगा एक औदारिककाययोग इति नव। देसजमे चेव—च पुन. देशसंयमे एते पूर्वोक्ता मनवचनानामष्टौ, एक औदारिकयोग एव नवयोगा भवन्ति। जहखादे—इति, उत्तर गाथाया सम्बन्धोऽस्ति ॥ २७ ॥

वेउव्वियदुगहारयदुगूण इगिदस असंजमे जोगा।
तेरस आहारयदुगरहिया चक्खुम्मि मिस्सूणा ॥ २८ ॥

वैक्रियिकद्विकाहरकद्विकोना एकादश असयमे योगाः।
त्रयोदश आहारकद्विकरहिता चक्षुषि मिश्रोना· ॥

१ 'मिस्सा' अन्यत्र। २ जुम्मे अन्यत्र।

जहखादे—यथाख्यातचारित्रे, वेउव्वियेत्यादि—वैक्रियिकवैक्रियिकमिश्राहारकाहारकमिश्रोना एकादश भवन्ति । ते के ? अष्टौ मनोवचनयोगा औदारिकतन्मिश्रकार्मणकाययोगा एवं एकादशयोगा यथाख्यातसंयमे भवन्तीत्यर्थः । असंजमे जोगा तेरस आहारदुगरहिया—असंयमे आहारकयोगद्वयरहिता अन्ये त्रयोदशयोगा भवन्ति । इति संयममार्गणा । चक्खुम्मि मिस्सूणा—इति पदस्योत्तरगाथायां सम्बन्धः ॥२८॥

बारस अचक्खुअवहिसु सव्वे सत्तेव केवलालोए ।
किण्हादितिए तेरस पणदह तेजादियचउक्के ॥ २९ ॥

द्वादश अचक्षुरवध्योः सर्वे सप्तैव केवलालोके ।
कृष्णादित्रिके त्रयोदश पंचदश तेजआदिकचतुष्के ॥

चक्खुम्मि मिस्सूणा—इति चक्षुर्दर्शने मिश्रोना औदारिकमिश्रवैक्रियिकमिश्रकार्मणकायहीनाः, बारस—द्वादशयोगा भवन्ति । अचक्खुअवहिसु सव्वे—अचक्षुर्दर्शनेऽवधिदर्शने च सर्वे पंचदशयोगाः स्युः । सत्तेव केवलालोए—केवलदर्शने सप्तैव केवलज्ञानोक्ता भवन्ति । इति दर्शनमार्गणा । किण्हादितिए तेरस—कृष्णादित्रिके कृष्णनीलकापोतलेश्यासु आहारकद्वयं विना त्रयोदश योगा भवन्ति । पणदह तेजादियचउक्के—पीतपद्मशुक्ललेश्यासु भव्ये च इति चतुष्के, पणदह—पंचदश योगा भवन्ति ॥ २९ ॥

तेरसऽभव्वे सव्वे खाइयजुम्मे खु उवसमे सम्मे ।
सासणमिच्छे तेरस अतिमिस्साहारकम्मइया ॥ ३ ॥

त्रयोदशाभव्ये सर्वे क्षायिकयुग्मे खलु उपशमे सम्यक्त्वे ।
सासादनमिथ्यात्वयोः त्रयोदश अतिमिश्राहारकर्मणा ॥

अभव्यजीवे आहारद्वयं विना अन्ये त्रयोदश योगा भवन्ति । इति लेश्यामार्गणा—भव्यमार्गणाद्वय । सव्वे खाइयजुम्मे खु—खु स्फुटं,

क्षायिकयुग्मे क्षायिकवेदकसम्यक्त्वे च सर्वे पचदशयोगाः सन्ति । उवसमे सम्मे सासणमिच्छे तेरस–इति, उपशमसम्यक्त्वे सासादनसम्यक्त्वे मिथ्यात्वसम्यक्त्वे आहारकाहारकमिश्रकाययोगद्वय विना, तेरस——त्रयोदश योगा भवन्ति । अतिमिस्साहारकम्मइया——इति पदस्य उत्तरगाथाया सम्बन्ध. ॥ ३० ॥

मिस्से दस सण्णीए सव्वे चउरो असण्णिए जोगा ।
गयकम्मइयाहारे अणाहारे कम्मणो इक्को ॥ ३१ ॥

मिश्रे दश सञ्ज्ञिनि सर्वे चत्वारोऽसञ्ज्ञिनि योगाः ।
गतकार्मणा आहारके अनाहारके कार्मण एक· ॥

अतिमिस्साहारकम्मइया मिस्से दस इति क्रियाकारकसम्बन्धः। मिस्से–इति, मिश्रे सम्यक्त्वे दशयोगा भवन्ति। अतिमिस्सेति——त्रिमिश्राश्च औदारिकमिश्रवैक्रियिकमिश्राहारकमिश्रा आहारकश्च कार्मणकश्च त्रिमिश्राहारकार्मणका न विद्यन्ते येषु योगेषु ते तथोक्ता·। कोऽर्थः ? मिश्रसम्यक्त्वे एते पचवर्जा अन्ये अष्टौ मनोवचनयोगा औदारिककाययोग-वैक्रियिककाययोगौ द्वौ एव दश योगा भवन्तीत्यर्थः। इति सम्यक्त्वमार्गणा। सण्णीए सव्वे——सञ्ज्ञिजीवे सर्वे योगा भवन्ति। चउरो असण्णिए जोगा——असञ्ज्ञिजीवे औदारिकौदारिकमिश्रकार्मणकाययोगानुभयभाषा एते चत्वारो योगाः स्यु.। इति सञ्ज्ञिमार्गणा । गयकम्मइयाहारे——आहारके जीवे गतकार्मणाः कार्मणकाययोगवर्जा अन्ये चतुर्दशयोगाः सन्ति। अणाहारे कम्मणो इक्को——अनाहारके जीवे कार्मणकाख्य एको योग. । कदा यदा जीवो ऽविग्रहगतिं करोति तदा सभवतीत्यर्थ· । इति आहारकमार्गणा ॥ ३१ ॥

इति मार्गणासु पंचदशयोगा समाप्ता ।

अथ चतुर्दशमार्गणास्थानेषु द्वादशोपयोगा कथ्यन्ते,—

णव णव बारस णव गइचउक्कए तिण्णि इगिबितियक्खे ।
चउरक्खे उवओगा चउ बारस हुंति पंचक्खे ॥ २२ ॥

नव नव द्वादश नव गतिचतुष्के त्रय एकद्वित्र्यक्षे ।
चतुरक्षे उपयोगाश्चत्वारो द्वादश भवन्ति पंचाक्षे ॥

णवेत्यादि । गतिचतुष्के, णव णव बारस णव—नव नव द्वादश नव । अत्र यथासंख्यालंकार । तद्यथा । नरकगतौ नवोपयोगा । ते के ? कुमति–कुश्रुत–अवधि–सम्यग्ज्ञानत्रीणि चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनानि त्रीणि, एवं उपयोगा नव नरकगतौ नारकाणां ज्ञेया । तिर्यग्गतावपि एते एव उपयोगा नव भवन्ति । मनुष्यगतौ द्वादशोपयोगा भवन्ति । ते के ? कुमति–कुश्रुत–अवधि–सुमति–सुश्रुता–ऽवधि–मनःपर्यय-केवलज्ञानान्यष्टौ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनानि चत्वारि एवं द्वादशोपयोगा मनुष्यगतौ मनुष्याणां ज्ञातव्या इत्यर्थः । देवगतौ नव ये नारकगत्युक्तास्त एवोपयोगा नव भवन्ति । इति गतिमार्गणा । तिण्णि इगिबितियक्खे—एकेन्द्रिये द्वीन्द्रिये त्रीन्द्रिये च, तिण्णि—त्रयुपयोग त्रयं भवति । कुमति–कुश्रुतज्ञानद्वयं अचक्षुर्दर्शनमेकमिति त्रयं । चउरक्खे उवओगा—चतुरिन्द्रिय उपयोगाश्चत्वार । ते के ? कुमति-कुश्रुत ज्ञानोपयोगौ द्वौ चक्षुरचक्षुर्दर्शनोपयोगौ द्वौ एवं चत्वार । बारस हुंति पंचक्खे—पंचाक्षे पंचेन्द्रिये द्वादशोपयोगा भवन्ति मनुष्यापेक्षया । इतीन्द्रियमार्गणा ॥ २२ ॥

कुमई कुसुय अचक्खू तिण्णि वि भूआउतेउवाउवणे ।
बारस तसेसु मणवचिसच्चाणुभएसु बारस वि ॥ २३ ॥

कुमति कुश्रुतं अचक्षुः त्रयाऽपि भूम्यप्तेजोवायुवनस्पतिषु ।
द्वादश त्रसेषु मनोवचनसत्यानुभयेषु द्वादशापि ॥

कुमइ इत्यादि । कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञानमचक्षुर्दर्शनमेते त्रयोपयोगा., भू इति पृथिवीकाये अप्काये तेजःकाये वायुकाये वनस्पतिकाये च भवन्ति। वारस तसेसु—इति, त्रसकायेषु द्वादशोपयोगा भवन्ति। इति कायमार्गणा। मणवचिसच्चाणुभएसु बारस वि—इति, सत्यमनोयोगेऽनुभयमनोयोगे सत्यवचनयोगेऽनुभयवचनयोगे एतेषु चतुर्षु योगेषु द्वादशैव उपयोगा भवन्ति ॥ २३ ॥

दस केवलदुग वज्जिय जोगचउक्के दुदसय ओराले ।
केवलदुगमणपज्जवहीणा णव होंति वेउव्वे ॥ २४ ॥

दश केवलद्विक वर्जयित्वा योगचतुष्के द्वादश औदारिके ।
केवलद्विकमनःपर्ययहीना नव भवन्ति वैक्रियिके ॥

दस केवलदुग वज्जिय जोगचउक्के—इति, असत्यमनोयोगोभयमनोयोगासत्यवचनयोगोभयवचनयोगा इति योगचतुष्के केवलद्विकवर्जिताः केवलज्ञानकेवलदर्शनद्वयरहिता अन्ये दशोपयोगाः सन्ति । दुदसय ओराले—इति, औदारिककाययोगे द्वादशोपयोगा विद्यन्ते। केवलदुगमणपज्जवहीणा णव होंति वेउव्वे—इति, वैक्रियिककाययोगे केवलज्ञानकेवलदर्शनद्वयमनःपर्ययज्ञानहीना अन्ये नव उपयोगा भवन्ति ॥ २४ ॥

चक्खु विभंगूणा सग मिस्से आहारजुम्मए पढमं ।
दंसणतियणाणतियं कम्मे ओरालमिस्से य ॥ २५ ॥

चक्षुर्विभगोना. सप्त मिश्रे आहारकयुग्मे प्रथम ।
दर्शनत्रिकाज्ञानत्रिक कार्मणे औदारिकमिश्रे च ॥

चक्खुविभगूणा सग मिस्से—इति, वैक्रियिकमिश्रकाययोगे चक्षुर्दर्शनविभंगज्ञानोना· सप्त भवन्ति । के ते ? कुमतिकुश्रुतसुमतिश्रुतावधिज्ञानानि पच अचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनद्वयमिति सप्तोपयोगा स्यु । आहार-

कम्मए पढमं दंसणतियं णाणतियं—आहारकयुग्मे च, पढमं णाणतियं—प्रथमं ज्ञानत्रिकं प्रथमं दर्शनत्रिकं भवति। कोऽर्थः? मतिश्रुतावधिज्ञानोपयोगात्रय, चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनोपयोगात्रय., एवं षडुपयोगा आहारकयुग्मे भवन्तीति स्पष्टार्थः। कम्मे ओराळमिस्से य—इति, पदस्य व्याख्यानं उत्तरगाथायां ज्ञेयं ॥ २५ ॥

वेभंगचक्खुदंसणमणपज्जयहीण णव वधूसंढे।
मणकेवलदुगहीणा णव दस पुंसे कसाएसु ॥ २६ ॥

विभंगचक्षुर्दर्शनमनःपर्ययहीना नव वधूषंढयोः।
मनःकेवलद्विकहीना नव दश पुंसि कषायेषु ॥

कम्मे ओराळमिस्से य—कार्मणकाययोगे औदारिकमिश्रकाययोगे च, वेभंगचक्खुदंसणमणपज्जयहीण णव—विभंगज्ञानचक्षुर्दर्शनमनःपर्ययज्ञानरहिता अन्ये नवोपयोगा सन्ति। इति योगमार्गणा। वधूसंढे—स्त्रीवेदे नपुंसकवेदे च, मणकेवलदुगहीणा णव—मनःपर्ययकेवलज्ञानकेवलदर्शनैर्भिर्विहीना इतरे नवोपयोगा स्युः। दस पुंसे—इति, पुंवेदे केवलज्ञानकेवलदर्शनाभ्यां विना अन्ये दश उपयोगा भवन्ति। इति वेदमार्गणा। कसाएसु—क्रोधमानमायालोभेषु केवलज्ञानदर्शनवर्जा दश एव भवन्ति। इति कषायमार्गणा ॥ २६ ॥

अण्णाणतिए ताणि य ति चक्खुजुम्मं च पंच सग चउसु।
चउ तिण्णि णाण दंसण पंचमणाणंतिमा दुण्णि ॥ २७ ॥

अज्ञानत्रिके तान्येव त्रीणि चक्षुर्युग्मं च पंच सप्त चतुर्षु।
चत्वारि त्रीणि ज्ञानानि दर्शनानि पंचमज्ञानेऽन्तिमौ द्वौ ॥

अण्णाणेत्यादि। अज्ञानत्रिके कुमतिकुश्रुतकावधिज्ञानत्रिके, ताणि य ति—तानि अज्ञानानि त्रीणि। चक्खुजुम्मं च पंच—च पुनः चक्षुर्युग्मं

एव पच । कुमतिज्ञाने कुश्रुतज्ञाने कवधिज्ञाने च कुमतिकुश्रुतविमग-ज्ञानानि त्रीणि चक्षुरचक्षुदर्शने द्वे एते उपयोगाः पच स्युः। सग चउसु चउ तिण्णि णाण दंसण—इति, चतुर्षु मतिश्रुतावधिमन.पर्ययज्ञानेषु सप्तोपयोगा भवन्ति । ते के ? चत्वारि ज्ञानानि त्रीणि दर्शनानि एव सप्तोपयोगा स्यु.। पचमणाणतिमा दुण्णि—इति, पचमे केवलज्ञाने अन्तिमौ केवलज्ञानदर्शनोपयोगौ द्वौ भवत· । इति ज्ञानमार्गणा ॥ ३७॥

सामाइयजुम्मे तह सुहमे सग छप्पि तुरियणाणूणा ।
परिहारे देसजई छब्भणिय असंजमे णविति ॥ ३८ ॥

सामायिकयुग्मे तथा सूक्ष्मे सप्त पडपि तुरीयज्ञानोनाः ।
परिहारे देशयतौ षट् भणिता असयमे नवेति ॥

सामाइयजुम्मे तह सुहमे सग—सामायिकयुग्मे सामायिकच्छेदोपस्थापनासयमाद्विके तथा सुहमे—सूक्ष्मसाम्परायसयमे सप्तोपयोगा भवन्ति । ते के ? मतिश्रुतावधिमन.पर्ययज्ञानोपयोगाश्चत्वार· चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनोपयोगास्त्रय एव सप्त । छप्पि तुरियणाणूणा परिहारे—इति, परिहारविशुद्धिसयमे पडप्युपयोगास्तुरीयमनःपर्ययज्ञानोना मतिज्ञानादित्रय चक्षुर्दर्शनादित्रय चेति पट् सभवन्ति । देसजई—दगसयमे सयमासयमे, छब्भीणय—पडुपयोगा ये परिहारसयमोक्तास्त एवोपयोगा भवन्ति । असजमे णविति—असयमे नवोपयोगा । ते के ? कुमत्यादित्रय सुमत्यादित्रय एव षट् चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनोपयोगास्त्रय एव नव भवन्ति ॥ ३८ ॥

पणणाण दंसणचउ जहखादे चक्खुदंसणजुगेसु ।
गयकेवलदुग दंसणगदणाणुत्ता हि अवहिदुगे ॥ ३९ ॥

पंचज्ञानानि दर्शनचतुष्क यथाख्याते चक्षुर्दर्शनयुग्मेषु ।
गतकेवलद्विक दर्शनगतज्ञानोक्ता हि अवधिद्विके ॥

पणणाण दंसणचउ जहखादे—यथाख्यातसंयमे मतिश्रुतादिपंचज्ञा-नोपयोगा, चक्षुरादिदर्शनोपयोगाश्चत्वार एवमुपयोगा नव भवन्ति। इति संयममार्गणा। चक्खुदंसणजुगेसु—चक्षुरचक्षुदर्शनद्वये, गयकेवल-दुग—केवलज्ञानदर्शनद्वयरहिता अन्ये दशोपयोगा स्यु। दंसणेत्यादि, अवहिदुगे—अवधिदर्शने केवलदर्शने च दर्शनाश्रितज्ञानोक्ता अवधि-केवलज्ञानोक्ता। तत् कथं? येऽवधिज्ञाने कथितास्ते सप्त मतिश्रुता-वधिमन पर्ययज्ञानोपयोगाश्चत्वारश्चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनोपयोगास्त्रयोऽवधिद र्शने भवन्तीत्यर्थ। यौ केवलज्ञाने केवलज्ञानदर्शनोपयोगौ प्रोक्तौ तौ केवलदर्शने भवत। इति दर्शनमार्गणा॥ ३९॥

मणपज्जवकेवलदुगहीणुवओगा हवंति किण्हतिए।
णव दस तेजाजुयले भव्वे वि य दुदस सुक्काए॥ ४०॥

मन पर्ययकेवलद्विकहीनोपयोगा भवन्ति कृष्णत्रिके।
नव दश तेजोयुगले भव्येऽपि च द्वादश शुक्लायां॥

मण इत्यादि। किण्हतिए—कृष्णनीलकापोतलेश्यात्रिके मन पर्यय-केवलज्ञानकेवलदर्शनैस्त्रिभिर्हीना अन्ये नवोपयोगा भवेयु। दस तेजाजु यले—पीतपद्मलेश्ययोर्द्वयो केवलज्ञानदर्शनवर्जा अन्ये दशोपयोगा-सन्ति। भव्वे वि य दुदस सुक्काए—शुक्ललेश्यायां द्वादशोपयोगाः स्यु। इति लेश्यामार्गणा। भव्यजीवेऽपि च द्वादशोपयोगा सन्ति॥४०॥

पंच असुह अभव्वे खाइयतिदए य णव सग छेय।
मिस्सा मिस्स सासण मिच्छे छप्पंच पणय च॥ ४१॥

पंच अशुभा अभव्ये क्षायिकत्रिके च नव सप्त षट्‌ च।
मिश्रा मिश्र सासन मिथ्यात्वे षट् पंच पंचकं च॥

पंचेत्यादि। अभव्यजीवे कुमतिकुश्रुतविभंगाख्यं चक्षुरचक्षुर्दर्शनो पयोगा पंच अशुभा भवन्ति। इति भव्यमार्गणा। खाइयतिदए णव

सग छेय—क्षायिकत्रिके नव सप्त षडेव। अत्र यथासङ्ख्यालङ्कारः। क्षायिकसम्यक्त्वे कुज्ञानत्रयवर्जा अन्ये नवोपयोगा भवन्ति । वेदकसम्यक्त्वे कुज्ञानत्रयकेवलज्ञानदर्शनद्वयरहिता अपरे सप्तोपयोगा सन्ति। उपशमसम्यक्त्वे सुमत्यादित्रयचक्षुरादित्रय एव षडुपयोगा स्यु । मिस्सा मिस्से—मिश्रे सम्यक्त्वे मिश्राः षट् भवन्ति। ते के ? मतिश्रुतावधिज्ञानोपयोगास्त्रयो मिश्ररूपा । मिश्रा इति कोऽर्थः ? किंचित्किंचित्कुज्ञान किंचित्किंचित्सुज्ञान चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनोपयोगास्त्रय एव षडुपयोगा। सासण—इति, सासादनसम्यक्त्वे कुज्ञानत्रय चक्षुरचक्षुर्दर्शनद्वयं एव पचोपयोगा. स्यु । मिच्छे—मिथ्यात्वसम्यक्त्वे सासादनोक्तानामुपयोगाना पचक भवति । इति सम्यक्त्वमार्गणा ॥ ४१ ॥

दस सण्णि असण्णीए चदु पढमाहारए य बारसयं ।
मणचक्खुविभंगूणा णव अणाहारेय उवओगा ॥ ४२ ॥

दश संज्ञिनि असंज्ञिनि चत्वारः प्रथमे आहारके च द्वादशकं ।
मनश्चक्षुर्विभगोना नव अनाहारे च उपयोगा ॥

दस सण्णि इति । केवलज्ञानदर्शनद्वयरहिता अपरे दशोपयोगा संज्ञिजीवे भवन्ति। असण्णीए चदु पढमा—असंज्ञिजीवे प्रथमाश्चत्वार उपयोगा भवन्ति । ते के ? कुमतिद्वय चक्षुरचक्षुर्दर्शनद्वयमेव चत्वारः । इति संज्ञिमार्गणा । आहारए बारसय—आहारकजीवे उपयोगानां द्वादशक भवेत् । मणचक्खुविभगूणा णव अणाहारे उवओगा—अनाहरकजीवे मन:पर्ययज्ञानचक्षुर्दर्शनविभगज्ञानैरूना रहिता अन्ये नवोपयोगा भवन्ति ॥ ४२ ॥

इति चतुर्दशमार्गणासु द्वादशोपयोगा निरूपिता ।

अथ चतुर्दशजीवसमासेषु पंचदशयोगा कथ्यन्ते;—

णवसु चउक्के इक्के जोगा इगि दो हवंति बारसया ।
तब्भवगईसु एदे भवतरगईसु कम्मइओ ॥ ४३ ॥
सत्तसु पुण्णेसु हवे ओरालिय मिस्सयं अपुण्णेसु ।
इगिइगिजोग विहीणा जीवसमासेसु ते णेया ॥ ४४ ॥

नवसु चतुष्के एकस्मिन् योगा एको द्वौ भवन्ति द्वादश ।
तद्भवगतिषु एते भवान्तर्गतिषु कार्मणं ॥
सप्तसु पूर्णेषु भवेत् औदारिकं मिश्रकं अपूर्णेषु ।
एकैकयोग विहीना जीवसमासेषु ते ज्ञेया ॥

गाथाद्वयेन सम्बन्ध । जीवसमासेसु ते णेया—जीवसमासेषु ते योगा ज्ञेया ज्ञातव्या भवन्ति । कथमित्याह—णवसु चउक्के इक्के जोगा इगि दो हवंति बारसया—यथासंख्येन व्याख्येयं, नवसु जीवसमासस्थानेषु इगि—एको योगो ज्ञेय । चउक्के—चतुर्जीवसमास स्थानेषु, दो—द्वौ योगौ ज्ञातव्यौ। इक्के—एकस्मिन् जीवसमासस्थाने, बारसया—द्वादशयोगा भवन्ति । नवसु जीवसमासेषु एको योग इत्युक्तं तर्हि नवसमासा के, तत्र एको योगो क इति चेदुच्यते—एकेन्द्रियसूक्ष्मापर्याप्ते औदारिकमिश्रकाययोग एकः स्यात्। एकेन्द्रियसूक्ष्मपर्याप्ते औदारिककाययोग एको भवति । एकेन्द्रियबादरापर्याप्ते औदारिकमिश्र काययोगोऽस्ति । एकेन्द्रियबादरपर्याप्ते औदारिककाययोग एको वर्तते । द्वीन्द्रियापर्याप्तकाले औदारिकमिश्रकाययोग एक संभवति । त्रीन्द्रियापर्याप्तकाले औदारिकमिश्रकाययोग एक स्यात् । चतुरिन्द्रियापर्याप्तकाले औदारिकमिश्रकाययोग एक प्रवर्तते। पंचेन्द्रियासंज्ञिजीवापर्याप्ते औदारिकमिश्रकाययोग एक स्यात् । पंचेन्द्रियसंज्ञिजीवापर्याप्तकाले

औदारिकमिश्र[1]काययोग एको भवति । एव नवसु जीवसमासस्थानेषु योग एको भवति। एव चतुर्षु—जीवसमासेषु द्वौ योगौ भवत इति प्रोक्त तर्हि चत्वारो जीवसमासा· के तत्र द्वौ योगौ कौ इत्याशकायामाह—द्वीन्द्रिय-पर्याप्ते औदारिककाययोगानुभयवचनयोगौ भवतः। त्रीन्द्रियपर्याप्तकाले औदारिककाययोगानुभयवचनयोगौ स्तः। चतुरिन्द्रियपर्याप्ते औदारिक-काययोगानुभयवचनयोगौ वर्तेते । पचेन्द्रियासज्ञिपर्याप्ते औदारिककाय-योगानुभयवचनयोगौ सभवत· । इति चतुर्षु जीवसमासेषु द्वौ द्वौ योगौ प्ररूपितौ । एकस्मिन् जीवसमासे द्वादशयोगा भवन्तीति पूर्वगाथाया सूचितं तर्हि एको जीवसमास· कः तत्र द्वादशयोगाः के इत्याह—पंचे-न्द्रियसंज्ञिपर्याप्तजीवसमासे अष्टौ मनोवचनयोगा औदारिककाययोग-[2]वैक्रियिककाययोगाहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगाश्चत्वारः,एव द्वादश-योगा· पचेन्द्रियसज्ञिपर्याप्तकाले सभवन्तीत्यर्थ । इत्येकस्मिन् जीवस-मासे द्वादशयोगा निरूपिताः। तब्भवगईसु एदे—इति, तेषामेके-न्द्रियसूक्ष्मापर्याप्तादीनां जीवाना भवप्राप्तेषु, ऐदे—इति, एते एको द्वौ द्वादश योगा भवन्ति । भवतरगईसु कम्मइओ—कार्मणको योग· स भवान्तरगतिषु । प्रकृताद्भवादन्यो भवो भवान्तर तत्र गतयो गमनानि भवान्तरगतिषु भवान्तरगमनेषु कार्मणकाययोगो भवतीत्यर्थ । सत्तसु पुण्णेसु हवे ओरालिय—सप्तसु जीवसमासेषु पर्याप्तेषु औदारिककाय-योगो भवति । मिस्सय अपुण्णेसु—इति, अपर्याप्तेषु सप्तसु एकेन्द्रियसू-क्ष्मबादरद्वित्रिचतु पचेन्द्रियसज्ञ्यसज्ञिजीवेषु अपर्याप्तकालेषु सप्तस्थानेषु, मिस्सय—औदारिक[3]मिश्रकायो भवेत् । इगि इगि जोग—इति,द्वीन्द्रियत्री-

१ यदा मनुष्यतिर्यग्गतौ जीवा प्राप्नुवन्ति तदा औदारिकमिश्र सभवति । यदा नरकदेवगती प्राप्नुवन्ति तदा वैक्रियिकमिश्रकाय सभवति । २ देवनारका-पेक्षया वैक्रियिकयोगोऽपि । ३ अत्रापि पचेन्द्रियसज्ञिषु पूर्ववदव्यवस्था ।

न्द्रियचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियासंज्ञिपर्याप्तेषु चतुःस्थानेषु एकैकस्य योगस्य पुनरप्यन्यस्यैकस्य योगस्य संयोग क्रियते एवं द्वयं स्यात् । कोऽर्थः ! द्वीन्द्रियादिपर्याप्तेषु चतुःस्थानेषु औदारिककाययोगानुभयवचनयोगौ द्वौ भवत इत्यर्थः । विहीणा—पंचेन्द्रियपर्याप्तेषु द्वादशयोगा भवन्तीति कथितं तत्कथं योगास्तु पंचदश वर्तन्ते ! ते योगा, विहीणा—द्वाभ्या-मौदारिकमिश्रकायवैक्रियिकमिश्रकायाभ्यां हीना क्रियन्ते । मर्गतरम्मेषु कम्मइओ इति वचनात् कार्मणकायेन विना अन्ये द्वादशयोगा पंचे-न्द्रियसंज्ञिपर्याप्तकेषु भवन्तीत्यर्थः ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

इति जीवसमासेषु योगा उपन्यस्ताः ।

अथ चतुर्दशजीवसमासेषु यथासंभवमुपयोगा लिख्यन्ते;—

कुमइदुगा अचक्खु तिय दससु दुगे चदु हवंति चक्खुजुदा ।
सण्णिअपुण्णे पुण्णे सग दस जीवेसु उवओगा ॥ ४५ ॥

कुमतिद्विकौ अचक्षु त्रय दशसु द्विके चत्वारो भवन्ति ।
चक्षुर्युता संज्ञ्यपर्याप्ते पर्याप्ते सप्त दश जीवेषु उपयोगा ॥

कुमइदुगा अचक्खु तिय दससु—इति, दशसु जीवसमासेषु कुमति-कुश्रुतज्ञानोपयोगौ द्वौ अचक्षुर्दर्शनोपयोगश्चैक एते त्रय उपयोगा भवन्ति । ते दशजीवसमासाः के येष्वेते त्रय उपयोगा जायन्ते तदाह—एकेन्द्रियसू-क्ष्मापर्याप्त, एकेन्द्रियसूक्ष्मपर्याप्त, एकेन्द्रियबादरापर्याप्तः एकेन्द्रियबा-दरपर्याप्त द्वीन्द्रियापर्याप्त द्वीन्द्रियपर्याप्त, त्रीन्द्रियापर्याप्त, त्रीन्द्रियप र्याप्त, चतुरिन्द्रियापर्याप्त, पंचेन्द्रियासंज्ञिजीवापर्याप्त । एतेषु दशसु जीवसमासेषु कुमतिकुश्रुतज्ञानोपयोगौ द्वौ अचक्षुर्दर्शनोपयोगश्चैते त्रयो

---

१ पंचेन्द्रियासंज्ञिजीवपर्याप्तेषु इति पाठः पुस्तके ।

भवन्तीति स्पष्टार्थं । दुगे चदु हवंति चक्खु जुदा—इति, द्वयोर्जीवसमासयोः चतुरिन्द्रियपर्याप्तपचेन्द्रियासज्ञिजीवपर्याप्तयोश्चत्वार उपयोगा भवन्ति । ते के ? पूर्वोक्ता कुमतिकुश्रुताचक्षुर्दर्शनोपयोगास्त्रयः, चक्खु जुदा—इति, चक्षुर्दर्शनोपयोगसहिता एव चत्वार उपयोगाः स्युः । सण्णि अपुण्णे पुण्णे सग दस—अत्र यथासख्याऽकारः, पचेन्द्रियसंज्यपर्याप्ते सग—इति, सप्तोपयोगा भवन्ति । ते के ? कुमतिश्रुतसुमतिश्रुतावधिज्ञानोपयोगाः पच अचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनोपयोगौ द्वौ एव सप्त । पुण्णे दस—पचेन्द्रियसज्ञिपर्याप्ते उपयोगा दश भवन्ति। के ते दश ? केवलज्ञानदर्शनवर्ज्या अन्ये दशोपयोगाः स्युः। जीवेसु उवओगा—जीवसमासेषु द्वादशोपयोगा यथाप्राप्ति प्ररूपिताः ॥ ४५ ॥

इति जीवसमासेषूपयोगा न्यस्ताः ।

अथ चतुर्दशगुणस्थानेषु यथासभव योगा निरूप्यन्ते,—

मिच्छदुगे अयदे तह तेरस मिस्से पमत्तए जोगा ।
दस इगिदस सत्तसु णव सत्त सयोगे अयोगी य ॥ ४६ ॥

मिथ्यात्वद्विके अयते तथा त्रयोदश मिश्रे प्रमत्तके योगाः ।
दशैकादश सप्तसु नव सप्त सयोगे अयोगिनि च ॥

मिच्छेत्यादि । मिथ्यात्वप्रथमगुणस्थाने सासादनगुणस्थाने च तथा अयदे—चतुर्थगुणस्थाने, तेरस—इति, आहारकाहारकमिश्रयोगाभ्यां विना अन्ये त्रयोदश योगा भवन्ति। मिस्से पमत्तए जोगा दस इगिदस—अत्र यथासख्यत्वेन भाव्य, मिस्से—तृतीये मिश्रगुणस्थाने दश योगा भवन्ति । ते के ? अष्टौ मनोवचनयोगा औदारिककायवैक्रियिककाययोगौ द्वौ एवं दश । पमत्तए जोगा इगिदस—षष्ठे प्रमत्तगुणस्थाने योगा एकादश

भवन्ति । ते के ? अष्टौ मनोवचनयोगा औदारिककाययोग आहारककाययोगस्तन्मिश्रकाययोगश्चेति त्रय एव एकादश योगाः । सप्तसु प्रम— सप्तसु गुणस्थानेषु पंचमे देशविरते सप्तमेऽप्रमत्ते अष्टमेऽपूर्वकरणे नवमेऽनिवृत्तिकरणे दशमे सूक्ष्मसाम्पराये एकादशे उपशान्तकषाये द्वादशे क्षीणकषाये एवं एतेषु कथितेषु सप्तगुणस्थानेषु नव योगाः स्युः । ते के ? अष्टौ मनोवचनयोगा औदारिककाययोगश्चैक एवं नव । सत्त सयोगे—सयोगकेवलिनि सप्त योगा भवन्ति । ते के ? सत्यमनोयोगोऽनुभयमनोयोग सत्यवचनयोगोऽनुभयवचनयोग औदारिककाययोगस्तन्मिश्रकाययोग कार्मणकाययोग इति सप्त योगाः । अयोगिनि चतुर्दशगुणस्थाने शून्यं योगाभाव ॥ ४६ ॥

इति गुणस्थानेषु योगा निरूपिताः ।

अथ चतुर्दशगुणस्थानेषु द्वादशोपयोगा वर्ण्यन्ते,—

पढमदुगे पण पणयं मिस्सा मिस्से तदो दुगे छक्कं ।
सगुवओगा सत्तसु दो जोगि अजोगिगुणठाणे ॥ ४७ ॥

प्रथमद्विके पंच पंचकं मिश्रा मिश्रे ततो द्विके षट्कं ।
सप्तोपयोगाः सप्तसु द्वौ योग्ययोगिगुणस्थाने ॥

पढमदुगे—प्रथमद्विके मिथ्यात्वसासादनगुणस्थाने पणपणयं—पंच पंच उपयोगा भवन्ति । ते के ? कुमतिकुश्रुतविभङ्गज्ञानोपयोगास्त्रय चक्षुरचक्षुर्दर्शनोपयोगौ द्वौ एवं पंच । मिस्सा मिस्से तदो दुगे छक्कं— मिश्रगुणस्थाने तृतीये, तदो—इति ततो मिश्रगुणस्थानात्, दुगे—द्वये, अविरते चतुर्थगुणस्थाने देशविरतगुणस्थाने पंचमे छक्कं—षडुपयोगा भवन्ति । के ते ? मतिश्रुतावधिज्ञानोपयोगास्त्रय चक्षुरचक्षुरवधिदर्श-

नोपयोगास्त्रयः। अत्र एतावान् विशेषः—ये मिश्रगुणस्थानगा उपयोगास्ते मिश्रा भवन्ति। सत्तुवजोगा सत्तसु—सप्तसु गुणस्थानेषु प्रमत्ताप्रमत्तापूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्परायथाख्यातोपशान्तकषायक्षीणकषायाभिधानेषु उपयोगाः सप्त भवन्ति। ते के? सुमतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानोपयोगाश्चत्वारः चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनोपयोगास्त्रय एते सप्त स्युः। दो जोगिअजोगिगुणठाणे—सयोगिनि त्रयोदशगुणस्थाने अयोगिनि च द्वौ उपयोगौ स्तः। तौ कौ? केवलज्ञानदर्शनोपयोगौ द्वौ ॥ ४७ ॥

इति चतुर्दशगुणस्थानेषूपयोगा जाताः।

अथ चतुर्दशमार्गणासु सप्तपचाशत्प्रत्यया यथासभव कथ्यन्ते। अथ बालबोधनार्थं तेषा प्रत्ययाना पूर्वं नामानि निगद्यन्ते,—

मिच्छत्तमविरदी तह कसाय जोगा य पच्चयाभेया।
पण दुदस बंधहेदू पणवीसं पण्णरसा हुंति ॥ ४८ ॥

मिथ्यात्वमविरतयस्तथा कषाया योगाश्च प्रत्ययभेदाः।
पच द्वादश बन्धहेतवः पचविंशति पचदश भवन्ति ॥

मिच्छत्त—मिथ्यात्वपचक एकान्तविपरीतविनयसशयाज्ञानोद्भवमिति पचभेद। तथा चोक्त,—

मिच्छोदएण मिच्छत्तमसद्दहणं च तच्चअत्थाणं।
एयतं विवरीयं विणयं ससयिदमण्णाणं ॥ १ ॥

अविरदी (अविरतय:) द्वादश। कास्ताः? उक्त च—

छस्सिंदिएसु विरदी छज्जीवे तह य अविरदी चेव।
इंदियपाणासंजम दुदस होदित्ति णिद्दिट्ठं ॥ १ ॥

---

१ मिथ्यात्वोदयेन मिथ्यात्व अश्रद्धान च तत्वार्थानां।
एकान्त विपरीत विनय सशयितमज्ञानमिति ॥

२ षट्स्विन्द्रियेषु अविरति षट्जीवे तथा चाविरतिश्चैव।
इन्द्रियप्राणासयमा द्वादश भवन्तीति निर्दिष्ट ॥

तह कसाय—इति, तथा कषाया पंचविंशति । के ते ? अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पा क्रोधमानमायालोभा इति षोडश, हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुंनपुंसकभेदा एवं पिण्डीकृता पंचविंशति स्युः । योगा इति पंचदश । ते के ? सत्यासत्योभयानुभयमनोवचनविकल्पा अष्टौ योगा औदारिकौदारिकमिश्रवैक्रियिकवैक्रियिकमिश्राहारकाहारकमिश्रकार्मणकाययोगा सप्त, एवमेकत्रीकृता पंचदशयोगा । पच्चयमेया—प्रत्ययभेदा आस्रवप्रकारा । पण दुदस—अत्र यथासंख्यं, पण—मिथ्यात्वं पंचप्रकारं । दुदस—अविरतयो द्वादश । पणवीसं—कषाया पंचविंशति । पण्णरसा—योगा पंचदश । इंति—भवन्ति । कथंभूता एते ? बंधहेदू—कर्मबन्धहेतव कर्मबन्धकारणानीत्यर्थ ॥ ४८ ॥

आहारोरालियदुगित्थीपुंसोहीण णिरइ इगिवण्णं ।
आहारयवेउव्वियदुगूण तेवण्ण तिरियक्खे ॥ ४९ ॥

आहारौदारिकद्विकस्त्रीपुंहीना नरके एकपंचाशत् ।
आहारकवैक्रियिकद्विकोना त्रिपंचाशत् तिरश्चि ॥

आहारेत्यादि । णिरइ—नरकगतौ आहारकाहारकमिश्रद्वयं औदारिकौदारिकमिश्रद्वयं स्त्रीवेदपुंवेदद्वयं एते षड्भिर्हीना , इगिवण्णं—अन्ये उद्धरिता एकपंचाशत्प्रत्यया भवन्ति । आहारयेत्यादि—तिरियक्खे—तिर्यग्गतौ आहारकतन्मिश्रद्वयं वैक्रियिकतन्मिश्रद्वयं एतैश्चतुर्भिरूना अपरे तेवण्ण—त्रिपंचाशत् आस्रवा भवन्ति ॥ ४९ ॥

पणवण्णं वेउव्वियदुगूण मणुएसु इति बावण्णं ।
संढाहारोरालियदुगेहिं हीणा सुरगईए ॥ ५० ॥

१ कार्मणकार्मेण इति पाठः पुस्तके ।

पचपचाशत् वैक्रियिकद्विकोना मनुजेषु भवन्ति—
द्विपचाशत्। षढाहारौदारिकद्विकैर्हीना. सुरगत्याम् ॥

मणुएसु—मनुजेषु मनुष्यगतौ, वेउव्वियदुगूण—वैक्रियिकतन्मिश्रद्विकोना', पणवण्ण—पचपचाशत्प्रत्यया , हुति—सभवन्ति। बावण्ण सढाहारोरालियदुगेहिं हीणा सुरगईए—सुरगतौ नपुसकवेदश्चाहारकतन्मिश्रद्वय च औदारिकौदारिकमिश्रद्वय च तैः पचभिर्हीना', बावण्ण—द्वापचाशदास्त्रवा स्यु'। इति गतिमार्गणासु प्रत्यया निरूपिता ॥५०॥

मणरसणचउक्कित्थीपुरिसाहारयवेउव्वियजुगेहिं ।
एयक्खे मणवचिअडजोगेहिं हीण अडतीसं ॥ ५१ ॥

मनोरसनचतुष्कस्त्रीपुरुषाहारकवैक्रियिकयुगं ।
एकाक्षे मनोवागष्टयोगैर्हीना अष्टात्रिंशत् ॥

एयक्खे—एकेन्द्रियजीवेषु, मणरसेत्यादि—मनश्च रसनचतुष्कमिति रसनघ्राणचक्षु श्रोत्रचतुष्क च स्त्रीवेदश्च पुवेदश्च आहारकाहारकमिश्रद्वय च वैक्रियिकतन्मिश्रयुग्म चैतैरेकादशभिर्हीना पुन मणवचिअडजोगेहिं —सत्यासत्योभयानुभयमनोवचनयोगैरष्टभिर्हीना अन्येभ्य एकोनविंशतिप्रत्ययेभ्य उद्धरिता अन्ये, अटतीस—अष्टात्रिंशत्प्रत्यया भवन्ति ॥५१॥

एदे य अंतभासारसणजुया घाणचक्खुसंजुत्ता ।
चालं इगिवेयालं कमेण वियलेसु विण्णेया ॥ ५२ ॥

एते च अन्तभाषारसनायुक्ता घ्राणचक्षु सयुक्ता ।
चत्वारिंशत् एकद्विचत्वारिंशत् क्रमेण विकलेषु विज्ञेयाः ॥

कमेण—अनुक्रमेण, वियलेसु—विकलत्रयेषु द्वित्रिचतुरिन्द्रियेषु, विण्णेया—प्रत्यया ज्ञातव्या स्यु। कथ? एदे य—एकेन्द्रियोक्ता अष्टात्रिंशत्प्रत्यया अन्तभाषारसनायुक्ता अनुभयवचनजिह्वासहिता ।

चार्क—चत्वारिंशत्प्रत्यया द्वीन्द्रियजीवे भवन्तीत्यर्थ । पुनरेते पूर्वोक्त अष्टात्रिंशत् अनुभयवचनरसनघ्राणसहिता , इगियाले—एकचत्वारिंशदा-स्त्रवास्त्रीन्द्रिये स्युः । तथा पूर्वोक्त अष्टात्रिंशत् अनुभयवचनजिह्वेन्द्रिय-घ्राणचक्षु संयुक्ता , बेयाले—द्विचत्वारिंशत् चतुरिन्द्रिये ज्ञातव्या इत्यर्थ ॥ ५२ ॥

पचेंदिए तसे तह सव्वे एयक्खउत्त अडतीसा ।
थावरपणए गणिया गणणाहेहिं पच्चया णियमा ॥ ५३ ॥

पंचेन्द्रिये त्रसे तथा सर्वे एकाक्षोक्ता अष्टात्रिंशत् ।
स्थावरपंचके गणिता गणनाथै प्रत्यया नियमात् ॥

पंचेत्यादि । पंचन्द्रिये जीवे नानाजीवापेक्षया सर्वे प्रत्यया भवन्ति । इन्द्रियमार्गणासु प्रत्यया । तसे तह सव्वे—तथा त्रसे त्रसकाये सर्वे सप्तपंचाशन्नानाजीवापेक्षया आस्रवा भवन्ति । थावरपणए—स्थाव रपंचके पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिकायेषु पंचसु, एयक्खउत्त अडतीसा—एकेन्द्रिये ये उक्ता अष्टात्रिंशत्प्रत्यया एव ते भवन्तीत्यर्थ । गणिया गण-णाहेहिं पच्चया णियमा—नियमाभिप्रायात् गणनाथैर्गणधरैः प्रत्यया गणिता यथासंभवं संख्यां नीता । इति कायमार्गणास्त्रवास्त्रवा ॥५३॥

आहारदुगं हित्ता अण्णसु जोएसु णिय णियं चित्ता ।
जोगं ॥ सेदाला णायव्वा अण्णजोगूणा ॥ ५४ ॥

आहारकद्विकं हत्वा अन्यषु योगेषु निजं निजं मुक्त्वा ।
योगं तु त्रिचत्वारिंशत् ज्ञातव्या अन्ययोगोमाः ॥

आहारदुगं हित्ता—आहारद्विकं हत्वा वर्जयित्वा । अण्णसु जोएसु णिय णियं चित्ता जोगं—अन्येषु त्रयोदशयोगेषु मध्ये निजं निजं स्वकीयं

स्वकीयं योग धृत्वा पुनः, अण्णजोगूणा—अन्यैर्द्वादशभिर्योगैरूनास्ते, तेदाला णायव्वा—इति, ते प्रत्ययाः स्वकीयस्वकीययोगयुक्ताः त्रिचत्वारिंशदास्रवा ज्ञातव्याः । अथ स्पष्टतयोच्यते—सत्यमनोयोगे मिथ्यात्वपंच (क) अविरतयो द्वादश कषायाः पचविंशतिः स्वकीयमनोयोगश्चैक एव त्रिचत्वारिंशत् आस्रवा भवन्ति । एवं असत्यमनोयोगे ४३, उभयमनोयोगे ४३, अनुभयमनोयोगे ४३, सत्यवचनयोगे ४३, असत्यवचनयोगे ४३, उभयवचनयोगे ४३, अनुभयवचनयोगे ४३, औदारिककाययेग ४३, तन्मिश्रे ४३, वैक्रियिककाययोगे ४३, तन्मिश्रकाययोगे ४३, कार्मणकाययोगे ४३, ॥ ९४ ॥

संजालासंढित्थी हवंति तह णोकसायणियजोया ।
बारस आहारजुगे आहारयउहयपरिहीणा ॥ ५५ ॥

सज्वलना अषण्ढस्त्रियो भवन्ति तथा नोकषायनिजयोगाः ।
द्वादश आहारकयुगे आहारकोभयपरिहीनाः ॥

आहारजुगे—आहारककाययोगे तन्मिश्रकाययोगे च, बारस—द्वादश प्रत्यया भवन्ति । ते के ? सजाला इत्यादि । सज्वलनक्रोधमानमायालोभाश्चत्वार, तह—तथा, असंढित्थी—षढस्त्रीवेदद्वयवर्जिता अन्ये हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सापुंवेदा इति नोकषाया सप्त । णियजोया—स्वकीयस्वकीययोगश्चैकैक । आहारके आहारककाययोग, आहारकमिश्रे आहारकमिश्रकाययोग इत्यर्थ. । इति योगमार्गणाया योगा (आस्रवाः) निरूपिता । 'आहारयउहयपरिहीणा' इति पदस्य व्याख्यानं उत्तरगाथायां ॥ ५५ ॥

तथा हि,—

इत्थिणउंसयवेदे सव्वे पुरिसे य कोहपमुहेसु ।
णियरहियइयरबारसकसायहीणा हु पणदाला ॥ ५ ॥

चालं—चत्वारिंशत्प्रत्यया त्रीन्द्रियजीवे भवन्तीत्यर्थ । पुनरेते पूर्वोक्त अष्टात्रिंशत् अनुभयवचनरसनघ्राणसहिता, इगियालं—एकचत्वारिंशदास्रवाश्चीन्द्रिये स्युः । तथा पूर्वोक्ता अष्टात्रिंशत् अनुभयवचनजिह्वेन्द्रियघ्राणचक्षुः संयुक्ता, बेयालं—द्विचत्वारिंशत् चतुरिन्द्रिये आस्रवा इत्यर्थ ॥ ५२ ॥

पचेंदिए तसे तह सव्वे एयक्खउच्च अडतीसा ।
थावरपणए गणिया गणणाहेहिं पचया णियमा ॥ ५३ ॥

पंचेन्द्रिये त्रसे तथा सर्वे एकाक्षोत्थ अष्टात्रिंशत् ।
स्थावरपंचके गणिता गणनाथै प्रत्यया नियमात् ॥

पचेत्यादि । पंचेन्द्रिये जीवे नानाजीवापेक्षया सर्वे प्रत्यया भवन्ति । इन्द्रियमार्गणासु प्रत्यया । तसे तह सव्वे—तथा त्रसे त्रसकाये सर्वे सप्तपंचाशन्नानाजीवापेक्षया आस्रवा भवन्ति । थावरपणए—स्थावरपंचके पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिकायेषु पंचसु, एयक्खउच्च अडतीसा—एकेन्द्रिये ये उक्ता अष्टात्रिंशत्प्रत्यया एव ते भवन्तीत्यर्थ । गणिया गणणाहेहिं पचया णियमा—नियमान्निश्चयात् गणनाथैर्गणधरै प्रत्यया गणिता यथासंभवं संख्यां नीता । इति कायमार्गणास्वास्रवा ॥५३॥

आहारदुगं हित्ता अण्णसु जोएसु णिय णिय थित्ता ।
जोगं ते तदाला णायव्वा अण्णजोगूणा ॥ ५४ ॥

आहारकद्विकं हत्वा अन्येषु योगेषु निजं निजं धृत्वा ।
योगं ते त्रिचत्वारिंशत् ज्ञातव्या अन्ययोगोना ॥

आहारदुगं हित्ता—आहारद्विकं हत्वा वर्जयित्वा । अण्णसु जोएसु णिय णिय थित्ता जोगं—अन्येषु त्रयोदशयोगेषु मध्ये निजं निजं एककीयं

कुमइदुगे—कुमतिज्ञाने कुश्रुतज्ञाने च, पणवण्ण आहारदुगूण—आहारकाहारकमिश्रद्विकोना अन्ये, पणवण्ण–पंचपचाशत्प्रत्यया भवन्ति। कम्मामिस्सूणा बावण्णा वेभगे—विभगे कवधिज्ञाने आहारकाहारकमिश्र-कार्मणवैक्रियिकमिश्रौदारिकमिश्रै. पचभिर्हीना अन्ये', बावण्णा–द्वापचा-शदास्त्रवा स्यु' । 'मिच्छअणपचचउहीणा' पदव्याख्याग्रगाथाया ॥५७॥

णाणतिए अडदालाऽसंढित्थीणोकसाय मणपज्जे ।
वीसं चउसंजाला णवादिजोगा सगंतिल्ले ॥ ५८ ॥

ज्ञानत्रिके अष्टचत्वारिंशत् अपण्ढस्त्रीनोकपाया मन पर्यये ।
विंशतिः चतुःसज्वलनाः नवादियोगा सप्तान्तिमे ॥

मिच्छअणपचचउहीणा णाणतिए अडदाला–णाणतिए—ज्ञानत्रिके सुमतिश्रुतावधिज्ञानेषु मिथ्यात्वपचकानन्तानुबन्धिचतुष्कहीना अन्ये अष्टा-चत्वारिंशत्प्रत्यया' स्युः। असढीत्यादि—मणपज्जे—मन.पर्ययज्ञाने, वीस—विंशतिः प्रत्यया भवन्ति । के ते ? असढित्थीणोकसाय—पढस्त्री-वेदद्वयवर्ज्या अन्ये पुवेदहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सानामानः सप्त नोक-षयाः, चउसजाला—चत्वार' सज्वलनक्रोधमानमायालोभा',णवादिजोगा—अष्टौ मनोवचनयोगा औदारिक एक इति नव ते सर्वे पिण्डीकृता विंशतिरास्त्रवा' । सगतिल्ले—अतिल्ले—अन्तज्ञाने केवलज्ञाने, सग—सप्त प्रत्यया भवन्ति । के ते ? सत्यमनोयोगानुभयमनोयोगसत्यवचनयो-गानुभयवचनयोगाश्चत्वार औदारिकौदारिकमिश्रकार्मणकाययोगास्त्रय एवं सप्त । इति ज्ञानमार्गणायामास्त्रवा' ॥ ५८ ॥

वेउव्विदुगूरालियमिस्सयकम्मूण एयदसजोया ।
संजालणोकसाया चउवीसा पढमजमजुम्मे ॥ ५९ ॥

वैगूर्विकद्विकौदारिकमिश्रकार्मणोना एकादशयोगाः ।
सज्वलननोकषायाः चतुर्विंशति प्रथमयमयुग्मे ॥

स्त्रीनपुंसकवेदे सर्वे पुरुषे च क्रोधप्रभतिषु ।
निजरहितवरद्वादशकषायहीना हि पंचचत्वारिंशत् ॥

आहारदुगपरिहीणा इत्थिणउंसयवेदे—स्त्रीवेदे नपुंसकवेदे च आहारकद्वयपरिहीना । तथा स्त्रीवेदे निरूप्यमाणे स्त्रीवेदो भवति, नपुंसकवेदे निरूप्यमाणे नपुंसकवेदो भवेत्, पुंवेदे निरूप्यमाणे पुंवेदोऽस्ति । एवं एकस्मिन् वेदे निरूप्यमाणे स्वकीयवेदः स्यात् । अन्यवेदद्वयं न भवति । कोऽर्थः ? स्त्रीवेदे नपुंसकवेदे च मिथ्यात्व ५ अविरति १२ कषाय २३ योग १३ एवं त्रिपंचाशत् आस्रवा स्युरित्यर्थः । सव्व पुरिसे य—इति, पुंवेदे स्त्रीवदनपुंसकवेदद्वयरहिता अन्ये पंचपंचाशत्प्रत्यया भवन्ति । कोहपमुहेसु—क्रोधमानमायालोभेषु चतुषु, हु—स्फुटं, पणदाला—पंचचत्वारिंशत्प्रत्यया भवन्ति । कथमिति चेत्? णियरहियइयरबारसकसायहीणा—स्वकीयस्वकीयकषायचतुष्करहिता इतरद्वादशकषायहीना । क्रोधचतुष्के यदा स्वकीय क्रोधचतुष्कं गृह्यते तदा इतरे द्वादश कषाया न भवन्ति । यदा मानचतुष्के स्वकीयमानचतुष्कं गृह्यते तदा अपरे द्वादशकषाया न स्युः । एवं मायालोभयोर्योजनीयं । अनु च स्पष्टार्थं पंचचत्वारिंशत्प्रत्यया गण्यन्ते, के नामानः ? तथा हि—अनन्तानुबन्ध्यादिक्रोधचतुष्के मिथ्यात्व ५ अविरति १२ अनन्तानुबन्ध्यादिक्रोधचतुष्कं ४ योग १५ हास्यादि ९ एवं ४५ । अयं क्रम मानचतुष्के मायाचतुष्के लोभचतुष्के सभावनीय । इति कषायमार्गणायां कषायाः ॥ ५६ ॥

कुमइदुगे पणवण्णा आहारदुगूणा कम्ममिस्सूणा ।
बावण्णा चभंग मिच्छंअणपंचमउहीणा ॥ ५७ ॥

कुमतिद्विके पंचपंचाशत् आहारकद्विकोना कर्ममिश्रोना ।
द्वापंचाशत् विभंगे मिथ्यात्वानपंचकचतुर्हीना ॥

कुमइदुगे—कुमतिज्ञाने कुश्रुतज्ञाने च, पणवण्ण आहारदुगूण—आहारकाहारकामिश्रद्विकोना अन्ये, पणवण्णं—पचपञ्चाशत्प्रत्यया भवन्ति। कम्मामिस्सूणा बावण्णा वेभगे—विभगे क्वधिज्ञाने आहारकाहारकमिश्र-कार्मणवैक्रियिकमिश्रौदारिकमिश्रै· पचभिर्हीना अन्ये·, बावण्णा—द्वापचाशदास्त्रवा स्युः । 'मिच्छअणपचचउहीणा' पदव्याख्याग्रगाथाया ॥५७॥

णाणतिए अडदालाऽसंढित्थीणोकसाय मणपज्जे ।
वीसं चउसंजाला णवादिजोगा सगंतिल्ले ॥ ५८ ॥

ज्ञानत्रिके अष्टचत्वारिंशत् अपण्ढस्त्रीनोकषाया मन·पर्यये ।
विंशति· चतुःसज्वलनाः नवादियोगा ससान्तिमे ॥

मिच्छअणपचचउहीणा णाणतिए अडदाला—णाणतिए—ज्ञानत्रिके सुमतिश्रुतावधिज्ञानेषु मिथ्यात्वपचकानन्तानुबाधिचतुष्कहीना अन्ये अष्टाचत्वारिंशत्प्रत्ययाः स्यु । असढीत्यादि—मणपज्जे—मन पर्ययज्ञाने, वीस—विंशतिः प्रत्यया भवन्ति । के ते ? असढित्थीणोकसाय—षढस्त्रीवेदद्वयवर्ज्या अन्ये पुवेदहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सानामान. सप्त नोकषयाः, चउसजाला—चत्वार· सज्वलनक्रोधमानमायालोभाः,णवादिजोगा—अष्टौ मनोवचनयोगा औदारिक एक इति नव ते सर्वे पिण्डीकृता विंशतिरास्त्रवा । सगतिल्ले—अतिल्ले—अन्तज्ञाने केवलज्ञाने, सग—सप्त प्रत्यया भवन्ति । के ते ? सत्यमनोयोगानुभयमनोयोगसत्यवचनयोगानुभयवचनयोगाश्चत्वार औदारिकौदारिकमिश्रकार्मणकाययोगास्त्रय एवं सप्त । इति ज्ञानमार्गणायामास्त्रवा ॥ ५८ ॥

वेउव्विदुगूरालियमिस्सयकम्मूण एयदसजोया ।
संजालणोकसाया चउवीसा पढमजमजुम्मे ॥ ५९ ॥

वैगूर्विकद्विकौदारिकमिश्रकार्मणोना एकादशयोगाः ।
सज्वलननोकपायाः चतुर्विंशतिः प्रथमयमयुग्मे ॥

पढमबमसुम्मे—प्रथमयमयुगमे सामायिकसंयमे छेदोपस्थापनासंयमे च, घउवीसा—चतुर्विंशतिप्रत्यया भवन्ति। के ते? बेउम्मि—वैक्रियिकतन्मिश्रद्वयौदारिकमिश्रकार्मणैश्च चतुर्भिर्हीना अन्ये, एयदसजोया—अष्टौ मनोवचनयोगा औदारिककाययोगाहारकाहारकमिश्रकाययोगाश्चेति त्रय समुदिता एकादशयोगा। संजाल—संज्वलनक्रोधमानमाया लोभाश्चत्वार। णोकसाया—हास्यादिनवनोकषाया एवं चतुर्विंशति ॥ ५९ ॥

परिहारे आहारयदुगरहिया ते हवंति बावीसं।
संजलणलोहमादिमणवजोगा दसय हुंति सुहुमे य ॥ ६० ॥

परिहारे आहारकद्विकरहितास्ते भवन्ति द्वाविंशति।
संज्वलनलोभ आदिमनवयोगा दश भवन्ति सूक्ष्मे च ॥

परिहारेत्यादि। परिहारविशुद्धिसंयमे, आहारयदुगरहिया—आहारकाहारकमिश्रद्वयरहितास्ते पूर्वोक्त सामायिकच्छेदोपस्थापनयो कथिता द्वाविंशति प्रत्यया भवन्ति। अथ व्यक्ति—अष्टमनोवचनयोगौदारिकसंज्वलनचतुष्कहास्यादिनवेति द्वाविंशति प्रत्यया परिहारसंयमे भवन्तीत्यर्थ। संजलणेत्यादि। सुहुमे य—च पुन सूक्ष्मसाम्परायसंयमे, दसय हुंति—दश प्रत्यया स्यु। ते के? एक संज्वलनलोभ आदिमनवयोगा एवं दश ॥ ६० ॥

ओरालमिस्सकम्मइयसंजुया लोहहीण जहखाद।
णवजोय णोकसाया अट्ठतकसाय दसभमं ॥ ६१ ॥

औदारिकमिश्रकार्मणसंयुता लोभहीना यथाख्याते।
नवयोगा नोकषाया अष्टा तकषाया दिशयम ॥

जहखादे—यथाख्यातसंयमे सूक्ष्मसाम्परायोक्ता ये दश त, ओरालमिस्सादि—औदारिकमिश्रकायकार्मणकायाभ्यां द्वाभ्यां संयुक्ता द्वाभ्या

भवन्ति, एते द्वादश लोहहीना—सज्वलनलोभरहिताः क्रियन्ते तदा एकादश भवन्ति । के ते ? अष्टौ मनोवचनयोगा औदारिकौदारिकामिश्रकार्मणकायास्त्रय एते एकादश यथाख्यातसयमिना भवन्तीत्यर्थः । 'णवजोय णोकसाया अट्ठतकसाय देसजमे' इयमर्धगाथा तस्याः परिपूर्णसम्बन्ध उत्तरगाथाया ज्ञेय· ॥ ६१ ॥

तसऽसंजमहीणऽजमा सव्वे सगतीस संजमविहीणे ।
आहारजुगूणा पणवण्णं सव्वे य चक्खुजुगे ॥ ६२ ॥

त्रसासयमहीना अयमाः सर्वे सप्तत्रिंशत् संयमविहीने ।
आहारकयुगोना पचपचाशत् सर्वे च चक्षुर्युगे ॥

णवजोय णोकसाया अट्ठतकसाय देसजमे तसऽसजमहीणऽजमा सव्वे सगतीस—देसजमे—सयमासयमे सप्तत्रिंशत्प्रत्यया भवन्ति । ते के ? णवजोयेत्यादि । मनोवचनयोरष्टौ औदरिककायस्यैक एव नव, तथा णोकसाया—हास्यादयो नवनोकषाया., अट्ठतकसाय—अष्टौ अन्त्या. प्रत्याख्यानसंज्वलनक्रोधमानमायालोभाः कषायाः, तसऽसजमहीणऽजमा सव्वे—त्रसवधरहिता अन्येऽसयमा अविरतयः सर्वे एकादश एकत्रीकृता· सप्तत्रिशत् । सजमविहीणे आहारजुगूणा पणवण्णं—असयमे आहारजुगूणा—आहारकयुगोना आहारकाहारकामिश्रद्वयोनाः, पणवण्ण—पचपञ्चाशत् प्रत्यया भवन्ति । इति सयममार्गणाया प्रत्ययाः । सव्वे य चक्खुजुगे—च पुनः चक्षुर्युगे चक्षुरचक्षुर्दर्शनद्वये नानाजीवापेक्षया सर्वे सप्तपचाशत्प्रत्यया भवन्ति ॥ ६२ ॥

अवहीए अडदालं णाणतिउत्ता हि केवलालोए ।
सग गयदोआहारय पणवण्णं हुंति किण्हतिए ॥ ६३ ॥

अवधौ अष्टचत्वारिंशत् ज्ञानत्रिकोक्ता हि केवलालोके ।
सप्त गतद्विकाहारका पचपंचाशत् भवन्ति कृष्णत्रिके ॥

अयहीए—अवधिदर्शने, णाणतिदया हि—निश्चितं ज्ञानत्रिके च उक्तास एव, अडदालं—इति, अष्टचत्वारिंशत्प्रत्ययाः भवन्ति । ते के ? इति चेदुच्यते अनन्तानुबन्धिचतुष्कं मिथ्यात्वपंचकं वर्जयित्वा अपरे अष्टचत्वारिंशदास्रवाः । केवलाळोए सग—केवलदर्शने सप्त । के ते ? सत्यानुभयमनोवचनयोगौदारिकौदारिकमिश्रकार्मणकाययोगा एवं सप्त प्रत्यया भवन्ति । इति दर्शनमार्गणायामास्रवाः । गयदोआहारय किण्हतिए—कृष्णनीलकापोतलेश्यात्रिके आहारकतन्मिश्रद्वयरहिता अन्येऽवशिष्टाः, पणवण्णं—पंचपंचाशत्प्रत्ययाः, इति—भवन्ति ॥ ६३ ॥

तेआदितिए भव्वे सव्वे णाहारजुम्मऽभव्वे ।
पणवण्णं ते मिच्छाअणूण छादाल उवसमए ॥ ६४ ॥

तेजआदित्रिके भव्ये सर्वे अनाहारकयुगमकाः अभव्ये ।
पंचपंचाशत् ते मिथ्यात्वानोना षट्चत्वारिंशत् उपशमे ॥

तेआदितिए—पीतपद्मशुक्ललेश्यात्रिके तथा भव्यजीवे, सव्वे—सर्वे सप्तपंचाशत्प्रत्यया नानाजीवापेक्षया भवन्ति । णाहारजुम्मयऽभव्वे पणवण्णं—अभव्यजीवे आहारकतन्मिश्रवर्ज्या अन्ये पंचपंचाशदास्रवाः स्युः । इति लेश्याभव्यमार्गणयोः प्रत्ययाः । ते मिच्छअणूण छादाल उवसमए—उपशमकसम्यक्त्वे ते—इति, अभव्योक्ता पंचपंचाशत्प्रत्यया मिथ्यात्वपंचकानन्तानुबन्धिचतुष्कोना अपरे षट्चत्वारिंशत्प्रत्यया भवन्ति । ते के चेदुच्यते—अविरतय १२ कषाया २१ आहारकद्वयं विना योगा १३ एवं षट्चत्वारिंशत् ॥ ६४ ॥

आहारयजुयजुया खाइयदुगे य ए वि अडदाला ।
मिस्से तदाला ते तिमिस्साहारयदुगूणा ॥ ६५ ॥

---

१ जुम्मये मूले पाठ ।

आहारकयुगयुक्ताः क्षायिकद्विके च तेऽपि अष्टचत्वारिंशत् ।
मिश्रे त्रिचत्वारिंशत् ते त्रिमिश्राहारकद्विकोना. ॥

खाइयदुगे य—च पुन. क्षायिकयुग्मे क्षायिकवेदकसम्यक्त्वे च आहारयजुवजुत्ता—आहारकद्वयसहिता·, ए वि—इति, तेऽपि उपशमसम्यक्त्वोक्ताः षट्चत्वारिंशत्, अडदाला—अष्टचत्वारिंशत् भवन्ति। ते के ? अविरतयः १२ कषाया २१ योगा. १५ एव ४८। मिस्से—मिश्रसम्यक्त्वे, तेदाला—त्रिचत्वारिंशत्प्रत्यया भवन्ति । ते—पूर्वोक्ताः क्षायिकवेदकोक्ता अष्टचत्वारिंशद्वर्तन्ते तेभ्यः पच निष्काश्यते। ते के ? तिमिस्साहारयदुगूणा–त्रिमिश्रा औदारिकामिश्रवैक्रियिकामिश्रकार्मणकाहारकाहारकमिश्रमेव पचहीनास्त्रिचत्वारिंशत्। के ते इति चेदुच्यते–अविरतय. १२ कषाया २१ अष्टौ मनोवचनयोगा औदारिकवैक्रियिककाययोगौ द्वौ एव ४३ मिश्रसम्यक्त्वे भवन्तीत्यर्थ. ॥ ६५ ॥

विदिए मिच्छपणूणा पण्णं मिच्छे य हुंति पणवण्णं ।
आहारयजुयविजुया पच्चेया सयल सण्णीए ॥ ६६ ॥

द्वितीये मिथ्यात्वपचकोना पचाशत् मिथ्यात्वे च भवन्ति ।
पचपचाशत् आहरकयुगावियुक्ता प्रत्ययाः सकलाः सज्ञिनि ॥

विदिए–सासादनसम्यक्त्वे, मिच्छपणूणा–मिथ्यात्वपचकोना आहारकयुग्मवर्जिता अन्ये, पण्ण–पचाशत्प्रत्यया स्यु । मिच्छे य हुति पणवण्ण आहारयजुयविजुया—पुन. मिथ्यात्वसम्यक्त्वे आहारकयुगावियुक्ता अन्ये, पणवण्ण—पचपंचाशत्प्रत्यया भवन्ति । इति सम्यक्त्वमार्गणाया प्रत्यया । पच्चया सयल सण्णीए—सज्ञिजीवे प्रत्ययाः सकला सर्वे सप्तपचाशन्नानाजीवापेक्षया भवन्ति ॥ ६६ ॥

कम्मयओरालियदुगअसच्चमोसूणजोगमणहीणा ।
पणदालाऽसण्णीए सयलाहारे अकम्मइया ॥ ६७ ॥

कार्मणौदारिकोद्विकासत्यमृषोनयोगमनोहीना ।
पंचचत्वारिंशदसंज्ञिनि सकला आहारके अकार्मणका ॥

असण्णीए—असंज्ञिजीवे, पणदाला—पंचचत्वारिंशत्प्रत्यया भवन्ति। कथंभूता ? कम्मयेत्यादि—कार्मणकाय औदारिकद्विकं च असत्य मृषा चेत्यनुभयवचनयोग एतैश्चतुर्भिरूना हीना अन्ये एकादशयोगाश्च मनश्च तैर्हीना । अथ बालावबोधनार्थं स्पष्टतयोच्यते—असंज्ञिजीवे मिथ्यात्वपंचकं मनोवर्जिता एकादशाविरतय कषाया २५ कार्मण औदारिकद्वययोगद्वयं, असत्यमृषा सत्यं च मृषा सत्यमृषे न विद्येते सत्यासत्ये यत्र योग सोऽसत्यमृषो योगोऽनुभयवचनयोग इत्यर्थ एवं ४५ प्रत्यया भवन्ति । इति संज्ञिमार्गणायां प्रत्यया । सयलाहारे अकम्मइया—आहारे आहारकजीवे कार्मणकाययोगवर्जिता अन्ये सकला सर्वे षट्पंचाशत्प्रत्यया भवन्ति ॥ ६७ ॥

तेदालाणाहारे कम्मेयरजोयहीणया हुंति ।
तित्थयप्पहुणा गणिया इति मग्गणपच्चया भणिया ॥ ६८ ॥

त्रिचत्वारिंशदनाहारके कर्मेतरयोगहीनका भवन्ति ।
तीर्थप्रभुणा गणिता इति मार्गणाप्रत्यया भणिताः ॥

तेदालाणाहारे—अनाहारके जीवे कम्मेयरजोयहीणया—कार्मण काययोगादितरे ये चतुर्दशयोगास्तैर्हीना अन्ये, तेदाला—त्रिचत्वारिंश-त्प्रत्यया भवन्ति । ते के ? मिथ्यात्वं ५ अविरतय १२ कषाया २५ कार्मणकाययोग १ एवं त्रिचत्वारिंशत्प्रत्यया हुंति—भवन्ति । तित्थयप्पहुणा—अमुना प्रकारेण पूर्वं तीर्थकरप्रभुणा तीर्थकरदेवेन मार्गणासु प्रत्यया इति गणिता इति, पश्चाद्गणधरदेवादिभि शब्दरूपेण गाथादि क्रमेन मार्गणासु प्रत्यया भणिता इति शेष ॥ ६८ ॥

इति मार्गणासु प्रत्यया निर्दिष्टाः ।

अथ चतुर्दशजीवसमासेषु यथासंभवं सप्तपंचाशत्प्रत्यया कथ्यन्ते;—

इगिदुतिचउरक्खेसु य सण्णीसु भासिया जे ते ।
अडतीसादी सयला, पणदाला कम्ममिस्सूणा ॥ ६९ ॥
सत्तसु पुण्णेसु हवे ओरालिय मिस्सयं अपुण्णेसु ।
इगिइगिजोगविहीणा जीवसमासेसु ते णेया ॥ ७० ॥

एकद्वित्रिचतुरक्षेषु च संज्ञिषु भाषिता ये ते ।
अष्टात्रिंशदादयः सकलाः पंचचत्वारिंशत् कर्ममिश्रोनाः ॥
सप्तसु पूर्णेषु भवेत् औदारिक मिश्रक अपूर्णेषु ।
एकैकयोगविहीना जीवसमासेषु ते ज्ञेयाः ॥

गाथाद्वयेन सम्बन्ध । जीवसमासेसु ते णेया—ते प्रत्ययाश्चतुर्दश-जीवसमासेषु ज्ञेया ज्ञातव्या भवन्ति इत्याह—इगिदुतिचउरक्खेत्यादि—एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियेषु च पुन संज्ञ्यसंज्ञिजीवेषु ये अष्टात्रिंशदादयः सकला. प्रत्यया पूर्वं भाषिता । ते प्रत्ययाः पंचचत्वारिंशत् कथं भवन्ति ? एकेन्द्रियादिराश्यपेक्षया अष्टात्रिंशत्प्रत्ययाः, द्वीन्द्रियस्य राश्यपेक्षया रसनेन्द्रियानुभयभाषयोरधिकत्वाच्चत्वारिंशत्प्रत्यया ,त्रीन्द्रियस्य राश्यपेक्षया घ्राणेन्द्रियाधिकत्वादेकचत्वारिंशत्प्रत्ययाः, चतुरिन्द्रियस्य चक्षुरधिकत्वाद्द्वाचत्वारिंशत्प्रत्ययाः, असंज्ञिपंचेन्द्रियस्य स्त्रीवेदपुंवेदश्रोत्राणामधिकत्वाद्राश्यपेक्षया पंचचत्वारिंशत्प्रत्यया । कथंभूताः पंचचत्वारिंशत् ? कम्ममिस्सूणा—कार्मणकायौदारिकमिश्रवैक्रियिकमिश्रोनाः । सत्तसु पुण्णेसु हवे ओरालिय—सप्तसु पर्याप्तेसु जीवसमासेषु यथासंभवं पूर्वोक्ताः प्रत्यया , ओरालिय—औदारिककाययोगश्च भवेत् । मिस्सयं अपुण्णेसु—इति, अपर्याप्तेषु सप्तसु जीवसमासेषु, मिस्सयं—औदारिकमिश्रः वैक्रियिकमिश्रो वा यथासंभवं भवति । इगिइगिजोगविहीणा—सप्तसु पर्या-

शेषु सप्तसु अपर्याप्तेषु एकैकयोगविहीना प्रत्यया भवन्ति । कोऽर्थः सप्तसु पर्याप्तेषु यदा औदारिककाययोगो भवति तत्र औदारिकमिश्रयोगो न भवति यत्र अपर्याप्तेषु सप्तसु औदारिकमिश्रकायो भवति तदा औदारिककाययोगो न भवतीत्यर्थः । अथाल्पबुद्धीनां सम्यक्परिज्ञानाय चतुर्दशजीवसमासेषु प्रत्येकं यथासंभवं एतावन्तः प्रत्यया संभवन्तीत्याह—एकेन्द्रियसूक्ष्मापर्याप्ते मिथ्यात्वपंचकं षड्जीवनिकायानां विराधना स्पर्शनेन्द्रियस्यैकस्यानिरोधः एवं सप्ताविरतयः ७ स्त्रीवेदपुंवेदद्वयवर्ज्या अन्ये कषायास्त्रयोविंशतिः २३ औदारिकमिश्रकार्मणकाययोगौ द्वौ २ एवं सप्तत्रिंशत् ३७ प्रत्यया भवन्ति । एकेन्द्रियसूक्ष्मपर्याप्ते मिथ्यात्वं ५ अविरतयः ७ स्त्रीवेदपुंवेदवर्ज्याः कषायास्त्रयोविंशतिः औदारिककाययोग एक एव एवं षट्त्रिंशत्प्रत्ययाः स्युः । एकेन्द्रियबादरापर्याप्ते मि० ५ अवि० ५ कषा० २३ औदारिकमिश्रकार्मणयोगौ द्वौ एवं सप्तत्रिंशत्प्रत्यया भवेयुः ३७ । एकेन्द्रियबादरपर्याप्ते पंचमिथ्यात्वं अविरतयः सप्त पूर्वोक्ताः २३ कषायाः औदारिककाययोग एक एवं षट्त्रिंशत्प्रत्ययाः स्युः । द्वीन्द्रियापर्याप्ते जीवसमासे मिथ्यात्वं ५ षट्कायानां विराधना स्पर्शरसनयोरनिरोध इत्य विरतयोऽष्टौ पूर्ववत्कषायास्त्रयोविंशतिः औदारिकमिश्रकार्मणकाययोगौ द्वौ एवं अष्टात्रिंशत्प्रत्यया भवन्ति । द्वीन्द्रियपर्याप्ते जीवसमासे मि० ५ अवि० ८ कषायाः २३ औदारिककाययोगानुभयभाषायोगौ द्वौ एवं अष्टात्रिंशत्प्रत्ययाः संभवन्ति । त्रीन्द्रियापर्याप्ते जीवसमासे मि० ५ षट्कायविराधना स्पर्शनरसनघ्राणानामनिरोध एवमविरतयो नव पूर्ववत्कषायाः २३ औदारिकमिश्रकार्मणकाययोगौ द्वौ एवमेकत्र एकोनच-

१ पंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्ते वैक्रियिककायः अथवा औदारिककायः यथासंभवम् ।

स्वारिंशत्प्रत्ययाः सन्ति । त्रीन्द्रियपर्याप्ते जीवसमासेऽपि मि० ५ षट्कायविराधना षट्स्पर्शनरसनघ्राणाना विषयानुभवन तिस्र एवमविरतयो नव कषाया २३ औदारिककायानुभयवचनयोगौ द्वौ एवमेकोनचत्वारिंशत्प्रत्यया ३९ स्यु । चतुरिन्द्रियापर्याप्ते जीवसमासे मि० ५ षड्जीवनिकायविराधना स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुषामनिरोध एवमविरतयो १० पूर्ववत्कषाया औदारिकमिश्रकार्मणकाययोगौ द्वौ एव चत्वारिंशत्प्रत्ययाः सन्ति । चतुरिन्द्रियपर्याप्ते मि० पञ्च ५ पूर्वोक्ता दशाविरतय १० कषाया २३ औदारिककायानुभयभाषायोगौ द्वौ २ एव चत्वारिंशदास्रवा॰ प्रवर्तन्ते । पंचेन्द्रियासञ्ज्ञिजीवापर्याप्ते मि० ५ मनोवर्ज्या अन्या एकादशाविरतय ११ कषाया सर्वे २५ औदारिकमिश्रकार्मणकाययोगौ द्वौ २ एव त्रिचत्वारिंशदास्रवाः ४३ स्यु । असञ्ज्ञिपचेन्द्रियपर्याप्ते मि० ५ मनइन्द्रिय विना अन्या एकादशाविरतय ११ कषाया॰ २५ औदारिकायानुभयवचनयोगौ द्वौ २ एव त्रिचत्वारिंशत्प्रत्ययाः ४३ स्यु॰ । पंचेन्द्रियसञ्ज्ञिजीवापर्याप्ते मनइन्द्रिय विना एकादशाविरतयः ११ कषाया २५ औदारिकमिश्रवैक्रियिकमिश्रकार्मणकाययोगात्त्रय एकीकृता ४४ प्रत्यया भवन्ति । पचेन्द्रियसञ्ज्ञिपर्याप्ते जीवसमासे मि० ५ अविरतय॰ १२ कषाया २५ मिश्रकार्मणकाययोगद्वय विना अन्ये त्रयोदशयोगा १३ एव पचपञ्चाशत्प्रत्यया भवन्ति ॥ ६९–७० ॥

इति चतुर्दशजीवसमासेषु प्रत्येक यथासभव प्रत्यया कथिता व्यक्तिरूपेण बालबोधनार्थम् ।

अथ चतुर्दशगुणस्थानेषु प्रत्यया॰ कथ्यन्ते,—

मिच्छे चउपच्चइओ बंधो सासणदुगे तिपच्चइओ ।
ते विरइजुआ अविरइदेसगुणे उवरिमदुगं च ॥ ७१ ॥

दोण्णि तदो पंचसु तिसु आसम्वो जोगपच्चई इक्को ।
सामण्णपच्चया इदि अट्ठण्हं होंति कम्माणं ॥ ७२ ॥

मिथ्यात्वे चतुःप्रत्ययो बन्धः सासनद्विके त्रिप्रत्ययः ।
ते विरतियुता अविरतदेशगुणे उपरिमद्विके च ॥
द्वौ ततः पंचसु त्रिषु आसम्वो योगप्रत्यय एकः ।
सामान्यप्रत्यया इति अष्टानां भवन्ति कर्मणां ॥

गाथाद्वयेन सम्बन्धः । मिच्छे चउपच्चइओ बन्धो—चतुःप्रत्ययको बन्धः, कोऽर्थः ? मिथ्यात्वगुणस्थाने मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगानां चतुर्णां प्रत्ययानां बन्धो भवतीत्यर्थः । सासणदुगे—द्वितीयसासादनगुणस्थाने तृतीयमिश्रगुणस्थाने च, तिपच्चइओ—त्रिप्रत्ययको बन्धः । कोऽर्थः ? सासादनमिश्रगुणस्थानयोरविरतिकषाययोगानां बन्धः स्यादित्यर्थः । तेऽविरइत्यादि । अविरइदेसगुणे—चतुर्थेऽविरतिगुणस्थाने पंचमे देशविरतिगुणस्थाने च, ते—इति, तेप्रत्यया भवन्ति । कति भवन्तीत्याशंकायामाह—उवरिमदुगे—उपरिमद्वयं कषाययोगयुग्मं । कथंभूतं ? अविरतियुक्तं एवं त्रय प्रत्यया भवन्ति, कोऽर्थः ? अविरतिदेशविरतिगुणस्थानयोर्द्वयोरविरतिकषाययोगानां त्रयाणां प्रत्ययानां बन्धो भवतीत्यर्थः । दोण्णि तदो पंचसु—इति ततो देशविरतिगुणस्थानात्, पंचसु—इति, पंचगुणस्थानेषु प्रमत्ताप्रमत्तापूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्परायाभिधानेषु दोण्णि—द्वौ प्रत्ययौ आसम्वो कोऽभावः ? प्रमत्तादिपंचसु गुणस्थानेषु कषाययोगयोर्द्वयोर्बन्ध इति भावः । ततः, तिसु—इति, त्रिषु गुणस्थानेषु योगप्रत्ययस्यैकस्य बन्ध इत्यर्थः । इदि—इति अमुना प्रकारेण, अट्ठण्हं कम्माणं—ज्ञानावरणादीनामष्टानां कर्मणां, सामण्णपच्चया—सामान्येन मिथ्यात्वादिप्रत्यया बन्धकारणानि भवन्ति ॥ ७१–७२ ॥

पूर्वं सामान्येन प्रत्ययबन्धः कथितः, अधुना विशेषेण प्रत्ययबन्धाः कथ्यन्ते;—

पढमगुणे पणवण्णं विदिए पण्णं च कम्मणअणूणा।
मिस्सोरालिविउव्वियमिस्सूण तिदालया मिस्से॥ ७३॥

प्रथमगुणे पंचपचाशत् द्वितीये पचाशत् च कार्मणानोना·।
मिश्रौदारिकवैक्रियिकमिश्रोनाः त्रिचत्वारिंशन्मिश्रे॥

पढमगुणे—प्रथममिथ्यात्वगुणस्थाने आहारकतन्मिश्रद्वयवर्ज्या अन्ये पणवण्ण—पचपञ्चाशत्प्रत्यया भवन्ति। विदिए पण्ण च—पुनः सासादनगुणस्थाने मिथ्यात्वपचकाहारकद्वयरहिता अन्ये पचाशत्प्रत्यया भवन्ति। कम्मणेत्यादि, मिस्से—तृतीयमिश्रगुणस्थाने ये सासादने कथिताः पचाशत्प्रत्यया। ते कथभूताः ? कर्मणेत्यादि, कार्मणकाययोगानन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभचतुष्कोना औदारिकमिश्रकायोनो वैक्रियिकमिश्रकायोन एतैः सप्तभिर्हीना अन्ये, तिदाला—त्रिचत्वारिंशत्प्रत्यया भवन्ति॥७३॥

हुंति छयालीसं खलु अयदे कम्मइयमिस्सदुगजुत्ता।
विदियकसायतसाजमदुमिस्सवेउव्वियकम्मूणा॥ ७४॥

भवन्ति षट्चत्वारिंशत् खलु अयते कार्मणमिश्रद्विकयुक्ताः।
द्वितीयकषायत्रसायमद्विमिश्रवैक्रियिककार्मणोनाः॥

सगतीस देसे ? खलु-निश्चित, अयदे—चतुर्थेऽविरतगुणस्थाने मिश्रगुणस्थानोक्तास्त्रिचत्वारिंशत्प्रत्यया, कम्मइयमिस्सदुगजुत्ता—इति, कार्मणौदारिकमिश्रवैक्रियिकमिश्रत्रययुक्ताः सन्त., छयालीस—षट्चत्वारिंशत्प्रत्यया भवन्ति। सगतीस देसे—इति, उत्तरगाथाया सम्बन्ध·। देसे—इति, पंचमे देशविरतगुणस्थाने सप्तत्रिंशत्प्रत्यया भवन्ति। के ते ? विदियक-

सास्वसाजमदुमिस्सवेउव्वियकम्मूणा—द्वितीयकषायोऽप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभचतुष्कं, तसाजम—इति, त्रसवध, दुमिस्स—औदारिकमिश्रवैक्रियिकमिश्रद्वयं, वेउव्विय–इति, वैक्रियिककाययोग., कम्म—इति, कार्मणकाययोग एतैर्नवभिरूना । कोऽर्थ ? यऽविरतगुणस्थानोक्ताः षट्चत्वारिंशत्प्रत्ययास्ते एतैर्नवभिर्हीना सन्त सप्तत्रिंशदास्रवा भवन्ति—ते सप्तत्रिंशत्प्रत्यया पंचमे गुणस्थाने भवन्तीति स्पष्टार्थं ॥ ७४ ॥

सगतीसं देसे तह चउवीसं पच्चया पमत्ते य ।
आहारदुगे बारस अविरदिचउपच्चयाणूण ॥ ७५ ॥

सप्तत्रिंशद्देशे तथा चतुर्विंशतिप्रत्यया प्रमत्ते च ।
आहारकद्विको एकादशाविरतिचतु प्रत्ययन्यूनाः ॥

सगतीसं देसे इति पदं पूर्वगाथायां व्याख्यातं । तह चउवीसं पच्चया पमत्ते य—च पुन तथा, पमत्ते—इति, षष्ठ प्रमत्तगुणस्थाने चतुर्विंशति प्रत्यया भवन्ति । कथं ? देशविरतगुणस्थानोक्तसप्तत्रिंशत्प्रत्ययमध्ये आहारदुगे—आहारकाहारकमिश्रद्वयं यदा क्षिप्यते तदा एकोनचत्वारिंशत्प्रत्यया भवन्ति । ते एकोनचत्वारिंशत्प्रत्यया ,एयारसअविरदिचउपच्चयाणूणं—इति एकादशाविरतय चत्वार प्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभा एतै पंचदशभिर्न्यूनाश्चतुर्विंशतिप्रत्ययाः स्यु—ते षष्ठगुणस्थाने संभवन्तीत्यर्थ । ते चतुर्विंशति किन्नामानश्चेदुच्यते—संज्वलनचतुष्कं हास्यादिनवनोकषाया अष्टौ मनोवचनयोगा औदारिकाहारकाहारकमिश्रयोगाश्च एवं चतुर्विंशति ॥ ७५ ॥

आहारदुगूणा दुसु बावीसं हासछक्क संदित्थी–।
पुंकोहाइविहीणा कमेण अवरं दसं जाण ॥ ७६ ॥

आहारकद्विकोना द्विषु द्वाविंशतिः हास्यषट्केन षंढस्त्री—।
पुंक्रोधादिविहीनाः क्रमेण नवमं दशम जानीहि ॥

आहारदुगूणा दुसु बावीसं—दुसु—इति, अप्रमत्तापूर्वकरणयोर्द्वयोर्गुणस्थानयो. प्रमत्तोक्ताश्चतुर्विंशतिप्रत्यया ये ते आहारदुगूण—आहारकाहारकमिश्रद्वयोना', बावीस—द्वाविंशतिप्रत्यया स्युः। ते के चेदुच्यंते संज्वलन ४ नोकपाया ९ मनोवचनयोगाः ८ औदारिकाययोग. १ एवं २२ द्वाविंशति । हे शिष्य ! नवमं गुणस्थान जानीहि। हासेत्यादि हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्साषट्केन हीन । कोऽर्थ. ? नवमेऽनिवृत्तिकरणगुणस्थाने पूर्वोक्ता द्वाविंशतिप्रत्यया हास्यादिषट्कहीनाः सन्तः षोडश आस्रवा भवन्ति। ते किंनामान ? वेदत्रय ३ सज्वलनचतुष्क ४ मनोवचनयोगा अष्टौ औदारिककाययोगश्चैक एव षोडश आस्रवा अनिवृत्तिकरणस्थाने भवन्तीत्यर्थ । हे विनेय ! क्रमेण अनुक्रमेण, दस जाण—दशमगुणस्थान विद्धि। हे स्वामिन् ! दशमं गुणस्थान कीदक्ष वेद्मि तत्र कति प्रत्यया सभवन्तीति शिष्यप्रश्नाद्गुरुराह—दस सुहुमे इत्युत्तरगाथापदेन सम्बन्ध । ते दश के ? अनिवृत्तिकरणोक्ता षोडश, सढित्थीपुकोहाइविहीणा—इति, षढस्त्रीपुवेदत्रयसज्वलनक्रोधमानमायात्रिकहीना सन्त' दश। अथ च व्यक्तिः—सूक्ष्मसाम्परायदशमे अष्टौ मनोवचनयोगा औदारिककाययोगसज्वलनलोभौ द्वाविति दश ॥७६॥

दस सुहुमे वि य दुसु णव सत्त सजोगिम्मि पच्चया हुंति।
पच्चयहीणमणूणं अजोगिठाणं सया वंदे ॥ ७७ ॥

दश सूक्ष्मेऽपि च द्वयोः नव सप्त सयोगे प्रत्यया भवन्ति ।
प्रत्ययहीनमन्यून अयोगिस्थान सदा वन्दे ॥

दस सुहुमे इति पदस्य व्याख्यान पूर्वगाथाया कृत, अवि य—अपि च, दुसु—द्वयोः एकादशे उपशान्तकषाये द्वादशे क्षीणकषायगुण-

स्थाने च, णव—नव प्रत्यया संभवन्ति। सच्चो मनोवचनयोगा औदारिककाययोग एक एवं ९। सत्त सजोगिम्मि पच्चया इति—सयोगकेवलिनि सप्त प्रत्यया., इति—भवन्ति। ते के ? सत्यानुभयमनोवचनयोगा औदारिकतन्मिश्रकार्मणकाययोगा एवं सप्त। पच्चयहीणमणूणं अजोगिठाणं सया वंदे—इति, नमस्कुर्वे सदा, किं तत् ? कर्मतापन्नं अयोगिकेवलिगुणस्थानं। किं विशेषणाश्रितं ? पच्चयहीणं—सप्तपंचाशत्प्रत्ययैर्हीनं रहितं। पुनः किंविशिष्टं ? अणूणं—अन्यूनं परिपूर्णं ॥७७॥

इति चतुर्दशगुणस्थानेषु प्रत्ययाः प्रोक्ताः।

पवयणपमाणलक्खणछंदालंकाररहियहियएण।
जिणइंदेण पउत्तं इयमागममत्तिजुत्तेण ॥ ७८ ॥

प्रवचनप्रमाणलक्षणछन्दोऽलङ्काररहितहृदयेन।
जिनचन्द्रेण प्रोक्तं इदं आगमभक्तियुक्तेन ॥

इयं—सिद्धान्तसारशास्त्रं, पउत्तं—प्रोक्तं। केन कर्त्रा ? जिणइंदेण जिनचन्द्रनाम्ना सिद्धान्तग्रन्थवेदिना। कथंभूतेन जिनचन्द्रेण ? पवयणेत्यादि—प्रवचनप्रमाणलक्षणछन्दोऽलङ्काररहितहृदयेन। पुनरपि कथंभूतेन ? आगमभत्तिजुत्तेण—जिनसूत्रस्य भक्तिः सेवा तया युक्तेन ॥७८॥

सिद्धंतसारं वरसुत्तगेहा, सोहंतु साहू मयमोहचत्ता।
पूरंतु हीणं जिणणाहभत्ता, विरायचित्ता सिवमग्गजुत्ता ॥७९॥

सिद्धान्तसारं वरसूत्रगेहा, शोधयन्तु साधवो मदमोहत्यक्ताः।
पूरयन्तु हीनं जिननाथभक्ताः विरागचित्ताः शिवमार्गयुक्ताः ॥

कविः कथयति, साहू—इति भो साधवः ! इमं सिद्धान्तसारं ग्रन्थं, सोहंतु—शुद्धीकुर्वन्तु अपशब्दरहितं कुर्वन्तु। पुनरपि भो साधवः ! पूरंतु

१ प्रारंभे हि जिनेन्द्राचार्य इति ग्रंथस्य ...ञ्जीतीऽस्माभिरस्मत्पुस्तकेऽपि ला... ...ही ।

हीण—अस्मिन् ग्रन्थे मया यत्किंचिद्धीनं प्रतिपादित भवति तद्भवन्त:, पूरंतु—पूरयन्तु पूर्ण कृत्वा प्रतिपादयन्तु। कथभूता: साधव· ? वरसुत्त-गेहा—वराणि च तानि सूत्राणि जिनवचनानि तेपा गेहा मन्दिरप्राया । पुनरपि कथभूता: ? मयमोहचत्ता—मदमोहैस्त्यक्ता· । पुनरपि कथ-भूता: ? जिणणाहभत्ता—जिननाथभक्ता । पुनरपि कथभूता: ? विराय-चित्ता—विगतो रागो यस्मात् तत्, विराग चित्त मानस येपा ते विराग-चित्ता: । अनु च किंविशेषणान्विता: ? सिवमग्गजुत्ता—इति, शिवमार्गो, मोक्षमार्ग. सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रलक्षण· तेन युक्ता: शिवमार्गयुक्ता.॥७९॥

इति सिद्धान्तसारभाष्यम् ।*

---

*अस्मादग्रे पाठोऽयं—स्वस्तिश्री शके १६९३ खरनाम संवत्सरे आश्विनमासे शुक्लपक्षे विदियायां (द्वितीयाया) तिथौ गुरुवासरे श्रीसदलगी श्री—अनन्त-तीर्थंकरचैत्यालये श्रीसुमतिचन्द्रस्वामिना तच्छिष्यसावतापडित श्रीरत्नत्रयज्ञापनार्थं लिखित ।

स्थाने च, णव—नव प्रत्यया संभवन्ति। आद्यौ मनोवचनयोगा औदारिककाययोग एक एवं ९। सत्त सजोगिम्मि पच्चया हुंति—सयोगकेवलिनि सप्त प्रत्यया, हुंति—भवन्ति। ते के? सत्यानुभयमनोवचनयोगा औदारिकतन्मिश्रकार्मणकाययोगा एवं सप्त। पच्चयहीणमणूणं अजोगिठाणं सया वंदे—इति, नमस्कुर्वे सदा, किं तत्? कर्मतापन्नं अयोगिकेवलिगुणस्थानं। किं विशिष्टं? पच्चयहीणं—सप्तपंचाशत्प्रत्ययैर्हीनं रहितं। पुनः किंविशिष्टं? अणूणं—अन्यूनं परिपूर्णं ॥७७॥

इति चतुर्दशगुणस्थानेषु प्रत्ययाः प्रोक्ताः।

पवयणपमाणलक्खणछंदालंकाररहियहियएण।
जिणइंदेण पउत्तं इणमागममत्तिजुत्तेण ॥ ७८ ॥

प्रवचनप्रमाणलक्षणच्छन्दोऽलङ्काररहितहृदयेन।
जिनचन्द्रेण प्रोक्तं इदं आगमभक्तियुक्तेन ॥

इणं—सिद्धान्तसारशास्त्रं, पउत्तं—प्रोक्तं। केन कर्त्रा? जिणइंदेण जिनचन्द्रनाम्ना सिद्धान्तग्रन्थवेदिना। कथंभूतेन जिनचन्द्रेण? पवयणेत्यादि—प्रवचनप्रमाणलक्षणच्छन्दोऽलङ्काररहितहृदयेन। पुनरपि कथंभूतेन? आगमभत्तिजुत्तेण—जिनसूत्रस्य भक्ति सेवा तया युक्तेन ॥७८॥

सिद्धंतसारं वरसुत्तगेहा, सोहंतु साहू मयमोहचत्ता।
पूरंतु हीणं जिणणाहभत्ता, विरायचित्ता सिवमग्गजुत्ता ॥७९॥

सिद्धान्तसारं वरसूत्रगेहा, शोधयन्तु साधवो मदमोहत्यक्ताः।
पूरयन्तु हीनं जिननाथभक्ता, विरागचित्ताः शिवमार्गयुक्ताः ॥

कवि कथयति, साहू—इति भो साधवः! इमं सिद्धान्तसारं ग्रन्थं, सोहंतु—शुद्धीकुर्वन्तु अपशब्दरहितं कुर्वन्तु। पुनरपि भो साधवः! पूरंतु

---

१ प्रारंभे हि जिनेन्द्रनाम इति विस्मृत्य लिखितोऽस्माभिरन्यन्मूलपुस्तके विलोक्य।—सं।

श्रीयोगीन्द्रचन्द्राचार्यकृतः

योगसारः ।



णिम्मलझाण परिट्ठिया कम्मकलंक डहेवि ।
अप्पा लद्धउ जेण परु ते परमप्प णवेवि ॥ १ ॥

निर्मलध्याने परिस्थाय, कर्मकलंक दग्ध्वा ।
आत्मा लब्धो येन पर त परमात्मान नत्वा ॥

घाइचउक्कह किउविलउ अणंतचउक्कपदिट्ठु ।
तहिं जिणइंदहं पयणविवि अक्खमि कव्वु सुइट्ठु ॥ २ ॥

घातिचतुष्कस्य कृतविलयोऽनन्तचतुष्टयप्रतिष्ठित· ।
त जिनेन्द्र प्रणम्य करोमि काव्य सुष्ठु ॥

संसारह भयभीयाहं मोक्खह लालसियाहं ।
अप्पासंबोहणकयहं दोहा एक्कमणाहं ॥ ३ ॥

ससारस्य भयभीताना मोक्षस्य लालसिताना ।
आत्मसम्बोधनार्थं दोहकान् एकमनसा ॥

कालु अणाइ अणाइ जीउ भवसायरु जि अणंतु ।
मिच्छादंसणमोहियउ ण वि सुह दुक्ख जि पत्तु ॥ ४ ॥

कालोऽनादि· अनादिर्जीवो भवसागरोऽपि अनन्तः ।
मिथ्यादर्शनमोहित. नापि सुखं दु·खमेव प्राप्त· ॥

जइ वीहउ चउगइगमणु तउ परभाव चएवि ।
अप्पा झायहि णिम्मलउ जिम सिवसुक्ख लहेवि ॥ ५ ॥

१ अन्त्यदोहकेन योगचन्द्रेति नामाभाति ।
परमात्मप्रकाशे तु योगीन्द्रेति नामास्ति ।

समाप्तोऽयं सिद्धान्तसारः ।

देहादयो ये परे कथिता॰ ते आत्मा न भवन्ति।
इति ज्ञात्वा जीव! त्व आत्मना आत्मान मन्यस्व॥

अप्पा अप्पउ जइ मुणहि तउ णिव्वाणु लहेहि।
पर अप्पा जउ मुणिहि तुहुं तहु संसार भमेहि॥ १२॥

आत्मना आत्मान यदि मन्यसे तत॰ निर्वाण लभसे।
पर[1] आत्मान यदि मनुषे त्व तर्हि ससार भ्रमसि॥

इच्छारहिउ तव करहि अप्पा अप्प मुणेहि।
तउ लहु[2] पावइ परमगई पुण संसार ण एहि॥ १३॥

इच्छारहितस्तपः करोषि आत्मना आत्मान मनुषे।
ततो लघु प्रप्नोसि परमगतिं पुनः ससारे नायासि॥

परिणामइ बंधु जि कहिउ मोक्ख जि तह जि वीयाण।
इउ जाणेविण जीव तुहुं तह भावहि परियाणि॥ १४॥

परिणामैर्बन्धोऽपि कथित॰ मोक्षोपि तैरेव विजानीहि।
इति ज्ञात्वा जीव! त्व तान् भावान् परिजानीहि॥

अह पुण अप्पा ण वि मुणहिं पुण्ण वि करइ असेसु।
तउ वि णु पावइ सिद्धसुहु पुणु संसार भमेसु॥ १५॥

अथ पुनरात्मान न मनुषे पुण्यमपि करोषि अशेषम्।
तथापि न प्राप्नोषि सिद्धसुख पुन. ससारे भ्रमसि॥

अप्पादंसण इक्क परु अण्णु ण किं पि वियाणि।
मोक्खहु कारण जोईया णिच्छइ एहउ जाणि॥ १६॥

आत्मदर्शन एक पर अन्यत् न किंचिदपि विजानीहि।
मोक्षस्य कारण योगिन्! निश्चयेनैतत् जानीहि॥

---

१ परद्रव्य। २ लहु ससार मुएहि—लघु ससार मुचसि पाठान्तरं।

यदि बिभ्यसि चतुर्गतिगमनात् तत परभावं त्यज ।
आत्मानं ध्याय निर्मलं येन शिवसुखं लभसे ॥

तिपयारो अप्पा मुणहि परु अंतरु बहिरप्पु ।
पर झायहि अंतरसहिउ बाहिर चयहि णिभंतु ॥ ६ ॥

त्रिप्रकारं आत्मानं मन्यस्व परमन्तो बहिरात्मानम् ।
परं ध्याय अन्तः सहितं बाह्यं त्यज निर्भ्रान्तम् ॥

मिच्छादंसणमोहियउ परु अप्पा ण मुणेइ ।
सो बहिरप्पा जिणभणिउ पुण संसारु भमेइ ॥ ७ ॥

मिथ्यादर्शनमोहितः परमात्मानं न मनुते ।
स बहिरात्मा जिनभणितः पुनः संसारे भ्रमति ॥

जो परियाणइ अप्प परु जो परभाव चएइ ।
सो पंडिउ अप्पा मुणहि सो संसारु मुएइ ॥ ८ ॥

यः परिजानाति आत्मानं परं यः परभावं त्यजति ।
स पंडित आत्मानं मनुते स संसारं मुञ्चति ॥

णिम्मलु णिक्कलु सुद्ध जिणु विण्हु बुद्धु सिव संतु ।
सो परमप्पा जिणभणिउ एहउ जाणि णिभंतु ॥ ९ ॥

निर्मलो निष्कलः शुद्धः जिनः कृष्णः बुद्धः शिवः शान्तः ।
स परमात्मा जिनभणितः यं जानीहि निर्भ्रान्तम् ॥

देहादिउ जे पर कहिया ते अप्पाण मुणेइ ।
सो बहिरप्पा जिणभणिउ पुण संसार भमइ ॥ १० ॥

देहादयो ये परे कथिताः तान् आत्मानं मनुते ।
स बहिरात्मा जिनभणितः पुनः संसारे भ्रमति ॥

देहादिक जे पर कहिया ते अप्पाण ण होइ ।
इउ जाणेविणु जीव तुहु अप्पा अप्प मुणेइ ॥ ११ ॥

देहादयो ये परे कथिताः ते आत्मा न भवन्ति ।
इति ज्ञात्वा जीव ! त्वं आत्मना आत्मानं मन्यस्व ॥

अप्पा अप्पउ जइ मुणहि तउ णिव्वाणु लहेहि ।
पर अप्पा जउ मुणिहि तुहुं तहु संसार भमेहि ॥ १२ ॥

आत्मना आत्मानं यदि मन्यसे ततः निर्वाणं लभसे ।
पैर आत्मानं यदि मनुषे त्वं तर्हि संसारं भ्रमसि ॥

इच्छारहिउ तव करहि अप्पा अप्प मुणेहि ।
तउ लहु पावइ परमगई पुण संसार ण एहि ॥ १३ ॥

इच्छारहितस्तपः करोषि आत्मना आत्मानं मनुषे ।
ततो लघु प्रप्नोसि परमगतिं पुनः संसारे नायासि ॥

परिणामइ बंधु जि कहिउ मोक्ख जि तह जि वीयाण ।
इउ जाणेविण जीव तुहुं तह भावहि परियाणि ॥ १४ ॥

परिणामैर्बन्धोऽपि कथितः मोक्षोपि तैरेव विजानीहि ।
इति ज्ञात्वा जीव ! त्वं तान् भावान् परिजानीहि ॥

अह पुण अप्पा ण वि मुणहिं पुण्ण वि करइ असेसु ।
तउ वि ण पावइ सिद्धसुहु पुणु संसार भमेसु ॥ १५ ॥

अथ पुनरात्मानं न मनुषे पुण्यमपि करोषि अशेषम् ।
तथापि न प्राप्नोषि सिद्धसुखं पुनः संसारे भ्रमसि ॥

अप्पादंसण इक्क परु अण्णु ण किं पि वियाणि ।
मोक्खह कारण जोईया णिच्छह एहउ जाणि ॥ १६ ॥

आत्मदर्शनं एकं परं अन्यत् न किंचिदपि विजानीहि ।
मोक्षस्य कारणं योगिन् ! निश्चयेनैतत् जानीहि ॥

---

१ परद्रव्य । २ लहु ससार मुएहि—लघु ससार मुचसि पाठान्तरं ।

मग्गणगुणठाणइ कहिया ववहारेण वि दिट्ठि ।
णिच्छइणइ अप्पा मुणहु जिम पावहु परमेट्ठि ॥ १७ ॥
मार्गणागुणस्थानानि कथितानि व्यवहारनयेन अपि-दृष्टि ।
निश्चयनयेन आत्मानं मन्यस्व येन प्राप्नोषि परमेष्ठिनं ॥

गिहिवावार परिट्ठिया हेयाहेउ मुणंति ।
अणुदिण झायहि देउ जिणु लहु णिव्वाण लहंति ॥ १८ ॥
गृहव्यापारे परिस्थिता हेयमहेयं मन्यन्ते ।
अनुदिनं ध्यायन्ति देवं जिनं लघु निर्वाणं लभन्ते ॥

जिण सुमिरहु जिण चिंतवहु जिण झायहु सुमणेण ।
सो झाइंतह परमपउ लब्भइ इक्कखणेण ॥ १९ ॥
जिनं स्मर जिनं चिन्तय जिनं ध्यायस्व सुमनसा ।
तं ध्यायमान परमपदं लभते एकक्षणेन ॥

सुद्धप्पा अरु जिणवरहं भेउ म किमपि वियाणि ।
मोक्खह कारण जोइया णिच्छइं एउ वियाणि ॥ २० ॥
शुद्धात्मनि च जिनवरे भेदं मा किमपि विजानीहि ।
मोक्षस्य कारणे योगिन् ! निश्चयेन एतत् विजानीहि ॥

जो जिणु सो अप्पा मुणहु इहु सिद्धंतहु सारु ।
इउ जाणेविणु जोयहु छंडहु मायाचारु ॥ २१ ॥
यो जिनः तं आत्मानं मन्यस्व एष सिद्धान्तस्य सारः ।
इति ज्ञात्वा योगिन् ! त्यज मायाचारम् ॥

जो परमप्पा सो जि हउं जो हउं सो परमप्पु ।
इउ जाणेविणु जोइआ अण्ण म करहु वियप्पु ॥ २२ ॥
यः परमात्मा स एव अहं योऽहं स परमात्मा ।
इति ज्ञात्वा योगिन् ! अन्यत् मा कार्षीः विकल्पम् ॥

सुद्धपएसह पूरियउ लोयायासपमाणु ।
सो अप्पा अणुदिण मुणहु पावहु लहु णिव्वाणु ॥ २३ ॥
शुद्धप्रदेशैः पूरित लोकाकाशप्रमाण ।
त आत्मान अनुदिन मन्यस्व प्राप्नोषि लघु निर्वाण ॥

णिच्छइ लोयपमाण मुणि ववहारइ सुसरीरु ।
एहउ अप्पसहाउ मुणि लहु पावहु भवतीरु ॥ २४ ॥
निश्चयेन लोकप्रमाण मन्यस्व व्यवहारेण स्वशरीरस्य ।
इम आत्मस्वभाव मन्यस्व लघु प्राप्नोषि भवतीरम् ॥

चउरासीलक्खह फिरिउ काल अणाइ अणंतु ।
पर सम्मत्त ण लद्धु जिउ एहउ जाणि णिभंतु ॥ २५ ॥
चतुरशीतिलक्षे भ्रमितः कालमनाद्यनन्त ।
पर सम्यक्त्व न लब्ध जीव ! एतज्जानीहि निर्भ्रान्तम् ॥

सुद्धु सचेयण बुद्ध जिणु केवलणाणसहाउ ।
सो अप्पा अणुदिण मुणहु जइ चाहउ सिवलाहु ॥ २६ ॥
शुद्धं सचेतनः बुद्धः जिन केवलज्ञानस्वभावः ॥
तं आत्मान अनुदिनं मन्यस्व यदीच्छसि शिवलाभ ॥

जाम ण भावहु जीव तुहुं णिम्मलअप्पसहाउ ।
ताम ण लब्भइ सिवगमणु जहिँ भावहु तहिँ जाउ ॥२७॥
यावन्न भावयसि जीव ! त्व निर्मलात्मस्वभावम् ।
तावन्न लभसे शिवगमन यत्र भाति तत्र याहि ॥

जो तइलोयह झेउ जिणु सो अप्पा णिरु वुत्तु ।
णिच्छयणइ एमइ भणिउ एहउ जाणि णिभंतु ॥ २८ ॥
यस्त्रिलोकस्य ध्येयो जिन स आत्मा निज उक्तः ।
निश्चयनयेन एव भणितः एतज्जानीहि निर्भ्रान्तम् ॥

वयतवसंजममूलगुण मूढह मोक्ख णिवुत्तु ।
जाम ण जाणइ इक्क पर सुद्धउभावपवित्तु ॥ २९ ॥

व्रततपःसंयममूलगुणे मूढैर्मोक्षो निरुक्तः ।
यावन्न जानाति एकं परं शुद्धस्वभावपवित्रं ॥

जो णिम्मल अप्पा मुणइ वयसंजमसंजुत्तु ।
तउ लहु पावइ सिद्धसुहु इउ जिणणाहहं वुत्तु ॥ ३० ॥

यो निर्मलं आत्मानं मनुते व्रतसंयमसंयुक्तम् ।
स लघु प्राप्नोति सिद्धसुखं इति जिननाथैरुक्तम् ॥

वयतवसंजमसीलु जिय ए सव्वे अकयच्छु ।
जाम ण जाणइ इक्क पर सुद्धउभावपवित्तु ॥ ३१ ॥

व्रततपःसंयमशीलानि जीव ! एतानि सर्वाणि व्यर्थानि ।
यावन्न जानाति एकं परं शुद्धस्वभावपवित्रम् ॥

पुण्णि पावइ सग्ग जिय पावइ णरयणिवासु ।
बे छंडिवि अप्पा मुणइ तउ लब्भइ सिववासु ॥३२॥

पुण्येन प्राप्नोति स्वर्गं जीव पापेन नरकनिवासम् ।
द्वयं त्यक्त्वा आत्मानं मनुते तेन लभ्यते शिववासः ॥

वउतउसंजमसील जिया इय सव्वइं ववहारु ।
मोक्खहं कारण एक्क मुणी जो तइलोयहु सारु ॥ ३३ ॥

व्रततपःसंयमशीलानि जीव ! एतानि सर्वाणि व्यवहारेण ।
मोक्षस्य कारणं एकं मन्यस्व यः त्रिलोकस्य सारः ॥

अप्पा अप्पइ जो मुणइ जो परभाव चएइ ।
सो पावइ सिवपुरगमणु जिणवर एउ भणेइ ॥ ३४ ॥

आत्मना आत्मान यो मनुते यः परभाव त्यजति ।
स प्राप्नोति शिवपुरगमन जिनवर एव भणति ॥

छहदव्वह जे जिणकहिआ णव पयत्थ जे तत्त ।
ववहारें जिणउत्तिया ते जाणियहि पयत्त ॥ ३५ ॥

षट्द्रव्याणि यानि जिनकथितानि नव पदार्थाः ये तत्वानि।
व्यवहारेण जिनोक्तानि तानि जानीहि प्रयत्नेन ॥

सव्व अचेयण जाणि जिय एक्क सचेयण सार ।
जो जाणेविण परममुणी लहु पावइ भवपार ॥ ३६ ॥

सर्वान् अचेतनान् जानीहि जीव एक सचेतन सारम् ।
य ज्ञात्वा परममुनि. लघु प्राप्नोति भवपारम् ॥

जो णिम्मल अप्पा मुणहि छंडवि सहुववहारु ।
जिणसामी एहउ भणइ लहु पावहु भवपारु ॥ ३७॥

य. निर्मल आत्मान मनुते त्यक्त्वा सर्वव्यवहारम् ।
जिनस्वामी एव भणति लघु प्राप्नोति भवपारम् ॥

सोरठा ।

जीवाजीवह भेउ जो जाणइ ते जाणियउ ।
मोक्खह कारण एउ भणइ जोइ जोइहि भणिउं ॥ ३८ ॥

जीवाजीवयोर्भेद यो जानाति तेन ज्ञात ।
मोक्षस्य कारण एप भणति योगिन्! योगिना भणितः ॥[१]

चौपाई ।

कासु समाहि करउ को अंचउ ।
छोपुअछोपु करिवि को वंचउ ॥

---

१ अस्मादग्रे इदमपि दोहक—

केवलणाणुमहाउ सो अप्पा मुणि जीव तुहु ।
जइ चाहहि सिवलाहु जोइ जोइहिं भणिउ ॥ १ ॥

हल सहि कलहि केण सम्माणउ ।
जहिं जहिं जोवउ तहिं अप्पाणउ ॥ ३९ ॥

केन समाधिं करोमि कान् अर्चयामि ।
वैरमवैरं कृत्वा कान् वञ्चयामि ॥

[illegible] ।
यत्र यत्र पश्यामि तत्र आत्मा ॥

दोहा ।

ताम कुतित्थइं परिभमइ धुत्तिम ताम करेइ ।
गुरुहु पसाएं जाम ण वि देहह देउ मुणेइ ॥ ४० ॥

तावत्कुतीर्थेषु परिभ्रमति धूर्तत्वं तावत्करोति ।
गुरोः प्रसादात् यावन्न देहमेव देवं मनुते ॥

तित्थहि देवलि देउ ण वि इम सुइकेवलि वुत्तु ।
देहादेवलि देउ जिणु एहउ जाणि णिभंतु ॥ ४१ ॥

तीर्थेषु देवालये देवो नापि एवं श्रुतकेवलिनोक्तम् ।
देहदेवालये देवो जिन एवं जानीहि निर्भ्रान्तम् ॥

देहादेवलि देउ जिणु जणु देवलिहिं णिएइ ।
हासउ महु परि होइ इहु सिद्धा भिक्ख भमेइ ॥ ४२ ॥

देहदेवालये देवो जिन देवालये नास्ति । ।
हास्यं मुग्धस्य परि भवतीह सिद्धभिक्षां भ्रमति ॥ ।

मूढा देवलि देउ ण वि ण वि सिलि लिप्पइ चित्ति ।
देहादेवलि देउ जिणु सो बुज्झहि समचित्ति ॥ ४३ ॥

मूढ ! देवालये देवो नापि नापि शिलायां लेप्ये चित्रे ।
देहदेवालये देवो जिन तं बुध्यस्व समचेतसि ॥

तित्थहु देउलि देउ जिणु सव्व वि कोई भणेइ ।
देहादेउलि जो मुणइ सो बुह को वि हवेइ ॥ ४४ ॥
तीर्थे देवालये देवो जिन सर्वोऽपि कश्चित् भणति ।
देहदेवालये यो मनुते स बुधः कोऽपि भवेत् ॥

जइ जरमरणकरालियउ तउ जिणधम्म करेहि ।
धम्मरसायण पियहि तुहुं जिम अजरामर होहि ॥ ४५ ॥
यदि जरामरणकरालितः तर्हि जिनधर्मं कुरु ।
धर्मरसायन पिब त्व येन अजरामरो भव ॥

धम्मु ण पढिया होइ धम्मु ण पोच्छापिच्छयइ ।
धम्मु ण मढियपयेसि धम्मु ण मुच्छालुच्चियइ ॥ ४६ ॥
धर्मो न पठनेन भवेत् धर्मो न पुस्तकदर्शने ।
धर्मो न मठप्रदेशे धर्मो न कूर्चलुंचने ॥ ४६ ॥

रायरोस वे परिहरइ जो अप्पा णिवसेइ ।
सो धम्मु वि जिणुउत्तियउ जो पंचम गइ देइ ॥ ४७ ॥
रागद्वेषौ द्वौ परिहरति य आत्मनि निवसति ।
स धर्मो जिनोक्त य. पचमगतिं ददाति ॥

आउ गलइ ण वि मणु गलइ ण वि आसाहु गलेइ ।
मोह फुरइ ण वि अप्पहिउ इम संसार भमेइ ॥ ४८ ॥
आयुर्गलति न मनो गलति नाप्याशा गलति ।
मोह स्फुरति नापि आत्महित एव ससार भ्रमति ॥

जेहउ मणु विसयह रमइ तिम जे अप्प मुणेइ ।
जोइउ भणइ रे जोइहु लहु णिव्वाण लहेइ ॥ ४९ ॥
यथा मनो विषयेषु रमते तथा यदि आत्मान मनुते ।
योगी भणति रे योगिन् । लघु निर्वाण लभते ॥

जेहउ जज्जर णरयघरु तेहउ बुज्झि सरीरु ।
अप्पा भावहु णिम्मलहु लहु पावहु भवतीरु ॥ ५० ॥
यथा जर्जरं नरकगृहं तथा बुध्यस्व शरीरम् ।
आत्मानं भावय निर्मलं लघु प्राप्नोषि भवतीरम् ॥

धंधइ पडियउ सयलजगि ण वि अप्पाहु मुणंति ।
तिहं कारण ए जीव फुडु ण हु णिव्वाण लहंति ॥ ५१ ॥
धांधे पतितं सकलजगत् नापि आत्मानं मनुते ।
तेन कारणेनेमे जीवाः स्फुटं न हि निर्वाणं लभंते ॥

सत्थ पढंतह ते वि जड अप्पा जे ण मुणंति ।
तिहं कारण ऐ जीव फुडु ण हु णिव्वाण लहंति ॥ ५२ ॥
शास्त्रं पठन्ति तेऽपि जडा आत्मानं ये न जानन्ति ।
तेन कारणेनेमे जीवा स्फुटं न हि निर्वाणं लभन्ते ॥

मणु इंदिहि विच्छोडयइ बुह पुच्छियइ ण कोइ ।
रायह पसर णिवारियइ सहज्ज उपजइ सोइ ॥ ५३ ॥
मन इन्द्रियै वि ‒ ‒ ।
रागप्रसारं निवारय सहजं उत्पद्यते स ॥

पुग्गलु अण्णु जि अण्णु जिउ अण्णु वि सहुविवहारु ।
चयहि वि पुग्गल गहहि जिऊ लहु पावहु भवपारु ॥५४॥
पुद्गलोऽन्य अन्यो जीव अन्य सर्वव्यवहार ।
त्यज पुद्गलं ग्रहाण जीवं लघु प्राप्नोषि भवपारम् ॥

जे ण वि मण्णइ जीव फुडु जे ण वि जीव मुणंति ।
ते जिणणाहह उत्तिया णउ संसारु मुयंति ॥ ५५ ॥
ये नापि मन्यन्ते जीवं स्फुटं ये नापि जीवं मन्यन्ते । ?
ते जिननाथेन उक्ता न संसारं मुञ्चन्ति ॥

रयण दीउ दिणयर दहिउ दूध घीउ पाहाणु ।
सुण्ण रूउ फलियउ अगिणि णव दिट्ठता जाणु ॥५६॥

रत्न दीप· दिनकरः दधि दुग्धं घृतं पाषाण ।
सुवर्णं रौप्य स्फटिक अग्निः नव दृष्टान्तान् जानीहि [1] ॥

देहादिक जो पर मुणइ जेहउ सुणहुआयासु ।
सो लहु पावहि बंभु परु केवल करइ पयासु ॥ ५७॥

देहादिक य पर मनुते यथा शून्याकाश ।
स लघु प्राप्नोति ब्रह्म पर केवल करोति प्रकाशम् ॥

जेहउ सुद्ध आयासु जिय तेहउ अप्पा उत्तु ।
आयासु वि जड जाणि जिय अप्पा चेयणुवंतु ॥ ५८ ॥

यथा शुद्ध आकाशं जीव ! तथा आत्मा उक्तः ।
आकाशमपि जड जानीहि जीव ! आत्मान चैतन्यवन्त ॥

णासग्गि अब्भितरहं जे जोवहि असरीरु ।
वाहुडि जम्म ण संभवहि पिवहि ण जणणीखीरु ॥५९॥

नासाग्रेण अभ्यन्तरे यः पश्यति अशरीर ।
व्यावुट्य जन्म न सम्भवति पिबति न जननीक्षीरम् ॥

असरीरु वि सुसरीरु मुणी इहु सरीर जड जाणि ।
मिच्छामोह परिच्चयहि मुत्ति णियं णिणिमाणि ॥ ६० ॥

अशरीरोऽपि सशरीरो मुनि· इदं शरीर जड जानीहि ।
मिथ्यामोह परित्यज........ ..

---

१ शरीराद्भिन्नम् सिद्धस्वरूप। २ व्याधुटय जन्म धृत्वा जननीक्षीरं न पिबति इत्यर्थ । ३ चैतन्यशरीरवान् । ४ पौद्गलिकम् ।

अप्पय अप्पु मुणंतयह किण्णेहा फलु होइ ।
केवलणाणु विपरिणवइ सासय सुक्खु लहेइ ॥ ६१ ॥

आत्मना आत्मानं मन्यमानस्य किमिह फलं भवति ।
केवलज्ञानं विपरिणमति शाश्वतं सुखं लभते ॥

जे परभाव चएवि मुणी अप्पा अप्पु मुणंति ।
केवलणाणसरूव लियइ ते संसारु मुचंति ॥ ६२ ॥

ये परभावं त्यक्त्वा मुनय आत्मनात्मानं मन्यन्ते ।
केवलज्ञानस्वरूपं लब्ध्वा ते संसारं मुञ्चन्ति ॥

धण्णा ते भयवंत बुह जे परभाव चयंति ।
लोयालोयपयासयरु अप्पा विमल मुणंति ॥ ६३ ॥

धन्यास्ते भाग्यवन्तो बुधा ये परभावं त्यजन्ति ।
लोकालोकप्रकाशकरं आत्मानं विमलं जानन्ति ॥

सागारु वि णागारहु वि जो अप्पाणि वसेई ।
सो पावइ लहु सिद्धसुहु जिणवरु एम भणेइ ॥ ६४ ॥

सागारोऽप्यनगारोऽपि य आत्मनि वसति ।
स प्राप्नोति लघु सिद्धसुखं जिनवर एवं भणति ॥

विरला जाणहि तत्तु बुहु विरला णिसुणहि तत्तु ।
विरला झायहि तत्तु जिय विरला धारहि तत्तु ॥ ६५ ॥

विरला जानन्ति तत्त्वं बुधा विरला शृण्वन्ति तत्त्वम् ।
विरला ध्यायन्ति तत्त्वं जीव ! विरला धारयन्ति तत्त्वम् ॥

इहु परियण ण हु महुतणउ इहु सुहदुक्खह हेउ ।
इम चिंतंतह किं करइ लहु संसारह छेउ ॥ ६६ ॥

अय परिजनः न महान् पुन· अर्यं सुखदुःखस्य हेतुः ।
एव चिन्तयन् किं करोति लघु ससारस्य छेदम् ॥

इंदफणिंदणरिंदय वि जीवह सरण ण हुंति ।
असरणु जाणिवि मुणिधवला अप्पा अप्प मुणंति ॥ ६७ ॥

इन्द्रफणीन्द्रनरेन्द्रा अपि जीवस्य शरण न भवन्ति ॥
अशरण ज्ञात्वा मुनिधवला आत्मनात्मान मन्वते ॥

इक्क उपज्जइ मरइकुवि दुहु सुहु भुंजइ इक्कु ।
णरयह जाइवि इक्क जिय तह णिव्वाणह इक्कु ॥ ६८ ॥

एक उत्पद्यते म्रियते एक दुःख सुखं भुक्ते एक ।
नरक याति एक· जीव ! तथा निर्वाण एकः ॥

इक्कलउ जइ जाइसहि तो परभाव चएहि ।
अप्पा झायहि णाणमउ लहु सिवसुक्ख लहेहि ॥ ६९ ॥

एक यदि जायसे तर्हि परभाव त्यज ।
आत्मन ध्यायस्व ज्ञानमय लघु शिवसुख लभस्व ॥

जो पाउ वि सो पाउ मुणि सव्वु वि को वि मुणेइ ।
जो पुण्ण वि पाउ विभणइ सो बुह को वि हवेइ ॥ ७० ॥

य· पापमपि तत्पाप मनुते सर्व कोऽपि मनुते ।
य पुण्यमपि पाप भणति स बुध कोऽपि भवेत् ॥

जह लोयम्मिय णियडहा तह सुणम्मिय जाणि ।
जे सुह असुह परिच्चयहि ते वि हवंति हु णाणि ॥ ७१ ॥

यथा लोहमय निगळ तथा सुवर्णमय जानीहि ।
ये शुभ अशुभ परित्यजन्ति ते भवन्ति हि ज्ञानिन ॥

---

१ करोति इति सम्बन्ध ।

जइया मणुणिग्गंथ जिय तइया तुहु णिग्गंथु ।
जइया तुहु णिग्गंथ जिय तो लब्भइ सिवपंथु ॥ ७२ ॥

यावत् मनोनिर्ग्रन्थ जीव ! तावत्त्वं निर्ग्रन्थ ।
यावत्त्वं निर्ग्रन्थ जीव ! तत लभसे शिवपथं ॥

जं वडमज्झह बीज फुडु बीयह वड वि हु जाणु ।
तं देहं देउ वि मुणहि जो तइलोय पहाणु ॥ ७३ ॥

यथा वटमध्ये बीजं स्फुटं बीजे वटमपि जानीहि ।
तथा देहे देवं मन्यस्व य त्रिलोके प्रधान ॥

जो जिण सो हउ सो जि हउ एहउ भाउ णिभंतु ।
मोक्खह कारण जोइया अण्णु ण तंतु ण मंतु ॥ ७४ ॥

यो जिन सोऽहं सोऽप्यहं एतत् भावय निर्भ्रान्तिम् ।
मोक्षस्य कारणं योगिन् ! अन्यो न तंत्र न मंत्र ॥

वेतेचउपंचविणवहंसत्तहछहपंचाह—।
चउगुणसहियउ जो मुणहि एहउ लक्खण जाह ॥ ७५ ॥

द्वित्रिचतु पंचद्विनवसप्तषट्पंच—
चतुर्गुणसहितं य मनुते एतल्लक्षणं यस्मिन् ॥

बे छंडवि बेगुणसहिउ जो अप्पाणि वसेइ ।
जिणसामिउ एवं भणइ लहु णिव्वाण लहेइ ॥ ७६ ॥

द्वौ त्यक्त्वा द्विगुणसहित य आत्मनि वसति ।
जिनस्वामी एवं भणति लघु निर्वाणं लभते ॥

तिहरहिउ तिहगुणसहिउ जो अप्पाणि वसेइ ।
सो सासयसुहभायणु वि जिणवर एम भणेइ ॥ ७७ ॥

त्रिरहितः त्रिगुणसहितः य आत्मनि वसति ।
स शाश्वतसुखभाजन अपि जिनवरः एवं भणति ॥

चउकसायसण्णारहिउ चउगुणसहिउ वुत्तु ।
सो अप्पा मुणि जीव तुहुं जिम परु होहि पवित्तु ॥७८॥

चतुःकषायसंज्ञारहितः चतुर्गुणसहितः उक्त. ।
त आत्मान मनुस्व जीव । त्व येन परः भवासि पवित्रः ॥

वेपंचविरहियउ मुणहि वेपंचहसंजुत्त ।
वेपंचह जो गुण सहियो सो अप्पा णिरु उत्त ॥ ७९ ॥

द्विपचरहित जानीहि द्विपचसंयुक्त ।
द्विपंचभि· यो गुणै सहित स आत्मा निज उक्तः ॥

अप्पा दंसणु णाण मुणी अप्पा चरणु वियाणि ।
अप्पा संजम सील तउ अप्पा पच्चक्खाणि ॥ ८० ॥

आत्मान दर्शन ज्ञान मन्यस्व, आत्मानं चरण जानीहि ।
आत्मा संयम· शील तपः आत्मा प्रत्याख्यानम् ॥

जो परियाणइ अप्प परु सो परिच्चयहि णिभंतु ।
सो सण्णास(ण) मुणेहि तुहुं केवलणाणिं वुत्तु ॥ ८१ ॥

यः परिजानाति आत्मान पर स परित्यजति निर्भ्रांत ।
तत्सज्ञान मनुस्व त्वं केवलज्ञानिना उक्तम् ॥

दंसण जहिं पिच्छयइ वुह अप्पा विमल मुणंतु ।
पुण पुण अप्पा भावियइ सो चारित्त पवित्तु ॥ ८२ ॥

दर्शन येन पश्यति बोध आत्मान विमल मनुते ।
पुन· पुनः आत्मानं भावयति तत् चारित्र पवित्रम् ॥

---

१ परमन्यं । २ ऐहु णिभतु इत्यपि पाठ । ३ झाइयइ इत्यपि पाठ ।

रयणत्तयसंजुत्त जिउ उत्तमतित्थ पवित्तु ।
मोक्खहु कारण जोईया अण्णु ण तंतु ण मंतु ॥ ८३ ॥

रत्नत्रयसंयुक्तो जीव उत्तमतीर्थं पवित्रम् ।
मोक्षस्य कारणं योगिन् ! अन्यो न तंत्रं न मंत्रः ॥

जहिँ अप्पा तहिँ सयलगुण केवलि एम भणंति ।
तिहिँ कारण ए जीव फुडु अप्पा विमल मुणंति ॥ ८४ ॥

यत्र आत्मा तत्र सकलगुणा केवलिन एवं भणंति ।
तेन कारणेन इमे जीवा स्फुटं आत्मानं विमलं जानन्ति ॥

इक्कलउ इंदियरहिउ मणवयकायतिसुद्धि ।
अप्पा अप्प मुणेइ तुहु लहु पावहु सिवसिद्धि ॥ ८५ ॥

एकाकी इंद्रियरहितः मनोवाक्कायत्रिशुद्ध्या ।
आत्मना आत्मानं मनुष्व त्वं लघु प्राप्नोसि शिवसिद्धिम् ॥

जइ बद्धउ मुक्कउ मुणहि तो बंधियहि णिभंतु ।
सहजसरूवि जइ रमइ तो पावइ सिव संतु ॥ ८६ ॥

यदि बद्धं मुक्तं मन्यसे तर्हि बध्नासि निर्भ्रान्तम् ।
सहजस्वरूपे यदि रमसे तर्हि प्राप्नोसि शिवं शान्तम् ॥

सम्माइट्ठीजीवडह दुग्गइगमणु ण होइ ।
जइ जाइ वि सो दोस ण वि पुव्वक्किउ खवणेइ ॥ ८७ ॥

सम्यग्दृष्टिजीवस्य दुर्गतिगमनं न भवति ।
यदि यात्यपि तर्हि दोषा नापि पूर्वकृत्यं क्षपयति ॥

अप्पसरूवइ जो रमइ छंडवि सहुववहारु ।
सो सम्माइट्ठी हवइ लहु पावइ भवपारु ॥ ८८ ॥

आत्मस्वरूपे यो रमते त्यक्त्वा सर्वव्यवहारम् ।
स सम्यग्दृष्टि भवति लघु प्राप्नोति भवपारम् ॥

अजरु अमरु गुणगणणिलउ जहिं अप्पा थिर थाइ ।
सो कम्महि ण वि बंधयउ संचियपुव्व विलाइ ॥ ८९ ॥

अजरोमरो गुणगणनिलयः यत्र आत्मा स्थिरः तिष्ठति ।
स कर्माणि नैव बध्नाति सचितपूर्वाणि विलीयते ॥

जो सम्मत्तपहाणु बुहु सो तयलोय पहाणु ।
केवलणाण वि सह लहई सासयसुक्खणिहाणु ॥ ९० ॥

य सम्यक्त्वप्रधान बुध. स त्रैलोक्ये प्रधान. ।
केवलज्ञानमपि स लभते, शाश्वतसुखनिधान ॥

जह सलिलेण ण लिप्पियइ कमलणिपत्त कया वि ।
तह कम्मेण ण लिप्पियइ जइ रइ अप्पसहावि ॥ ९१ ॥

यथा सलिलेन न लिप्यते कमलिनीपत्र कदापि ।
तथा कर्मणा न लिप्यते यदि रमते आत्मस्वभावे ॥

जो समसुक्खणिलीण बुहु पुण पुण अप्प मुणेइ ।
कम्मक्खउ करि सो वि फुडु लहु णिव्वाण लहेइ ॥ ९२ ॥

य. समसुखनिलीन बुध पुनः पुन आत्मान मनुते ।
कर्मक्षय कृत्वा सोऽपि स्फुट लघु निर्वाण लभते ॥

पुरुसायारपमाणु जिय अप्पा एहु पवित्तु ।
जोइज्जइ गुणणिम्मलउ णिम्मलतेय फुरंतु ॥ ९३ ॥

पुरुषाकारप्रमाण जीव आत्मानं इम पवित्र ।
पश्यति गुणनिर्मल निर्मलतेजसा स्फुरन्त ॥

सो अप्पा मुद्ध वि मुणई असुइसरीरविभिण्णु ।
सो जाणइ सच्छइ सयलु सासयसुक्खहलीणु ॥ ९४ ॥

य आत्मानं मुग्धं अपि मनुते अशुचिशरीरविभिन्नं ।
स जानाति शास्त्रं सकलं शाश्वतसुखलीन ॥

जो ण वि जाणइ अप्प परु ण वि परभाव चएवि ।
सो जाणउ सच्छइ सयलु ण हु सिवसुक्ख लहेवि ॥ ९५ ॥

यः नापि जानाति आत्मानं परं नापि परभावं त्यजति ।
स जानन् शास्त्राणि सकलानि न हि शिवसुखं लभते ॥

वज्जिय सयलवियप्पयइ परमसमाहि लहंति ।
जं वेददि साणंद फुडु सो सिवसुक्ख भणंति ॥ ९६ ॥

वर्जितं सकलविकल्पे परमसमाधिं लभन्ते ।
यत् विदन्ति सानन्दं स्फुटं तत् शिवसुखं भणन्ति ॥

जो पिंडत्थु पयत्थु बुह रूवत्थु वि जिणउत्तु ।
रूवातीउ मुणेहु लहु जिम परु होहि पवित्तु ॥ ९७ ॥

य पिंडस्थं पदस्थं बुध रूपस्थमपि जिनोक्तम् ।
रूपातीतं मन्यते लघु येन परं भवति पवित्रं ॥

सव्वे जीवा णाणमया जो समभाव मुणेइ ।
सो सामाइउ जाणि फुडु जिणवर एम भणेइ ॥ ९८ ॥

सर्वे जीवा ज्ञानमया य समभावं मनुते ।
तत् सामायिकं जानीहि स्फुटं जिनवर एवं भणति ॥

रायरोस बे परिहरवि जो समभाव मुणेइ ।
सो सामाइय जाणि फुडु केवलि एम भणेइ ॥ ९९ ॥

रागद्वेषौ द्वौ परिहृत्य यः समभाव मनुते ।
तत्सामायिक जानीहि स्फुट केवली एव भणति ॥

हिंसादिउ परिहार करि जो अप्पाहु ठवेइ ।
सो वीअउ चारित्त मुणि जो पंचमगइ णेइ ॥ १०० ॥

हिंसादीना परिहार कृत्वा य. आत्मान स्थापयति ।
तद्द्वितीय चारित्र मनुस्व यत्पचमगति नयति ॥

मिच्छादिउ जो परिहरणु सम्मदंसणसुद्धि ।
सो परिहारविसुद्ध मुणि लहु पावहि सिवसुद्धि ॥ १०१ ॥

मिथ्यात्वादिक यः परित्यज्य सम्यग्दर्शनशुद्धिर्म् ।
तत्परिहारविशुद्धं मनुस्व लघु प्राप्नोसि शिवशुद्धिम् ॥

सुहमहु लोहहु जो विलउ सुहमु हवे परिणामु ।
सो सुहमहुचारित्त मुणि सो सासयसुहधामु ॥ १०२ ॥

सूक्ष्मस्य लोभस्य यः विलय सूक्ष्म. भवेत्परिणाम. ।
तत्सूक्ष्मचारित्र मनुस्व तत् शाश्वतसुखधाम ॥

अरिहंतु वि सो सिद्ध फुडु सो आयरिउ वियाणि ।
सो उज्झावो सो जि मुणि णिच्छय अप्पा जाणि ॥ १०३ ॥

अर्हन्तमपि त सिद्ध स्फुट त आचार्यं जानीहि ।
त उपाध्याय तमेव मुनि निश्चयेन आत्मान जानीहि ॥

सो सिव संकर विण्हु सो सो रुद्द वि सो बुद्धु ।
सो जिण ईसर बंभु सो सो अणंत फुडु सिद्धु ॥ १०४ ॥

स शिवः शकर· विष्णु. स स रुद्रः अपि स बुद्ध
स जिन· ईश्वर· ब्रह्मा स अनत· स्फुट सिद्धः ॥

---

१ छेदोपस्थापनसज्ञक। २ धारयतीति शेष ।

जो अप्पा सुद्ध वि मुणइ असुइसरीरविभिण्णु ।
सो जाणइ सच्छइ सयलु सासयसुक्खइलीणु ॥ ९४ ॥

य आत्मानं शुद्धं नापि मनुते अशुचिशरीरविभिन्नं ।
स जानाति शास्त्राणि सकलं शाश्वतसुखलीन ॥

जो ण वि जाणइ अप्प परु ण वि परभाव चएवि ।
सो जाणउ सच्छइ सयलु ण हु सिवसुक्ख लहेवि ॥ ९५ ॥

य नापि जानाति आत्मानं परं नापि परभावं त्यजति ।
स जानन् शास्त्राणि सकलानि न हि शिवसुखं लभते ॥

वज्जिय सयलवियप्पयइ परमसमाहि लहंति ।
जं वेददि साणंद फुडु सो सिवसुक्ख भणंति ॥ ९६ ॥

वर्जितं सकलविकल्पे परमसमाधिं लभन्ते ।
यत् विदन्ति सानन्दं स्फुटं तत् शिवसुखं भणन्ति ॥

जो पिंडत्थु पयत्थु बुह रूवत्थु वि जिणउत्तु ।
रूवातीत मुणेहु लहु जिम पर होहि पवित्तु ॥ ९७ ॥

य पिंडस्थं पदस्थं बुध रूपस्थमपि जिनोक्तम् ।
रूपातीतं मन्यसे लघु येन परं भवति पवित्र ॥

सव्वे जीवा णाणमया जो समभाव मुणेइ ।
सो सामाइउ जाणि फुडु जिणवर एम भणेइ ॥ ९८ ॥

सर्वे जीवा ज्ञानमया य समभावं मनुते ।
तत् सामायिकं जानीहि स्फुटं जिनवर एवं भणति ॥

रायरोस बे परिहरवि जो समभाव मुणेइ ।
सो सामाइय जाणि फुडु केवलि एम भणेइ ॥ ९९ ॥

कल्लाणालोयणा ।



परमप्पय वड्ढमई परमेट्ठीणं करोमि णवकारं ।
सगपरसिद्धिणिमित्तं कल्लाणालोयणा वोच्छे ॥ १ ॥

परमात्मान वर्द्धितमतिं परमेष्ठिन करोमि नमस्कारम् ।
स्वकपरसिद्धिनिमित्त कल्याणालोचना वक्ष्ये ॥

रे जीवाणंतभवे संसारे संसरंत बहुवार ।
पत्तो ण बोहिलाहो मिच्छत्तवियंभपयडीहिं ॥ २ ॥

रे जीव ! अनन्तभवे ससारे ससरता बहुवारम् ।
प्राप्तो न बोधिलाभो मिथ्यात्वविजृंभितप्रकृतिभि ॥

संसारभमणगमणं कुणंत आराहिऊ ण जिणधम्मो ।
तेणेविण वर दुक्खं पत्तोसि अणंतवाराइं ॥ ३ ॥

ससारभ्रमणगमन कुर्वन् आराधितो न जिनधर्म ।
तेन विना वर दुक्ख प्राप्तोऽसि अनन्तवारम् ॥

संसारे णिवसंता अणंतमरणाइं पाविओसि तुमं ।
केवलि विणा ण(य) तेसिं संखापज्जत्ति णो हवइ ॥ ४ ॥

ससारे निवसन् अनन्तमरणानि प्राप्तोऽसि त्व ।
केवलिना विना तेषा सख्यापर्याप्तिर्न भवति ॥

तिण्णि सया छत्तीसा छावट्ठिसहस्सवारमरणाइं ।
अंतोमुहुत्तमज्झे पत्तोसि णिगोयमज्झम्मि ॥ ५ ॥

त्रीणि शतानि षट्त्रिंशानि षट्षष्ठिसहस्रवारमरणानि ।
अन्तर्मुहूर्तमध्ये प्राप्तोऽसि निगोदमध्ये ॥

एहियलक्खणलक्खियउ जो पर णिक्कलु देउ ।
देहहं मज्झहिं सो वसइ तासु ण वीजउ भेउ ॥ १०५ ॥

एतल्लक्षणलक्षित यः परः निष्कलो देवः ।
देहस्य मध्ये स वसति तस्मिन् नान्यभेदः ॥

जे सिद्धा जे सिज्झसिहिं जे सिज्झहिं जिण उत्तु ।
अप्पादंसण ते वि फुडु एहउ जाणि णिभंतु ॥ १०६ ॥

ये सिद्धा ये सेत्स्यन्ति ये सिध्यन्ति जिनोक्तं ।
आत्मदर्शनेन तेऽपि स्फुटं एतत् जानीहि निर्भ्रान्तम् ॥

संसारहं भयभीयएहं जोगिचंदमुणिएणं ।
अप्पासंवोहण कयाइं दोहा एक्कमणेण ॥ १०७ ॥

संसारस्य भयभीतानां योगिचंद्रमुनिना ।
आत्मसंबोधनाय कृतानि दोहकानि एकमनसा ॥

इति श्रीयोगिचंद्रकृतो योगसारः संपूर्णोभूत् ।

समाप्तोयं योगसारः ।

कल्लाणालोयणा।



परमप्पय वड्ढमई परमेट्ठीणं करोमि णवकारं।
सगपरसिद्धिणिमित्तं कल्लाणालोयणा वोच्छे ॥ १ ॥

परमात्मान वर्द्धितमतिं परमेष्ठिन करोमि नमस्कारम्।
स्वकपरसिद्धिनिमित्त कल्याणालोचना वक्ष्ये ॥

रे जीवाणंतभवे संसारे संसरंत बहुवारं।
पत्तो ण बोहिलाहो मिच्छत्तवियंभपयडीहिं ॥ २ ॥

रे जीव! अनन्तभवे ससारे संसरता बहुवारम्।
प्राप्तो न बोधिलाभो मिथ्यात्वविजृंभितप्रकृतिभि ॥

संसारभमणगमणं कुणंत आराहिऊ ण जिणधम्मो।
तेणेविण वर दुक्खं पत्तोसि अणंतवाराइं ॥ ३ ॥

ससारभ्रमणगमन कुर्वन् आराधितो न जिनधर्म।
तेन विना वर दुक्ख प्राप्तोऽसि अनन्तवारम् ॥

संसारे णिवसंता अणंतमरणाइं पाविओसि तुमं।
केवलि विणा ण(य) तेसिं संखापज्जत्ति णो हवइ ॥ ४ ॥

ससारे निवसन् अनन्तमरणानि प्राप्तोऽसि त्व।
केवलिना विना तेपा सख्यापर्याप्तिर्न भवति ॥

तिण्णि सया छत्तीसा छावट्ठिसहस्सवारमरणाइं।
अंतोमुहुत्तमज्झे पत्तोसि णिगोयमज्झम्मि ॥ ५ ॥

त्रीणि शतानि पट्त्रिंशानि पट्षष्टिसहस्रवारमरणानि।
अन्तर्मुहूर्तमध्ये प्राप्तोऽसि निगोदमध्ये ॥

वियलिंदिए असीदी सट्ठी चालीसमेव जाणेहि ।
पंचेंदिय चउवीसं खुद्दभवंतोमुहुत्तस्स ॥ ६ ॥

विकलेन्द्रियेऽशीतिं षष्टिं चत्वारिंशदेव जानीहि ।
पंचेन्द्रिये चतुर्विंशतिं क्षुद्रभवान् अन्तमुहूर्ते ॥

अण्णोण खज्जंता जीवा पावंति दारुणं दुक्खं ।
ण हु तेसिं पज्जत्ती कह पावइ धम्ममइसुण्णो ॥ ७ ॥

अन्योऽन्यं क्षुभ्यन्तो जीवा प्राप्नुवन्ति दारुणं दुःखम् ।
न खलु तेषां पर्याप्ती कथं प्राप्नोति धर्ममतिशून्य ॥

माया पियर कुडुंबो सुयणजणो को वि णावइ सत्थे ।
एगागी भमइ सया ण हि बीओ अत्थि संसारे ॥ ८ ॥

माता पिता कुटुम्ब स्वजनजन कोऽपि नायाति सह ।
एकाकी भ्रमति सदा न हि द्वितीयोऽस्ति संसारे ॥

आउक्खए वि पत्ते ण समत्थो को वि आउदाये य ।
देवेंदो ण णरेंदो मणिओसहमंतजालाई ॥ ९ ॥

आयु क्षयेऽपि प्राप्ते न समर्थ कोऽपि आयुर्दाने च ।
देवेन्द्रो न नरेन्द्र मण्यौषधमंत्रजालानि ॥

संमहि जिणवरधम्मो लद्धोसि तुमं विसुद्धजोएण ।
खामसु जीवा सव्वे पत्ते समए पयत्तेण ॥ १० ॥

सम्प्रति जिनवरधर्म लब्धोऽसि त्वं विशुद्धयोगेन ।
क्षमस्व जीवान् सर्वान् प्रत्येकं समये प्रयत्नेन ॥

तिण्णि सया तेसट्ठी मिच्छत्ता दंसणस्स पडिवक्खा ।
अण्णाणे सद्दहिया मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ ११ ॥

त्रीणि शतानि त्रिषष्टि मिथ्यात्वानि दर्शनस्य प्रतिपक्षाणि ।
अज्ञानेन श्रद्धितानि मिथ्या मे दुष्कृत भवतु ॥

महुमज्जमंसजूवापभिदी वसणाइं सत्तभेयाइं ।
णियम ण कयं च तेसिं मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ १२ ॥

मधुमद्यमांसद्यूतप्रभृतीनि व्यसनानि सप्तभेदानि ।
नियमो न कृतः च तेषा मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

अणुवयमहव्वया जे जमणियमाशील साहुगुरुदिण्णा ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ १३ ॥

अणुव्रतमहाव्रतानि यानि यमनियमशीलानि साधुगुरुदत्तानि ।
यानि यानि विराधितानि खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

णिच्चिदरधादुसत्तय तरुदह वियलिंदिएसु छच्चेव ।
सुरणरयतिरिय चदुरो चउदस मणुए सदसहस्सा ॥ १४ ॥

नित्येतरधातुसप्त, तरुदश, विकलेन्द्रियेषु षट् चैव ।
सुरनारकतिर्यक्षु चत्वार. चतुर्दश मनुष्ये शतसहस्राणि ॥

एदे सव्वे जीवा चउरासीलक्खजोणिवसि पत्ता ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ १५ ॥

एते सर्वे जीवाश्चतुरशीतिलक्षयोनिवशे प्राप्ताः ।
ये ये विराधिता· खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

पुढवीजलग्गिवाओतेओविवणस्सई य वियलतया ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ १६ ॥

पृथ्वीजलाग्निवायुतेजोवनस्पतयश्च विकलत्रया· ।
ये ये विराधिता· खलु मिथ्या मे दुष्कृत भवतु ॥

मलसघरा जिणुत्ता वयविसए आ विराहणा विविहा ।
सामइखमइया खलु मिच्छा मे दुक्कड हुज्ज ॥ १७ ॥

मलसहतिर्जिनोक्ता व्रतविषये या विराधना विविधा ।
सामायिकक्षमादिका मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

फलफुल्लछल्लिवल्ली अणगलण्हाणं च धोवणाईहिं ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ १८ ॥

फलपुष्पत्वग्वल्ली अगालितस्नानं च प्रक्षालनादिभिः ।
ये ये विराधिता खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

णो सीलं णेव खमा विणओ तवो ण संजमोवासा ।
ण कया ण भावियव्वा मिच्छा मे दुक्कड हुज्ज ॥ १९ ॥

न शीलं नैव क्षमा विनयस्तपो न संयमोपवासा ।
न कृता न भावनीकृता मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

कंदफलमूलवीया सचित्तरयणीयभोयणाहारा ।
अण्णाणे जे वि कया मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ २० ॥

कन्दफलमूलबीजानि सचित्तरजनीभोजनाहारा ।
अज्ञानेन येऽपि कृता मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

णो पूया जिणचलणे ण पत्तदाणं ण चेइयागमणं ।
ण कया ण भाविय मइ मिच्छा मे दुक्कड हुज्ज ॥ २१ ॥

नो पूजा जिनचरणे न पात्रदानं न चैत्यागमनम् ।
न कृता न भाविता मया मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

वंभारंभपरिग्गहसावज्जा बहु पमाददोसेण ।
जीवा विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ २२ ॥

अल्पारंभपरिग्रहसावद्यानि बहूनि प्रमाददोषेण ।
जीवा विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

सत्तस्सिउखित्तभवाऽतीदाणागयसुवट्टमाणजिणा ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ २३ ॥

सप्ततिशतक्षेत्रभवा[2] अतीतानागतवर्तमानजिना ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

अरुहासिद्धाइरिया उवज्झाया साहु पंचपरमेट्ठी ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ २४ ॥

अर्हत्सिद्धाचार्या उपाध्याया साधवः पंचपरमेष्ठिनः ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

जिणवयण धम्म चेइय जिणपडिमा किट्टिमा अकिट्टिमया ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ २५ ॥

जिनवचन धर्म चैत्य जिनप्रतिमा कृत्रिमा अकृत्रिमाः ।
ये ये विराधिता खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

दंसणणाणचरित्ते दोसा अट्ठट्ठपंचभेयाइं ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ २६ ॥

दर्शनज्ञानचारित्रे दोषा अष्टाष्टपंचभेदा ।
ये ये विराधिता खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

मइ सुइ ओही मणपज्जयं तहा केवलं च पंचमयं ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ २७ ॥

मति श्रुत अवधि मनःपर्यय तथा केवल च पंचमकम् ।
ये ये विराधिता खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

आयारादी अंगा पुव्वपइण्णा जिणेहि पण्णत्ता ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ २८॥
आचारादीन्यङ्गानि पूर्वप्रकीर्णकानि जिनैः प्रणीतानि ।
ये ये विराधिता खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

पंचमहव्वयजुत्ता अट्ठारससहस्ससीलकयसोहा ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ २९ ॥
पंचमहाव्रतयुक्ता अष्टादशसहस्रशीलकृतशोभाः ।
ये ये विराधिता खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

लोए पियरसमाणा रिद्धिपवण्णा महागणवइया ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ ३० ॥
लोके पितृसमाना ऋद्धिप्रपन्ना महागणपतयः ।
ये ये विराधिता खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

णिग्गंथ अज्जियाओ सड्ढा सड्ढी य चउविहो संघो ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ ३१ ॥
निर्ग्रन्था आर्यिकाः श्रावकाः श्राविकाः च चतुर्विधो संघः ।
ये ये विराधिता खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

देवाऽसुरा मणुस्सा णेरइया तिरियजोणिगयजीवा ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ ३२ ॥
देवा असुरा मनुष्या नारकाः तिर्यग्योनिगतजीवाः ।
ये ये विराधिता खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

कोहो माणो माया लोहो एत्थम्म रायदोसाइ ।
अण्णाणें जे वि कया मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ ३३ ॥

क्रोधो मान माया लोभः एते रागदोषाः ।
अज्ञानेन येऽपि कृता मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥

परवत्थं परमहिला पमादजोएण अज्जियं पावं ।
अण्णावि अकरणीया मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ ३४ ॥

परवस्त्र परमहिला प्रमादयोगेनार्जित पापम् ।
अन्येऽपि अकरणीया मिथ्या मे दुष्कृत भवतु ॥

इक्को सहावसिद्धो सोहं अप्पा वियप्पपरिमुक्को ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥ ३५ ॥

एकः स्वभावसिद्धः स आत्मा विकल्पपरिमुक्तः ।
अन्यो न मम शरण शरणं स एकः परमात्मा ॥

अरस अरूव अगंधो अव्वावाहो अणंतणाणमओ ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥ ३६ ॥

अरसः अरूपः अगन्धः अव्याबाधः अनन्तज्ञानमयः ।
अन्यो न मम शरण शरण स एक. परमात्मा ॥

णेयपमाणं णाणं समए इक्केण हुंति ससहावे ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥ ३७ ॥

ज्ञेयप्रमाण ज्ञान समयेन एकेन भवति स्वस्वभावे ।
अन्यो न मम शरण शरण स एकः परमात्मा ॥

एयाणेयवियप्पप्पसाहणे सयसहावसुद्धगई ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥ ३८ ॥

एकानेकविकल्पप्रसाधने स्वकस्वभावशुद्धगति· ।
अन्यो न मम शरण शरण स एक परमात्मा ॥

देहपमाणो णिच्चो लोयपमाणो वि धम्मदो होदि ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥ ३९ ॥

देहप्रमाणः नित्यः लोकप्रमाणः अपि धर्मतो भवति ।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा ॥

केवलदंसणणाणे समए इक्केण दुण्णि उवउग्गा ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥ ४० ॥

केवलदर्शनज्ञाने समयेनैकेन द्वौ उपयोगौ ।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा ॥

सगरूवसहजसिद्धो विहावगुणमुक्ककम्मवावारो ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥ ४१ ॥

स्वकरूपसहजसिद्धो विभावगुणमुक्तकर्मव्यापारः ।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा ॥

सुण्णो णेय असुण्णो णोकम्मोकम्मवज्जिओ णाणं ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥ ४२ ॥

शून्यो नैवाशून्यो ? नोकर्मकर्मवर्जितं ज्ञानम् ।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा ॥

णाणाउ जो ण भिण्णो वियप्पभिण्णो सहावसुक्खमओ ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥ ४३ ॥

ज्ञानतो यो न भिन्नः विकल्पभिन्नः स्वभावसुखमयः ।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा ॥

अच्छिण्णोवच्छिण्णो पमेयरूवत्त गुरुलहू णेव ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥४४॥

अच्छिन्नोऽवच्छिन्न. प्रमेयरूपत्व अगुरुलघुत्व चैव ।
अन्यो न मम शरण शरण स एकः परमात्मा ॥

सुहअसुहभावविगओ सुद्धसहावेण तम्मयं पत्तो ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥४५॥

शुभाशुभभावविगत. शुद्धस्वभावेन तन्मय प्राप्त ।
अन्यो न मम शरण शरण स एकः परमात्मा ॥

णो इत्थी ण णउंसो णो पुंसो णेव पुण्णयावमओ ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥४६॥

न स्त्री न नपुसको न पुमान्... . ।
अन्यो न मम शरण शरणं स एक परमात्मा ॥

ते को ण होदि सुयणो तं कस्स ण बंधवो ण सुयणो वा ।
अप्पा हवेह अप्पा एगागी जाणगो सुद्धो ॥४७॥

तव को न भवति स्वजन त्व कस्य न बन्धुः सुजनो वा ।
आत्मा भवेत् आत्मा एकाकी ज्ञायकः शुद्ध ॥

जिणदेवो होउ सया मई सुजिणसासणे सया होउ ।
सण्णासेण य मरणं भवे भवे मज्झ संपदओ ॥४८॥

जिनदेवो भवतु सदा मति सुजिनशासने सदा भवतु ।
सन्यासेन च मरण भवे भवे मम सम्पत् ॥

जिणो देवो जिणो देवो जिणो देवो जिणो जिणो ।
दया धम्मो दया धम्मो दया धम्मो दया सया ॥४९॥

जिनो देवो जिनो देवो जिनो देवो जिनो जिनः ।
दया धर्मो दया धर्मो दया धर्मो दया सदा ॥

महासाहू महासाहू महासाहू दिगंबरा ।
एवं सव्व सदा हुज्ज जाव णो मुत्तिसंगमो ॥५०॥

महासाधव महासाधव महासाधवो दिगम्बरा ।
एवं सर्वं सदा भवतु यावन्न मुक्तिसंगमः ॥

एवमेव गओ कालो अणंतो दुक्खसंगमे ।
जिणोवदिट्ठसण्णासे ण यत्तारोहणा कया ॥५१॥

एवमेव गतः कालोऽनन्तो दुःखसङ्गमे ।
जिनोपदिष्टसंन्यासे न यत्नारोहणा कृता ॥

संपई एव संपत्ताराहणा जिणदेसिया ।
किं किं ण जायदे मज्झ सिद्धिसंदोहसंपई ॥५२॥

सम्प्रति एव सम्प्राप्ताराधना जिनदेशिता ।
का का न जायते मम सिद्धिसंदोहसम्पत्ति ॥

अहो धम्ममहो धम्मं अहो मे लद्धि णिम्मला ।
संजादा संपया सारा जेण सुक्खमणुप्पम ॥ ५३ ॥

अहो धर्म अहो धर्म अहो मे लब्धिर्निर्मला ।
संजाता सम्पत् सारा येन सुखं अनुपमम् ॥

एवं आराहंतो आलोयणवंदणापडिक्कमणं ।
पावइ फलं च तेसिं णिद्दिट्ठं अजियबंभेण ॥५४॥

एवमाराधयन् आलोचनावन्दनाप्रतिक्रमणानि ।
प्राप्नोति फलं च तेषां निर्दिष्टमजितब्रह्मणा ॥

* इति कल्याणालोयणा ।

---

* योगसारः कल्याणालोयणेति ग्रन्थद्वयं जैनमित्रस्थेन सम्पादितं । द्वे प्रेसपुस्तके अप्पहुदे आसताम् ।

श्रीयोगीन्द्रदेव-विरचिता ।

अमृताशीतिः ।



विश्वप्रकाशिमहिमानममानमेक-
मोमक्षराद्यखिलवाङ्मयहेतुभूतं ।
यं शंकरं सुगतमाधवमीशमाहु-
रर्हन्तमूर्जितमहन्तमहं नमामि ॥ १ ॥

अर्थोपार्जनप्रयास ।

भ्रातः ! प्रभातसमये त्वरितः किमर्थ-
मर्थाय चेत्स च सुखाय ततः स सार्थः ।
यद्येवमाशु कुरु पुण्यमतोर्थसिद्धिः
पुण्यैर्विना न हि भवन्ति समीहितार्थाः ॥ २ ॥

धर्मादयो हि हितहेतुतया प्रसिद्धा
धर्माद्धनं धनत ईहितवस्तुसिद्धिः ।
बुद्ध्वेति मुग्ध ! हितकारि विधेहि पुण्यं
पुण्यैर्विना न हि भवन्ति समीहितार्थाः ॥ ३ ॥

वार्त्तादिभिर्यदि धनं नियतं जनानां
निस्वः कथं भवति कोऽपि कृपीवलादिः ।
ज्ञात्वेति रे मम वचश्चतुराः स्वपुण्यैः
पुण्यैर्विना न हि भवन्ति समीहितार्थाः ॥ ४ ॥

प्रारभ्यते भुवि बुधेन धियाधिगम्य
तत्कर्म येन जगतोऽपि सुखोदयः स्यात् ।

कृष्यादिकं पुनरिदं विदधासि यस्त्वं
तस्यापि रे विपुलदु:खफलं न किं तत् ॥ ५ ॥
एह्येहि याहि सर निस्सर वारितोऽसि
मा मन्दिरं नरपतेर्विश रे विशङ्कम् ।
इत्यादिसेवनफलं प्रथमं लभन्ते
लब्ध्वापि सा यदि चला सफला कथं श्रीः ॥ ६ ॥
वार्तापि किम तव कर्णमुपागतेयं
पात्रे रतिं स्थिरतया न गता कदाचित् ।
चापल्यतोऽपि जितसर्वनितम्बिनीश्री-
स्तस्या कथं बत कृती विदधाति सङ्गम् ॥ ७ ॥
प्रणमत्युन्नतिहेतोर्जीवितहेतोर्विमुञ्चति प्राणान् ।
दुःखी यदि सुखहेतो को मूर्खस्सेवकादपर ॥ ८ ॥
रत्नार्थिनी यदि कथं जलधिं विमुञ्चेत्
रूपार्थिनी यदि च पंचशरं कथं वा ।
दिव्योपभोगनिरता यदि नैव शक्रं
कृष्णाश्रया गवगता न गुणार्थिनी श्रीः ॥ ९ ॥
सत्त्वाधिकोऽपि सुमहानपि शीतलोऽपि
मुक्तः श्रिया चपलया जलधिर्यथेह ।
तस्याः कृते कथममी कृतिनोऽपि लोकाः
क्लेशज्वलज्ज्वलनमाशु विशन्ति केचित् ॥ १० ॥
सत्यं समस्तसुखमस्पमिहेहितार्थै-
रीहापि ते न तव तेषु सखेति वेषि ।

तेषां यदर्जनवियोगजदुःखजाल
तस्यावधिं बहुधियापि न हन्त वेद्मि ॥ ११ ॥
निर्वादमादिरहितं विधुताघसंघं
यद्यस्ति नापरमपारममारसौख्यम् ।
एवंविधेऽपि मतिमान्नपि शर्मणीत्थं
बुद्धिङ्करो तु पुरुषो वद कोऽत्र दोषः ॥ १ २
आस्तां समस्तमुनिसंस्तुतमस्तमोहं
सौख्यं सखे ! विगतखेदमसंख्यमेतत् ।
निस्सङ्गिनां प्रशमजं यदिहापि जातं
तस्यांशतोऽपि सदृशं सरजं न जातु ॥ १३ ॥

अनन्तसुखविघ्न ।

अज्ञाननामतिमिरप्रसरोयमन्तः
सन्दर्शिताखिलपदार्थविपर्य्ययात्मा ।
मंत्री स मोहनृपतेः स्फुरतीह याव-
त्तावत्कुतस्तव शिवं तदुपायता वा ॥ १४ ॥

शरीरं ।

किञ्चाशुचौ शुचिसुगन्धिरसादिवस्तु
यस्मिन् गतं नरकतां समुपैति सद्यः ।
रंरम्यते तदपि मोहवशाच्छरीरं
सर्वैरहो विजयते महिमा परोऽस्य ॥ १५
अज्ञानघोरसरिदम्बुनिपातमूर्त्ति-
दुर्मोचमोहगुरुकर्दमदूरमग्नं ।
जन्मान्तकादिमकरैरुरुगृह्यमाणं
विश्वं निरीशमवशं सहतेऽतिदुःखम् ॥ १६ ॥

अज्ञानी।

अज्ञानमोहमदिरां परिपीय मुग्ध !
हे हन्त हन्ति परिवल्गति जल्पतीष्टम् ।
पश्येदशं जगदिद् पतितं पुरस्ते
किन्वूर्ध्वसे स्वमपि बालिश ! तादृशोऽपि ॥ १७ ॥
चक्खुं सदसण सय सागे सप्यहि दोसपरिहारीणं ।
चक्खु होइ णिरन्दो दट्ठूणमिलयडीसंस ? ॥ १८ ॥
वैरी ममायमहमस्य कृतोपकार
इत्यादिदुःखघनपावकपच्यमानं।
लोकं विलोक्य न मनागपि कम्पसे त्वं
कन्द कुरुष्व वद सारद ! कुर्वसे किम् ॥ १९ ॥
नो जीयते जगति केनचिदेष मोह
इत्याकुलः किमसि सम्प्रति रे वयस्य ! ।
एकोऽपि कोऽपि पुरत स्थितमत्रुसैन्यं
सत्वाधिको जयति शोचसि किं मुधा त्वम् ॥ २० ॥
मुक्त्वालसत्वमधिसत्वबलोपपन्नः
भुत्वा परात्म समतां कुलदेवतां त्वम् ।
संज्ञानचक्रमिदमङ्ग ! गृहाण तूर्ण–
मज्ञानमन्त्रियुतमोहरिपूपमर्दि ॥ २१ ॥
सत्यं हि केवलमलं फलतीष्टसिद्धिं
युक्तं यया समतया यदि क परस्ते ।
एकद्वयेन सहितं यदि बोधरत्न–
मेकस्त्वमेव पतिरङ्ग ! चराचराणाम् ॥ २२ ॥

मल्लो न यस्य भुवनेऽपि समोऽस्ति सोऽयं
काम: करोति विकृतिं तव तावदेव ।
यावन्न यासि शरणं चरणं समन्तात्
सोपानतामुपगतां शिवसौधभूमेः ॥ २३ ॥

कालत्रयेऽपि भुवनत्रयवर्त्तमान–
सत्वप्रमाथिमदनादिमहारयोऽमी ।
पश्याशु नाशमुपयान्ति दृशैव यस्याः
सा सम्मता ननु सतां समतैव देवी ॥ २४ ॥

चारित्रम् ।

वाञ्छा सुखे यदि सखे! तदवैमि नाहं
धर्माद्धृते भवति सोऽपि न यावदेते ।
रागादयस्तदसनं समता त एव
तस्माद्विधेहि हृदि तां सततं सुखाय ॥ २५ ॥

समतामृत ।

ज्वालायमानमदनानलपुञ्जमध्ये
विश्वं कथं कथति कोऽपि कुतूहलेन ।
कस्मिन्नपीह समसौख्यमया हिमानी–
मध्यासते यतिवराः समताप्रसादात् ॥ २६ ॥

मैत्री कृपा प्रमुदिता सुभगाङ्गनानां
शुभ्राभ्रसन्निभमनःसदने निवासम् ।
त्वं देहि ता हि समताभिमताः समीत्वा–
देवं न कोऽपि भुवनेऽपि तवास्ति शत्रुः ॥ २७ ॥

तत्साम्यभावगिरिगह्वरमध्यमेत्य
पद्मासनादिकमदोपमिदं च बद्ध्वा ।
आत्मानमात्मनि सखे ! परमात्मरूपं
त्वं ध्याय वेत्सि ननु येन सुखं समाधेः ॥ २८ ॥

आत्माराधना ।

आराध्य धीर ! चरणौ सततं गुरूणां
लब्ध्वा ततो दशममार्गवरोपदेशम् ।
तस्मिन्निधेहि मनसः स्थिरतां प्रयत्नात्
क्षोभं प्रयाति तव येन भवापगेयम् ॥ २९ ॥

फलम् ।

नित्यं निरामयमनन्तमनादिमध्य-
मर्हन्तमूर्जितमज स्मरतो हृदीशम् ।
नाशं न याति यदि जातिजराधिकं ते
तर्हि भ्रमः कथमयं न भवा मुनीनाम् ॥ ३   ॥
क्षीराम्बुराशिसदृशांशु यदीयरूप-
माराध्यसिद्धिमुपयान्ति तपोधनास्त्वं ।
हृद्ये स्वहंसहरिविष्टरसन्निविष्ट-
मर्हन्तमक्षरमिदं स्मर कर्ममुक्त्यै ॥ ३१ ॥

पदस्थः ।

यं निष्कलं सकलमक्षयकेवलं वा
सन्तः स्तुवन्ति सततं समभावभाजः ।
वाच्यस्य तस्य वरवाचकमन्त्रयुक्तो
हे पान्थ ! शाश्वतपुरीं विश निर्विशङ्कः ॥ ३२ ॥

यन्न्यासतः स्फुरति कोऽपि हृदि प्रकाशो
वाग्देवता च वदने पदमादधाति ।
लब्ध्वा तदक्षरवर गुरुसेवया त्वं
मा मा कृथाः कथमपीह विराममस्मात् ॥ ३३ ॥

यावत् समस्ततिरियं सरतीह तावत्
तावच्च रे चरसि ही रजसि त्वमेव ।
यावत्स्वशर्मनिकरामृतवारिवर्षं
न हँहिमांशुरुदयं न करोति तेऽन्तः ॥ ३४ ।

हँमन्त्रसारमतिभास्वरधामपुंजं
सम्पूज्य पूजिततमं जपसंयमस्थः ।
नित्याभिराममविराममपारसारं
यद्यस्ति ते शिवसुखं प्रति सम्प्रतीच्छा ॥ ३५ ॥

द्वैकाक्षरं निगदितं ननु पिण्डरूपं
तस्यापि मूलमपरं परमं रहस्यम् ।
वक्ष्यामि ते गुरुपरम्परया प्रयातं
यन्नाहतं ध्वनति त[द्व]त्तदनाहताख्यम् ॥ ३६ ॥

अस्मिन्ननाहतविले विलपेन मुक्ते
नित्ये निरामयपदे स्वमनो निधाय ।
त्वं याहि योगशयनीयतलं सुखाय
श्रान्तोऽसि चेद्भवपथभ्रमणेन गाढम् ॥ ३७ ॥

लोकालोकविलोकनैकनयनं यद्वाच्ययं तस्य या
मूलं बालमृणालनालसदृशीमात्रां सदा तां सतीं ।

स्मारं स्मारममन्दमन्दमनसा स्फारप्रभाभासुरां
संसारार्णवपारमेति तरसात् किं त्वं वृथा ताम्यसि ॥३८

धर्म्यध्यानं ।

अन्याम्भोधिनिपातभीतमनसां शश्वत्सुखं वाञ्छतां
धर्म्यध्यानमवादि साक्षरमिदं किञ्चित् कथंचिन्मया ।
सूक्ष्मं किञ्चिदतस्तदेव विधिना नालम्बनं कथ्यते
भ्रूमध्यादिकदेशसंगतमुते देवैः परैः किंचन ॥३९॥

भजसि मनसि मोहं चञ्चलं तावदेवं
बहुगुणगणगण्यं मन्यसेऽन्यच्च देवं ।
गुरुवचननियोगाभ्यासे यावदेवं
शशधरकरगौरं बिन्दुदेवं स्फुरन्तम् ॥ ४० ॥

बिन्दुप्रदेशे आराधनाफलम् ।

झटिति करणयोगाद्धीयते भ्रूयुगान्ते
भजति यदि मनस्ते बिन्दुदेवे स्थिरत्वम् ।
त्रुटति निबिडबन्धो बन्धतामेति मुक्तिः
सदलममलशीले योगनिद्रां भजस्व ॥ ४१ ॥

पवन-ब्रह्ममूलाधारत्वम् ।

सरलविमलनालीद्वारमूले मनस्त्वं
कुरु सरति यतोऽस्य प्रसर प्राणवायुः ।
परिहृतपरनालीसुम्नमार्गप्रयाणः
दलितमसदलौघः केवलज्ञानहेतुः ॥ ४२ ॥

मूलाधारतापथा ।

विलसदलमतारस्तीव्रकर्मोदयाद्वा
सरलविमलनालीरन्ध्रमप्राप्तलोकः ।

अहह कथमसह्यं दुःखजालं विशालं
सहति महति नैवाचार्यमज्ञस्तदर्थम् ॥ ४३ ॥

अनाहताराधना ।

रसरुधिरपलास्थिस्नायुशुक्रप्रमेद-
प्रचुरतरसमीरश्लेष्मपित्तादिपूर्णे ।
तनुनरककुटीरे वासतस्ते घृणा चेद्
हृदयकमलगर्भे चिन्तय स्वं परोऽसि ॥ ४४ ॥

व्यक्तानन ।

अजममरममेयं ज्ञानदृग्वीर्यशर्मा-
स्पदमविपदमिष्टं स्वस्वरूपं यदि त्वं ।
कुरु हृदयनभोन्तर्मानसं निर्विकल्पं
वपुषि विषमरोगे नश्वरे मा रमस्व ॥ ४५ ॥

अपरानाहता ।

अपरमपि विधानं दामकामादिकानां
दुतविदुरविधानं धर्मता लभ्यते यत् ।
तदहमिह समस्तादंहसां मुक्तये ते
हितपथपथिकेदं क्षिप्रमावेदयामि ॥ ४६ ॥

नादानाहताराधनातत्फलम् ।

श्रवणयुगलमूलाकाशमासाद्य सद्यः
स्वपिहि पिहितमुक्तस्वान्तसद्वारसारे ।
विमलसदलयोगानल्पतल्पे ततस्त्वं
स्फुरितसकलतत्त्वं श्रोष्यसि स्वस्य नादम् ॥ ४७ ॥

मादोत्पत्तिकालभावमेवनिरूपणम् ।

श्रवघरकुलमोजिह्वादशार्द्धेद्विपक्
प्रमितविदितमासे भव्यरूपप्रदर्शी ।
मदकलपरपुष्टांम्भोदनघम्बुराशि-
ध्वनिसदक्षरवत्वाज्जायते सा चतुर्था ॥ ४८ ॥

मादोत्पत्तिस्थानम् ।

श्रवणयुगलमध्ये मस्तके वक्षसि स्वे
भवति भवनमेषां मापितानां त्रयाणां ।
विपुलफलमिहैभोत्पद्यते भव्यतेभ्य
स्तदपि शृणु मया त्वं कथ्यमानं हि तथ्यम् ॥४९॥

तत्फलम् ।

अमरसदृशकेर्ध मस्तके दूरदृष्टि
र्वपुरजरमरोगं मूलनादप्रसिद्धेः ।
अणुलघुमहिमाद्याः सिद्धयः स्युर्द्वितीयात्
सुरनरखचरेशां सम्पदस्त्वान्यभेदात् ॥ ५० ॥

चतुर्थभेदोत्पत्तिः ।

करशिरसि नितम्बे नाभिबिम्बे च कर्णे
प्रभवति घनघोषाम्भोगिनिर्घोषतुल्यः ।
विघटयति कपाटं द्वन्द्वमद्वन्द्वसिद्धा
स्पदघनितमघौघध्वंसकोयं चतुर्थ ॥ ५१ ॥

नादाकर्षनं ।

प्रकटितनिजरूप मोपमाकर्ण्य रम्यं
परिहरत नितान्त विस्मयं हो यतीन्द्रा ! ।

कुरुत कुरुत यूयं योगयुक्तं स्वचित्तं
तृणजललवतुल्यैः किमफलैः क्षौद्रसिद्ध्यै ॥५२॥

फलम् ।

सकलदृगयमेकः केवलज्ञानरूपो
विदधति पदमस्मिन्साधवः सिद्धिसिद्ध्यै ।
तदलममुमनूनं नादमाराध्य सम्यक्
त्वमपि भव शुभात्मा सिद्धिसीमन्तिनीशः ॥ ५३ ॥

ज्योतिरनाहतम् ।

बहिरबहिरुदारज्योतिरुल्लासदीपः
स्फुरति यदि तवायं नाभिपद्मे स्थितस्य ।
अपसरति तदानीं मोहघोरान्धकार-
श्चरणकरणदक्षो मोक्षलक्ष्मीदिदृक्षोः ॥ ५४ ॥

धर्मध्यानोपसंहारः ।

इति निगदितमेतद्देशमाश्रित्य किञ्चित्
गुरुसमयनियोगात्प्रत्ययस्यापि हेतोः ।
परमपरमुदारज्ञानमानन्दतानं
विमलसकलमेकं सम्यगो(गे) कः समस्ति ॥ ५५ ॥

गुरुपरम्परोपदेशः ।

प्रथममुदितमुक्तेनादिदेवेन दिव्यं
तदनु गणधराद्यैः साधुभिर्यद्धृतं च ।
कथितमपि कथञ्चिन्नादिगम्यं समोहै-
रधिगतमपि नश्यत्याशु सिध्या विनेह ॥ ५६ ॥

मोक्षोपदेशः ।

स्वरनिकरविसर्गव्यञ्जनाद्यक्षरैर्यद्
रहितमहितहीनं शाश्वतं मुक्तसंख्यम् ।
अरसतिमिररूपस्पर्शगन्धाम्बुवायु
क्षितिपवनसखाणुस्थूलदिक्चक्रवालम् ॥ ५७ ॥
ज्वरजननजराणां वेदना यत्र नास्ति
परिभवति न मृत्युर्नागतिर्नो गतिर्वा ।
तदतिविशदचित्तैर्लभ्यतेऽङ्गेऽपि तत्त्वं
गुणगुरुगुरुपादाम्भोजसेवाप्रसादात् ॥ ५८ ॥

गुरुसेवा ।

गिरिगहनगुहाद्यारण्यशून्यप्रदेश
स्थितिकरणनिरोधध्यानतीर्थोपसेवा ।
प्रपठनजपहोमैर्ब्रह्मणो नास्ति सिद्धि
र्मृगय तदपरं त्वं भोः प्रकारं गुरुभ्य ॥ ५९ ॥
दृगवगमनलक्ष्यं स्वस्य तत्त्वं समन्ता
द्गतमपि निजदेहे देहिभिर्नोपलक्ष्यम् ।
तदपि गुरुवचोभिर्बोध्यते तेन देवो
गुरुरधिगततत्त्वस्तत्त्वतः पूजनीय ॥ ६ ॥

विद्यानन्द अभिमतफलसिद्धेः

इत्यादि विद्यानन्दस्वामिभिरप्युक्तम् ।

अभिमतफलसिद्धेरभ्युपाय सुबोध
प्रभवति स च शास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात् ।
इह भवति स पूज्यस्तत्प्रसादप्रबुद्धे
न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥ ६१ ॥

स्वस्मिन् सदभिलाषत्वादभीष्टज्ञापकत्वतः
स्वयं हि तत्प्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः ॥ ६२ ॥

मोक्षमार्गं ।

दृगवगमनवृत्तस्वस्वरूपप्रविष्टो
व्रजति जलधिकल्पं ब्रह्मगम्भीरभावं ।
त्वमपि सुनयमत्वान्मद्वचस्सारमस्मिन्
भवसि भव भवान्तस्थायिधामाधिपस्त्वम् ॥ ६३ ॥

यदि चलति कथञ्चिन्मानसं स्वस्वरूपा-
द्भ्रमति बहिरतस्ते सर्वदोषप्रसङ्गः ।
तदनवरतमन्तर्मग्नसंविग्नचित्तो
भव भवसि भवान्तस्थायिधामाधिपस्त्वम् ॥ ६४ ॥

उक्तम् ।

अहिंसाभूतानामित्यादिसमन्तभद्रवचनम् ।

शरीरनिर्म्मोह ।

बहिरबहिरसारे दुःखभारे शरीरे
क्षयिणि बत रमन्ते मोहिनोऽस्मिन् वराकाः ।
इति यदि तव बुद्धिर्निर्विकल्पस्वरूपे
भव भवसि भवान्तस्थायिधामाधिपस्त्वम् ॥ ६५ ॥

अजङ्गमजङ्गमयो रागाद्युत्पत्तिहेतु ।

इदमिदमतिरम्यं नेदमित्यादिभेदा-
द्विदधति पदमेते रागरोषादयस्ते ।

सदलममलमेकं निष्कलं निष्क्रियस्तन्
भज भजसि समाधेः सत्फलं येन नित्यम् ॥ ६६ ॥

यथासिद्धान्ताचार्यैरुक्तम् ।

यावत्क्रिया प्रवर्तन्ते यावद्द्वैतस्य गोचरं ।
अद्वये निष्कले प्राप्ते निष्क्रियस्य कुतः क्रिया ॥ ६७ ॥

बन्धमोक्षौ ।

अहमहमिह भावाद्भावना यावदन्त-
र्भवति भवति बन्धस्तावदेषोऽपि नित्य ।
क्षणिकमिदमशेषं विश्वमालोक्य तस्मा-
द्व्रज शरणमबन्ध्यं शान्तये त्वं समाधेः ॥६८॥

नकर्मकेवलत्वम् ।

साहंकारे मनसि न समं याति जन्मप्रबन्धो
नाहंकारश्चलति हृदयादात्मदृष्टा(ष्टौ) च सत्यां ।
अन्यः शास्ता जगति च यतो नास्ति नैरात्म्यवादी
नान्यस्तस्मादुपशमविधेस्त्वन्मतादस्ति मार्गः ॥६९॥
रविरयमथवि(मि)न्दुर्द्योतयन्तौ पदार्थान्
विलसति सति यस्मिन्भासती भीतु ! भाव ।
तदपि बत ! हतात्मा ज्ञानपुञ्जेऽपि तस्मिन्
व्रजसि महति मोहं हेतुना येन कश्चित् ॥७०॥

कुमतमनयाप्यस्थिताय ।

ये लोकं ज्वलयन्त्यनल्पमहिमा सोऽप्येष तेजोनिधि-
र्यस्मिन् सत्यवभाति नाभाति पुनर्देवोंऽशुमाली स्वयं ।

तस्मिन् बोधमयप्रकाशविशदे मोहान्धकारापहे
येऽन्तर्यामिनि पूरुषे प्रतिहताः संशेरते ते हताः॥७१॥

आत्मपरिज्ञानम् ।

करणजनितबुद्धिर्नेक्षते मूर्त्तिमुक्तं
श्रुतजनितमतिर्यास्पष्टमेयावभासा ।
उभयमतिनिरोधे स्पष्टमत्यक्षमक्षं
समदिवसनिवासं शाश्वतं लप्स्यसे त्वम् ॥७२॥

प्राणापानप्रयाणः कफपवनभवव्याद(ध)यस्तावदेते-
स्पन्दद्दष्टेश्च तावत्तव चपलतया न स्थिराणीन्द्रियाणि ।
भोगा ये (ए) ते च भोक्ता त्वमपि भवसि हे हेलया यावदन्तः
साधो ! साधूपदेशाद्विशसि न परमब्रह्मणो निष्कलस्य॥७३॥

निर्विकल्पसमाधिः ।

ब्रह्मांडं यस्य मध्ये महदपि सदृशं दृश्यते रेणुनेदं
तस्मिन्नाकाशरन्ध्रे निरवधिनि मनो दूरमायोज्य सम्यक् ।
तेजोराशौ परेऽस्मिन्परिहृतसदसद्वृत्तितो लब्धलक्ष्यां
हे दक्षाध्यक्षरूपे भव भवसि भवाम्भोधिपारावलोकी॥७४॥

संसारसारकर्मप्रचुरतरमरुत्प्रेक्षणाद्भ्राम्य भ्रात-
ब्रह्मांडखण्डे नवनवकुवपुर्गृह्णता मुञ्चता च ।
कस्कः कौतस्कुतः क्वचिदपि विषयो न भुक्तो यो न मुक्तो
जातेदानीं विरक्तिस्तव यदि विश रे ब्रह्मगम्भीर-
सिन्धुम् ॥७५॥

बहिरात्मस्वरूपम् ।

पारावारोऽतिपारः सुगिरिरुरयं रे वरं तीर्थमेतद्
रेवारङ्गत्तरङ्गसुरसरिदपरा रेवतीशो हरिर्वा ।

इत्युद्भ्रान्तान्तरात्मा भ्रमति बहुतरं तावदात्मात्मभुक्त्यै
यावद्देहेऽपि देहे स्थितिमितिरहितमसमशुद्धं न पश्येत् ॥७६॥

संसारसुखादेरनित्यम् ।

चित्ते विश्वम्भरेशाः शिरसि मम पदाम्भोजयुग्मं दधन्ते
वक्त्रा भावस्य लक्ष्मीर्वपुरपि निरघं विघ्नहेतुः कुतो मे ।
इत्यादौ धर्महेतौ निपतति निखिले किं ततो मुद्गरोऽस्मत्
तस्मात्तदुपाय किञ्चित् स्थिरतरमनसा किं ततो यत्र नास्ते ॥७७॥

दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किं
याता श्रियः सकलकामदुघास्ततः किम् ।
सन्तर्पिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं
कल्पस्थितिं तनुभृतां तनुभिस्ततः किम् ॥७८॥

धर्मोपदेशः ।

तस्मादनन्तमजरं परमप्रकाशं
तच्चित्त ! चिन्तय किमेभिरसद्विकल्पैः ।
यस्यानुषङ्गिण इमे भुवनाधिपत्य–
भोगादयः कृपणजन्तुमता भवन्ति ॥७९॥

उपशमफलाद्विद्याबीजात् फलं परमिच्छतां ।
भवति विपुलो यद्यायासस्तदत्र किमद्भुतम् ॥८०॥

न नियतफलाः सर्वे भावाः फलान्तरमिष्यते ।
जनयति खलु व्रीहेर्बीजं न जातु यवाङ्कुरम् ॥८१॥

उपसंहार ।

चञ्चच्चन्द्रोरुरोचिरुचिरतरवचःक्षीरनीरप्रवाहे
मज्जन्तोऽपि प्रमोदं परमपरनरा संगिनोगुर्यदीये
योगज्वालायमानज्वलदनलशिखाक्लेशवल्लीविहोता
योगीन्द्रो वः सचन्द्रप्रभविभुरविभुर्मङ्गलं सर्वकालम्॥८२॥

इति योगीन्द्रदेवकृतामृताशीतिः समाप्ता ।

भद्रम्भूयात् ।

श्रीशिवकोट्याचार्यविरचिता

रत्नमाला ।



सर्वज्ञं सर्ववागीशं वीरं मारमदापहं ।
प्रणमामि महामोहशान्तये मुक्तताप्तये ॥१॥
सारं यत्सर्वसारेषु वन्द्यं यद्वन्दितेष्वपि ।
अनेकान्तमयं वन्दे तदर्हद्वचनं सदा ॥२॥
सदावदातमहिमा सदा ध्यानपरायणः ।
सिद्धसेनमुनिर्जीयाद्भट्टारकपदेश्वरः ॥३॥
स्वामी समन्तभद्रो मेऽहर्निशं मानसेऽनघः ।
तिष्ठताज्जिनराजोद्यच्छासनाम्बुधिचन्द्रमाः ॥४॥
वर्द्धमानजिनाभावाद्भारते भव्यजन्तवः ।
कृतेन येन राजन्ते तदहं कथयामि वः ॥५॥
सम्यक्त्वं सर्वजन्तूनां श्रेयः श्रेयःपदार्थिनां ।
विना तेन व्रतः सर्वोऽप्यकल्प्यो मुक्तिहेतवे ॥६॥
निर्विकल्पश्चिदानन्दः परमेष्ठी सनातनः ।
दोषातीतो जिनो देवस्तदुपज्ञः श्रुतिः परा ॥७॥
निरम्बरो निरारम्भो नित्यानन्दपदार्थिनः ।
धर्मदिक्कर्मधिक् साधुर्गुरुरित्युच्यते बुधैः ॥८॥
अमीषां पुण्यहेतूनां श्रद्धानं तन्निगद्यते ।
तदेव परमं तत्त्वं तदेव परमं पदम् ॥९॥

विरत्या संयमेनापि हीनः सम्यक्त्ववान्नरः।
स देवं याति कर्माणि शीर्णयत्येव सर्वदा ॥१०॥

अबद्धायुष्कपक्षे तु नोत्पत्तिः सप्तभूमिषु।
मिथ्योपपादत्रितये सर्वस्त्रीषु च नान्यथा ॥११॥

महाव्रताणुव्रतयोरुपलब्धिर्निरीक्षते।
स्वर्गेऽन्यत्र न सम्भाव्यो व्रतलेशोऽपि धीधनैः ॥१२॥

संवेगादिपरः शान्तस्तत्वनिश्चयवान्नर ।
जन्तुर्जन्मजरातीतः पदवीमवगाहते ॥१३॥

अणुव्रतानि पञ्चैव त्रिप्रकारं गुणव्रतं।
शिक्षाव्रतानि चत्वारीत्येवं द्वादशधा व्रतम् ॥१४॥

हिंसातोऽसत्यतश्चौर्यात् परनार्याः परिग्रहात्।
विमतेर्विरतिः पञ्चाणुव्रतानि गृहेशिनाम् ॥१५॥

गुणव्रतानामाद्यं स्याद्दिग्व्रतं तद्द्वितीयकम्।
अनर्थदण्डविरतिस्तृतीयं प्रणिगद्यते ॥१६॥

भोगोपभोगसंख्यानं शिक्षाव्रतमिदं भवेत्।
सामायिकं प्रोषधोपवासोऽतिथिषु पूजनम् ॥१७॥

मारणान्तिकसंल्लेख इत्येवं तच्चतुष्टयं।
देहिनः स्वर्गमोक्षैकसाधनं निश्चितक्रमम् ॥१८॥

मद्यमांसमधुत्यागसंयुक्ताणुव्रतानि नुः।
अष्टौ मूलगुणाः पञ्चोदुम्बरैश्चार्भकेष्वपि ॥१९॥

वस्त्रपूतं जलं पेयमन्यथा पापकारणं।
स्नानेऽपि शोधनं वारः करणीयं दयापरैः ॥२०॥

श्रीशिवकोट्याचार्यविरचिता

रत्नमाला ।



सर्वज्ञं सर्ववागीशं वीरं मारमदापहं ।
प्रणमामि महामोहशान्तये मुक्तवाप्तये ॥१॥

सारं यत्सर्वसारेषु वन्द्यं यद्वन्दितेष्वपि ।
अनेकान्तमयं वन्दे तदर्हद्वचनं सदा ॥२॥

सदावदातमहिमा सदा ध्यानपरायण ।
सिद्धसेनमुनिर्जीयाद्भट्टारकपदेश्वर ॥३॥

स्वामी समन्तभद्रो मेऽहर्निशं मानसेऽनघः ।
तिष्ठताज्जिनराजोद्यच्छासनाम्बुधिचन्द्रमाः ॥४॥

वर्द्धमानजिनाधावाङ्गारतं भव्यजन्तवः ।
कृतं येन राजन्ते तदहं कथयामि व ॥५॥

सम्यक्त्वं सर्वजन्तूनां श्रेयः श्रेयःपदार्थिनां ।
विना तेन व्रत सर्वोऽप्यकल्प्यो मुक्तिहेतवे ॥६॥

निर्विकल्पश्चिदानन्दः परमेष्ठी सनातन ।
दोषातीतो जिनो देवस्तदुपज्ञ श्रुतिः परा ॥७॥

निरम्बरो निरारम्भो नित्यानन्दपदार्थनः ।
धर्मदिक्कर्मधिक् साधुर्गुरुरित्युच्यते बुधैः ? ॥८॥

अमीषां पुण्यहेतूनां श्रद्धानं तन्निगद्यते ।
तदेव परमं तत्त्वं तदेव परमं पदम् ॥९॥

मनोवचनकायैर्यो न जिघांसति देहिनः ।
स स्याद्गजादियुद्धेषु जयलक्ष्मीनिकेतनम् ॥३२॥
सुस्वरस्पष्टवागीष्टमतव्याख्यानदक्षिणः ।
क्षणार्द्धनिर्जितारातिरसत्यविरतेर्भवेत् ॥३३॥
चतुःसागरसीमाया भुवः स्यादधिपो नरः ।
परद्रव्यपरावृत्तः सुवृत्तोपार्ज्जितस्वकः ॥३४॥
मातृपुत्रीभगिन्यादिसंकल्पं परयोपिति ।
तन्वानः कामदेवः स्यान्मोक्षस्यापि च भाजनम् ॥३५॥
जायाः समग्रशोभाद्याः सम्पदो जगतीतले ।
तास्तत्सर्वा अपि प्रायः परकान्ताविवर्ज्जनात् ॥ ३६ ॥
अतिकांक्षा हता येन ततस्तेन भवस्थितिः ।
ह्रस्विता निश्चिता वास्य कैवल्यसुखसङ्गतिः ॥३७॥
मद्यमांसमधुत्यागफलं केनानुवर्ण्यते ।
काकमांसनिवृत्याभूत्स्वर्गे खदिरसागरः ॥३८॥
मद्यस्यावद्यमूलस्य सेवनं पापकारणं ।
परत्रास्तामिहाप्युच्चैर्जननीं वांछयेदरम् ॥३९॥
गम्मुतोऽशुचिवस्तूनामप्यादाय रसान्तरम् ।
मधूयन्ति[1] कथं तन्नापविपत्रं पुण्यकर्मसु ॥४०॥
व्यसनानि प्रवर्ज्यानि नरेण सुधियाऽन्वहं ।
सेवितान्यादृतानि स्युर्नरकायाश्रियेऽपि च ॥४१॥
छत्रचामरवाजीभरथपादातिसंयुतः ।
विराजन्ते नरा यत्र ते रात्र्याहारवर्जिनः ॥४२॥

१ 'मदयन्ति' ऐसा पाठ पुस्तकमें दिया है।

प्रतिमाः पालनीयाः स्युरेकादश गृहेशिनां ।
अपवर्गाधिरोहाय सोपानन्तीह ताः परा ॥२१॥
कलौ काले वने वासो वर्ज्यते मुनिसत्तमैः ।
स्थीयते च जिनागारे ग्रामादिषु विशेषतः ॥२२॥
तेषां नैर्ग्रन्थ्यपूतानां मूलोत्तरगुणार्थिनां ।
नानाप्रतिनिकायानां छद्मस्थज्ञानराजिनाम् ॥२३॥
ज्ञानसंयमशौचादिहेतूनां प्रासुकात्मनां ।
पुस्तपिच्छकमुख्यानां दानं दातुर्विमुक्तये ॥ २४ ॥
येनाथकाले यतीनां वैयावृत्त्यं कृतं मुदा ।
तेनैव शासनं जैनं प्रोद्धृतं शर्म्मकारणम् ॥२५॥
उत्तुंगतोरणोपेतं चैत्यागारमघक्षयं ।
कर्त्तव्यं श्रावकैः शक्त्यामरादिकमपि स्फुटम् ॥२६॥
येन श्रीमज्जिनेशस्य चैत्यागारमनिन्दितं ।
कारितं तेन भव्येन स्थापितं जिनशासनम् ॥२७॥
गोभूमिस्वर्णकच्छादिदानं वसतयेऽर्हतां ।
कर्त्तव्यं जीर्णचैत्यादिसमुद्धरणमप्यदः ॥२८॥
सिद्धान्ताचारशास्त्रेषु वाच्यमानेषु भक्तितः ।
धनव्ययो व्ययो नूनं जायतेऽत्र महर्द्धये ॥२९॥
दयादत्त्यादिभिर्नूनं धर्म्मसन्तानमुद्धरेत् ।
दीनानाथानपि प्राप्तान्विमुखानैव कल्पयेत् ॥३०॥
व्रतशीलानि यान्येव रक्षणीयानि सर्वदा ।
एकैकेनैव जायन्ते देहिनां दिव्यसिद्धये ॥३१॥

मनोवचनकायैर्यो न जिघांसति देहिनः ।
स स्याद्गजादियुद्धेपु जयलक्ष्मीनिकेतनम् ॥३२॥
सुस्वरस्पष्टवागीष्टमतव्याख्यानदक्षिणः ।
क्षणार्द्धनिर्जितारातिरसत्यविरतेर्भवेत् ॥३३॥
चतुःसागरसीमाया भुवः स्यादधिपो नरः ।
परद्रव्यपरावृत्तः सुवृत्तोपार्ज्जितस्वकः ॥३४॥
मातृपुत्रीभगिन्यादिसंकल्पं परयोपिति ।
तन्वानः कामदेवः स्यान्मोक्षस्यापि च भाजनम् ॥३५॥
जायाः समग्रशोभाद्याः सम्पदो जगतीतले ।
तास्तत्सर्वा अपि प्रायः परकान्ताविवर्ज्जनात् ॥ ३६ ॥
अतिकांक्षा हता येन ततस्तेन भवस्थितिः ।
ह्रस्विता निश्चिता वास्य कैवल्यसुखसङ्गतिः ॥३७॥
मद्यमांसमधुत्यागफलं केनानुवर्ण्यते ।
काकमांसनिवृत्याभूत्स्वर्गे खदिरसागरः ॥३८॥
मद्यस्यावद्यमूलस्य सेवनं पापकारणं ।
परत्रास्तामिहाप्युच्चैर्जननीं वांछयेदरम् ॥३९॥
गम्भुतोऽशुचिवस्तूनामप्यादाय रसान्तरम् ।
मधूयन्ति[1] कथं तन्नापविपत्रं पुण्यकर्मसु ॥४०॥
व्यसनानि प्रवर्ज्यानि नरेण सुधियाऽन्वहं ।
सेवितान्याहतानि स्युर्नरकायाश्रियेऽपि च ॥४१॥
छत्रचामरवाजीभरथपादातिसंयुतः ।
विराजन्ते नरा यत्र ते रात्र्याहारवर्जिनः ॥४२॥

१ 'मदयन्ति' ऐसा पाठ पुस्तकमें दिया है।

दहन्ति तं न नागाद्या न ग्रसन्ति च राक्षसा ।
न रोगाश्चापि जायन्ते य स्मरेन्मंत्रमव्ययम् ॥४३॥
रात्रौ स्मृतनमस्कार: सुप्त स्वप्नान् शुभाशुभान् ।
सत्यानेव समाप्नोति पुण्य च चिनुते परम् ॥४४॥
नित्यनैमित्तिका कार्य्या क्रिया श्रेयोर्थिना मुदा ।
श्रावकैर्गूढमनस्को यत्पुण्यपण्यसमाश्रय ॥४५॥
अष्टम्यां सिद्धभक्त्यामा श्रुतचारित्रशान्तय ।
भवन्ति भक्तयो नूनं साधूनामपि सम्मति ॥४६॥
पाक्षिक्य सिद्धचारित्रशान्तय शान्तिकारणं ।
त्रिकालवंदनायुक्ता पाक्षिक्यपि सतां मता ॥४७॥
चतुर्दश्यां तिथौ सिद्धचैत्यश्रुतसमन्विते ।
गुरुशान्तिनुते नित्य चैत्यपञ्चगुरू अपि ॥४८॥
नन्दीश्वरदिने सिद्धनन्दीश्वरगुरुस्थिता ।
शान्तिभक्तिः प्रकर्त्तव्या बलिपुष्पसमन्विता ॥४९॥
क्रियास्वन्यासु शास्त्रोक्तमार्गेण करणं मता।
कुर्वन्नेवं क्रियां जैनो गृहस्थाचार्य उच्यते ॥५०॥
चिदानन्दं परं ज्योति केवलज्ञानलक्षणं ।
आत्मानं सर्वदा ध्यायेदेतत्तत्त्वोत्तमं नृणाम् ॥५१॥
गार्हस्थ्यं बाह्यरूपेण पालयन्नन्तरात्मयुत् ।
मुच्यते न पुनर्दु:खयोनावपतति निश्चितम् ॥५२॥
कृतेन येन जीवस्य पुण्यबन्ध प्रजायते ।
तत्कर्त्तव्यं सदान्यत्र न कुर्य्यादतिकिल्बिषम् ॥५३॥

बौद्धचार्वाकसांख्यादिमिथ्यानयकुवादिनां ।
पोषणं माननं वापि दातुः पुण्याय नो भवेत् ॥५४॥
स्वकीया परकीया वा मर्यादालोपिनो नराः ।
न माननीयाः किं तेषां तपो वा श्रुतमेव च ॥५५॥
सुव्रतानि सुसंरक्षन्नित्यादिमहमुद्धरन् ।
सागारः पूज्यते देवैर्मान्यते च महात्मभिः ॥५६॥
अतीचारे व्रताद्येषु प्रायश्चित्तं गुरूदितं ।
आचरेज्जातिलोपं च न कुर्य्यादतियत्नतः ॥५७॥
श्रावकाध्ययनप्रोक्तकर्मणा गृहमेधिता ।
सम्मता सर्वजैनानां सा त्वन्या परिपन्थनात् ॥५८॥
पंचसूनाकृतं पापं यदेकत्र गृहाश्रमे ।
तत्सर्वमतये (ए?) वासौ दाता दानेन लुम्पति ॥ ५९ ॥
आहारभयभैषज्यशास्त्रदानादिभेदतः ।
चतुर्धा दानमाम्नातं जिनदेवेन योगिना ॥६०॥
मुहूर्त्तोद्गालितं तोयं प्रासुकं प्रहरद्वयं ।
उष्णोदकमहोरात्रं ततः सम्मूर्च्छितो भवेत् ॥६१॥
तिलतण्डुलतोयं च प्रासुकं भ्रामरीगृहे ।
न पानाय मतं तस्मान्मुखशुद्धिर्न जायते ॥६२॥
पाषाणोत्स्फुटितं तोयं घटीयंत्रेण ताडितं ।
सद्यः सन्तप्तवापीनां प्रासुकं जलमुच्यते ॥ ६३ ॥
देवर्षीणां प्रशौचाय स्नानाय च गृहार्थिनां ।
अप्रासुकं परं वारि महातीर्थजमप्यदः ॥ ६४ ॥

सर्वमेव विधिर्जैनः प्रमाणं लौकिकः सतां ।
यत्र न व्रतहानिः स्यात्सम्यक्त्वस्य च खंडनं ॥६५॥
चर्मपात्रगतं तोयं घृततैलं च वर्जयेत् ।
नवनीतं प्रसूनादिशाकं नाद्यात् कदाचन ॥६६॥
यो नित्यं पठति श्रीमान् रत्नमालामिमां परां ।
स शुद्धभावनो नूनं शिवकोटित्वमाप्नुयात् ॥६७॥

इति श्रीसमन्तभद्रस्वामिशिष्यशिवकोट्याचार्यविरचिता
रत्नमाला समाप्ता ।

अमृताशीतिः रत्नमाला चेति ग्रंथद्वयं केनचिदन्येन सम्पादितं भवतो। प्रेस पुस्तिका एव संप्राप्ता सा च शुद्धा—अतएवास्या अतीव आवश्यकता अतोऽत्र विषये ना आदर्शः संप्राप्ता भवन्ति तासु विषये क्षन्तव्योऽहं ।

श्रीमाघनन्दियोगीन्द्र–विरचितः

शास्त्रसारसमुच्चयः ।



श्रीमन्नम्रामरस्तोमं प्राप्तानन्तचतुष्टयम् ।
नत्वा जिनाधिपं वक्ष्ये शास्त्रसारसमुच्चयम् ॥ १ ॥

अथ त्रिविधः कालो द्विविधः षड्विधो वा ॥ १ ॥ दशविधाः कल्पद्रुमाः ॥ २ ॥ चतुर्दश कुलङ्करा इति ॥ ३ ॥ षोडशभावनाः ॥ ४ ॥ चतुर्विंशतितीर्थंकराः ॥ ५ ॥ चतुस्त्रिंशदतिशयाः ॥ ६ ॥ पंच महाकल्याणानि ॥ ७ ॥ घातिचतुष्टयम् ॥ ८ ॥ अष्टादश दोषाः ॥ ९ ॥ समवशरणैकादशभूमयः ॥ १० ॥ द्वादशगणाः ॥११॥ अष्टमहाप्रातिहार्याणि ॥१२॥ अनन्तचतुष्टयमिति ॥ १३॥ द्वादशचक्रवर्तिनः ॥१४॥ सप्ताङ्गानि ॥ १५॥ चतुर्दशरत्नानि ॥१६॥ नवनिधयः ॥१७॥ दशाङ्गभोगा इति ॥ १८ ॥ नवबलदेववासुदेवनारदाश्चेति ॥ १९ ॥ एकादशरुद्राः ॥ २० ॥

इति शास्त्रसारसमुच्चये प्रथमोऽध्याय ॥ १ ॥

अथ त्रिविधो लोकः ॥ १ ॥ सप्तनरकाः ॥ २ ॥ एकान्नपंचाशत्पटलानि ॥ ३ ॥ इन्द्रकाणि च ॥ ४॥ चतुरुत्तरषट्च्छतनवसहस्रं श्रेणिबद्धानि ॥ ५ ॥ सप्तचत्वारिंशदुत्तरात्रिंशताधिकनवतिसहस्रालंकृतत्र्यशीतिलक्षं विलानि प्रकीर्णकानि ॥६॥ एवं चतुरशीतिलक्षविलानि॥७॥चतुर्विधं दुःखमिति॥८॥ जम्बूद्वीप-

लवणसमुद्रादयोऽसंख्यातद्वीपसमुद्राः ॥९॥ तत्रार्धतृतीयद्वीपसमुद्रौ मनुष्यक्षेत्रम् ॥१०॥ षण्णवतिकुभोगभूमयः ॥११॥ पंचमन्दरगिरयः ॥१२॥ जम्बूवृक्षाः ॥१३॥ शाल्मलयश्च ॥१४॥ विंशतिर्यमकगिरयश्च ॥१५॥ शतं सरांसि ॥१६॥ सहस्रं कनकाचलाः ॥१७॥ चत्वारिं शद्दिग्गजनगाः ॥ १८ ॥ शतं वक्षारक्ष्माधराः ॥ १९ ॥ षष्टि विभंगनद्यः ॥ २० ॥ षष्ठ्युत्तरशतं विदेहजनपदाः ॥ २१ ॥ पंचदशकर्मभूमयः ॥ २२ ॥ त्रिंशद्भोगभूमयः ॥ २३ ॥ षड्विंशद्वर्षधरपर्वताः ॥ २४ ॥ त्रिंशत्सरोवराः ॥ २५ ॥ सप्ततिं महानद्यः ॥ २६ ॥ विंशतिर्नाभिभूधराः ॥ २७ ॥ सप्तत्यधिकशतं विजयार्धपर्वताः ॥२८॥ वृषभगिरयश्चेति ॥२९॥ देवाश्चतुर्णिकायाः ॥३०॥ भवनवासिनो दशविधाः ॥३१॥ अष्टविधा व्यन्तराः ॥३२॥ पंचविधा ज्योतिष्काः ॥ ३३ ॥ द्वादशविधा वैमानिकाः ॥३४॥ षोडशस्वर्गाः ॥३५॥ नवग्रैवेयकाः ॥३६॥ नवानुदिशाः ॥३७॥ पंचानुत्तराः ॥३८॥ त्रिषष्टिपटलानि ॥३९॥ इन्द्रकाणि च ॥४०॥ षोडशोत्तराष्टशतान्वितसप्तसहस्रं श्रेणिबद्धानि ॥ ४१ ॥ षट्चत्वारिंशदुत्तरैकशतान्वितनवत्यशीतिसहस्रलक्षचतुरशीतिलक्षं प्रकीर्णकानि ॥४२॥ त्रयोविंशत्युत्तरसप्तनवतिसहस्रान्वितचतुरशीतिलक्षमेवं विमानानि ॥४३॥ ब्रह्मलोकालयाश्चतुर्विंशतिलौकान्तिकाः ॥४४॥ अणिमाद्यष्टगुणाः ॥४५॥

इति शास्त्रसारसमुच्चये द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ पंचलब्धयः ॥१॥ करणं त्रिविधं ॥२॥ सम्यक्त्वं द्विविधम् ॥३॥ त्रिविधम् ॥४॥ दशविधं वा ॥५॥ तत्र वेदक

म्यक्त्वस्य पंचविंशतिर्मलानि ॥६॥ अष्टाङ्गानि ॥७॥ अष्टगुणाः ॥८॥ पंचातिचारा इति ॥९॥ एकादशनिलयाः ॥१०॥ त्रिविधो निर्वेगः ॥११॥ सप्त व्यसनानि ॥ १२ ॥ शल्यत्रयम् ॥ १३ ॥ अष्टौ मूलगुणाः ॥१४॥ पंचाणुव्रतानि॥१५॥ त्रीणि गुणव्रतानि ॥१६॥ शिक्षाव्रतानि चत्वारि॥१७॥व्रतशीलेषु पंच पंचातीचाराः ॥१८॥मौनेसमयाः सप्त॥१९॥अन्तेरायाणि च॥२०॥श्रावकधर्म-श्चतुर्विधः ॥२१॥ जैनाश्रमश्च ॥ २२ ॥ तत्र ब्रह्मचारिणः पंच-विधाः ॥ २३ ॥ आर्यकर्माणि षट् ॥ २४ ॥ इज्या दशविधाः ॥२५॥ अर्थोपार्जनकर्माणि षट् ॥२६॥ दत्तिश्चतुर्विधा ॥२७॥ क्षत्रियो द्विविधः ॥२८॥ भिक्षुश्चतुर्विधः ॥२९॥ मुनयस्त्रिविधाः ॥३०॥ ऋषयश्चतुर्विधाः ॥ ३१ ॥ राजर्षयो द्विविधाः ॥ ३२ ॥ ब्रह्मर्षयश्च ॥३३॥ मरणं द्वित्रिचतुःपंचविधं वा ॥ ३४ ॥ तस्य पंचातिचारा इति ॥ ३५ ॥ द्वादशानुप्रेक्षाः ॥ ३६॥ यतिधर्मो दशविधः ॥३७॥ अष्टाविंशतिर्मूलगुणाः ॥ ३८ ॥ पंचमहाव्रत-स्थैर्यार्थं भावनाः पंच पंच ॥ ३९ ॥ तिस्रो गुप्तयः ॥ ४० ॥ अष्टौ प्रवचनमातृकाः ॥४१॥ द्वाविंशतिपरीषहाः ॥४२॥ द्वाद-शविधं तपः ॥४३॥ दशविधानि प्रायश्चित्तानि ॥ ४४ ॥ आलो-चनं च ॥ ४५ ॥ चतुर्विधो विनयः ॥ ४६ ॥ दशविधानि वैयावृत्यानि ॥ ४७ ॥ पंचविधः स्वाध्यायः ॥ ४८ ॥ द्विविधो व्युत्सर्गः ॥ ४९ ॥ ध्यानं चतुर्विधम् ॥ ५० ॥ आर्त्त-

१ मौन सप्तस्थानमिति पाठान्तर क्वचित् । २ अन्तरायाश्चेत्यपि क्वचित्पाठ । ३–४ सूत्रद्वय कर्णाटवृत्तावेव । ५–६ इमौ शब्दौ कर्णाटटीकाया न स्त । ७ गुप्तित्रयमितिसूत्र टीकाया । ८–९ सूत्रद्वय टीकायामेव ।

रौद्रधमस्तुक्तं च ॥ ५१ ॥ धर्म्यं दशविधं वा ॥५२॥ अष्टर्द्धय ॥ ५३ ॥ बुद्धिरष्टादशविधा ॥ ५४ ॥ क्रिया द्विविधा ॥५५॥ विक्रियैकादशविधा ॥ ५६ ॥ तपः सप्तविधम् ॥ ५७॥ बलं त्रिविधं ॥ ५८ ॥ भेषजमष्टविधं ॥५९॥ रस षड्विधः ॥६०॥ अर्थाणार्द्धिर्द्विविधश्चेति ॥ ६१ ॥ चतुस्त्रिंशदुत्तरगुणा ॥ ६२ ॥ पञ्चविधा निर्ग्रन्था ॥ ६३ ॥ आचारश्च ॥ ६४ ॥ सामाचारं दशविधं ॥ ६५ ॥ सप्त परमस्थानानि ॥ ६६ ॥

इति धान्यसारसंग्रहे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

षड्द्रव्याणि ॥ १ ॥ पञ्चास्तिकाया ॥ २ ॥ सप्त तत्त्वानि ॥ ३ ॥ नव पदार्था ॥ ४ ॥ चतुर्विधो न्यास ॥ ५ ॥ द्विविधं प्रमाण ॥ ६ ॥ पंच सज्ज्ञानानि ॥ ७ ॥ त्रीण्यज्ञानानि ॥ ८ ॥ मतिज्ञानं षट्त्रिंशदुत्तरत्रिशतभेदम् ॥ ९ ॥ द्विविधं श्रुतज्ञानम् ॥ १० ॥ द्वादशाङ्गानि ॥ ११ ॥ चतुर्दशप्रकीर्णकानि ॥ १२ ॥ त्रिविधमवधिज्ञानम् ॥ १३ ॥ द्विविध मनःपर्ययज्ञानम् ॥ १४ ॥ केवलमसममर्हायम् ॥ १५ ॥ नव नया ॥ १६ ॥ सप्त भङ्गा इति ॥ १७ ॥ पञ्च भावा ॥१८॥ औपशमिको द्विविध ॥१९॥ क्षायिको नवविध ॥२०॥ अष्टादशविध क्षायोपशमिक ॥२१॥ औदयिकमेकविंशतिविधम् ॥ २२ ॥ पारिणामिक त्रिविधम् ॥ २३ ॥ गुणजीवमार्गणास्थानानि प्रत्येकं चतुर्दश ॥ २४ ॥ षट् पर्याप्तय ॥ २५ ॥ दश प्राणा ॥ २६ ॥ चतस्र संज्ञा

[illegible]

॥ २७ ॥ द्विविधमेकेन्द्रियम् ॥ २८ ॥ त्रीणि विकलेन्द्रियाणि ॥ २९ ॥ पंचेन्द्रियं द्विविधम् ॥ ३० ॥ गतिश्चतुर्विधा ॥ ३१ ॥ पंचेन्द्रियाणि ॥ ३२ ॥ षड्जीवनिकायाः ॥३३॥ त्रिविधो योगः ॥ ३४ ॥ पंचदशविधो वा ॥ ३५ ॥ नवविधो वा ॥ ३६ ॥ चत्वारः कषायाः ॥ ३७॥ अष्टौ ज्ञानानि ॥३८॥ सप्त संयमाः ॥ ३९ ॥ चत्वारि दर्शनानि ॥४०॥ षड्लेश्या· ॥४१॥ द्विविधं भव्यत्वं ॥४२॥ षड्विधा सम्यक्त्वमार्गणा ॥ ४३ ॥ द्विविधं संज्ञित्वम् ॥ ४४ ॥ आहार्युपयोगश्चेति ॥ ४५ ॥ पुद्गलाकाश-कालास्रवाश्च प्रत्येकं द्विविधम् ॥ ४६ ॥ बन्धहेतव पंचविधाः ॥ ४७ ॥ बन्धश्चतुर्विधः ॥ ४८ ॥ अष्टौ कर्माणि ॥ ४९ ॥ ज्ञानावरणीयं पंचविधम् ॥ ५० ॥ * दर्शनावरणीयं नवविधम् ॥ ५१ ॥ वेदनीयं द्विविधम् ॥ ५२ ॥ मोहनीयमष्टाविंशतिविधम् ॥ ५३ ॥ आयुश्चतुर्विधम् ॥ ५४ ॥ द्विचत्वारिंशद्विधं नाम ॥५५॥ द्विविधं गोत्रम् ॥५६॥ पंचविधमंतरायम् ॥५७॥ पुण्यं द्विविधं॥५८॥*पापं च ॥५९॥ संवरश्च ॥६०॥ एकादश निर्जराः ॥६१॥ त्रिविधो मोक्षहेतुः ॥६२॥ द्विविधो मोक्षः ॥६३॥ द्वादश सिद्धस्थानद्वाराणि ॥६४॥ अष्टौ सिद्धगुणाः ॥६५॥

इति शास्त्रसारसमुच्चये चतुर्थोऽध्याय ॥४॥

श्रीमाघनन्दियोगीन्द्रः सिद्धाम्बोधिचन्द्रमाः ।
अचीकरद्विचित्रार्थं शास्त्रसारसमुच्चयम् ॥ १ ॥

इति शास्त्रसारसमुच्चय ।

*एतच्चिन्हमध्यगत पाठ टीकायामधिकस्तेन मूले एव भवितव्यम् । १ सिद्धस्यानुयोगद्वाराणीति टीकापाठ । २इय प्रशस्तिका दौर्बलिजिनद मशास्त्रिणः पुस्तके ।

श्रीप्रभाचन्द्रविरचितं

अर्हत्प्रवचनम् ।



दृष्टं चराचरं येन केवलज्ञानचक्षुषा ।
प्रणम्य महावीरं देवमर्हन्तं प्रवक्ष्यते ॥ १ ॥

अथातोऽर्हत्प्रवचनं सूत्रं व्याख्यास्यामः । तद्यथा;—

तत्रेमे षड्जीवनिकायाः ॥१॥ पंच महाव्रतानि ॥२॥ पंचाणुव्रतानि ॥३॥ त्रीणि गुणव्रतानि ॥४॥ चत्वारि शिक्षाव्रतानि ॥५॥ तिस्रो गुप्तयः ॥६॥ पंच समितयः ॥७॥ दश धर्मानुभावना ॥८॥ षोडशभावनाः ॥९॥ द्वादशानुप्रेक्षा ॥१०॥ द्वाविंशतिपरीषहाः ॥११॥

इत्यर्हत्प्रवचने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

तत्र नव पदार्थाः ॥ १ ॥ सप्त तत्त्वानि ॥ २ ॥ चतुर्विधो न्यासः ॥ ३ ॥ सप्त नयाः ॥ ४ ॥ चत्वारि प्रमाणानि ॥ ५ ॥ षट् द्रव्याणि ॥६॥ पंचास्तिकाया ॥७॥ द्विविधो गुणः ॥८॥ पंच ज्ञानानि ॥ ९ ॥ त्रीण्यज्ञानानि ॥ १० ॥ चत्वारि दर्शनानि ॥११॥ द्वादशाङ्गानि ॥१२॥ चतुर्दश पूर्वाणि ॥ १३ ॥ द्विविधं तप ॥१४॥ द्वादश प्रायश्चित्तानि ॥ १५ ॥ चतुर्विधो विनय ॥१६॥ दश वैयावृत्यानि ॥१७॥ पंचविध स्वाध्यायः ॥ १८ ॥ चत्वारि ध्यानानि ॥१९॥ द्विविधो व्युत्सर्ग ॥२०॥

इत्यर्हत्प्रवचने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

त्रिविधः कालः ॥१॥ षड्विधः कालसमयः ॥२॥ त्रिविधो लोकः ॥३॥ अर्धतृतीया द्वीपसमुद्राः ॥ ४ ॥ पंचदश क्षेत्राणि ॥५॥ चतुस्त्रिंशद्वर्षधरपर्वताः ॥६॥ पंचदश कर्मभूमयः ॥७॥ त्रिंशद्भोगभूमयः ॥८॥ सप्ताऽधोभूमयः ॥९॥ सप्तैव महानरकाः ॥१०॥ चतुर्दश कुलकराः ॥११॥ चतुर्विंशतितीर्थकराः ॥१२॥ नव बलदेवाः ॥१३॥ नव वासुदेवाः ॥१४॥ नव प्रतिवासुदेवाः ॥१५॥ एकादश रुद्राः ॥१६॥ द्वादश चक्रवर्तिनः ॥ १७॥ नव निधयः ॥१८॥ चतुर्दश रत्नानि ॥१९॥ द्विविधाः पुद्गलाः॥२०॥

इत्यर्हत्प्रवचने तृतीयोऽध्याय ॥ ३ ॥

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥१॥ भवनवासिनो दशविधाः॥२॥ व्यन्तरा अष्टविधाः ॥३॥ ज्योतिष्काः पंचविधा ॥४॥ द्विविधा वैमानिका. ॥५॥ द्विविधा कल्पस्थिति ॥६॥ अहमिन्द्राश्चेति ॥७॥ पंच जीवगतय ॥८॥ षट् पुद्गलगतय ॥९॥ अष्टविध आत्मसद्भावः ॥१०॥ पंचविधं शरीरम् ॥१५॥ अष्टगुणा ऋद्धिः ॥१२॥ पंचेन्द्रियाणि ॥ १३ ॥ षड्लेश्या. ॥ १४ ॥ द्विविधं शीलम् ॥ १५ ॥

इत्यर्हत्प्रवचने चतुर्थोऽध्याय ॥ ४ ॥

त्रिविधो योग ॥१॥ चत्वारः कषाया ॥ २ ॥ त्रयो दोषाः ॥३॥ पंचास्रवा ॥४॥ त्रिविध संवर ॥५॥ द्विविधा निर्जरा ॥६॥ पंच लब्धयः ॥७॥ चतुर्विधो बन्ध ॥८॥ पंचविधा बन्धहेतवः

॥९॥ अष्टौ कर्माणि ॥१०॥ द्विविधो मोक्ष ॥११॥ चत्वारो मोक्षहेतव ॥१२॥ त्रिविधो मोक्षमार्ग ॥१३॥ पंचविधा निर्ग्रन्था ॥१४॥ द्वादश सिद्धस्यानुयोगद्वाराणि ॥ १५ ॥ अष्टौ सिद्धगुणा ॥१६॥ द्विविधा सिद्धा ॥ १७ ॥ वैराग्यं चेति १८॥

इत्यर्हत्प्रवचने पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

आप्तस्वरूपम् ।



आप्तागमः प्रमाणं स्याद्यथावद्वस्तुसूचकः ।
यस्तु दोषैर्विनिर्मुक्तः सोऽयमाप्तो निरञ्जनः ॥१॥
दोषावरणमुक्तात्मा कृत्स्नं वेत्ति यथास्थितम् ।
सोऽर्हंस्तत्वागमं वक्तुं यो मुक्तोऽनृतकारणैः ॥२॥
आगमो ह्याप्तवचनमाप्तं दोषक्षयं विदुः ।
त्यक्तदोषोऽनृतं वाक्यं न ब्रूयादित्यसम्भवात् ॥३॥
रागाद्वा द्वेष[1]मोहाद्वा वाक्यमुच्यते ह्यनृतम् ।
यस्य तु नैव च दोषास्तस्यानृतकारणं नास्ति ? ॥४॥
पूर्वापरविरुद्धादेर्व्यपेतो दोषसंहतेः ।
द्योतकः सर्वभावानामाप्तव्याहृतिरागमः ॥५॥
ध्यानानलप्रतापेन दग्धे मोहेन्धने सति ।
शेषदोषास्ततो ध्वस्ता योगी निष्कलमषायते ॥६॥
मोहकर्मरिपौ नष्टे सर्वे दोषाश्च विद्रुताः ।
छिन्नमूलतरोर्यद्वद् ध्वस्तं सैन्यमराजवत् ॥७॥
नष्टं छद्मस्थविज्ञानं नष्टं केशादिवर्धनम् ।
नष्टं देहमलं कृत्स्नं नष्टे घातिचतुष्टये ॥८॥
नष्टं मर्यादविज्ञानं नष्टं मानसगोचरम् ।
नष्टं कर्ममलं दुष्टं नष्टो वर्णात्मको ध्वनिः ॥९॥

---

१ द्वेषाद्वा मोहाद्वा पुस्तके--पाठः ।

नष्टा क्षुत्तृड्भयस्वेदा नष्टं प्रत्येकबोधनम् ।
नष्टं भूमिगतस्पर्शं नष्टं चेन्द्रियजं सुखम् ॥१०॥
नष्टा सद्देहजा छाया नष्टा चेन्द्रियजा प्रभा ।
नष्टा सूर्यप्रभा तत्र सूतेऽनन्तचतुष्टये ॥११॥
तदा स्फटिकसंकाशं तेजोमूर्तिमयं वपुः ।
जायते क्षीणदोषस्य सप्तधातुविवर्जितम् ॥१२॥
सकलग्राहकं ज्ञानं युगपद्दर्शनं तदा ।
अव्याबाधसुखं वीर्यं एतदाप्तस्य लक्षण ॥१३॥
त्रैलोक्यक्षोभका ह्येते जन्ममृत्युजरादय ।
ध्वस्ता ध्यानाग्निना येन स आप्त परिपठ्यते ॥१४॥
क्षुधा तृषा भयं द्वेषो रागो मोहश्च चिन्तनम् ।
जरा रुजा च मृत्युश्च स्वेद खेदो मदो रति ॥१५॥
विस्मयो जननं निद्रा विषादोऽष्टादश ध्रुवा ।
त्रिजगत्सर्वभूतानां दोषाः साधारणा इमे ॥१६॥

युग्मम् ।

एतैर्दोषैर्विनिर्मुक्त सोऽयमाप्तो निरञ्जन ।
विद्यन्ते येषु ते नित्यं तेऽत्र संसारिण स्मृता ॥१७॥
संसारो मोहनीयस्तु प्रोच्यतेऽत्र मनीषिभि ।
संसारिभ्यः परो ह्यात्मा परमात्मेति भाषित ॥१८॥
सर्वज्ञः सर्वगो भद्र सर्वदृग्वदनो विभु ।
सर्वमाप्त सदा वन्द्यः सर्वसाम्यात्मको जिन ॥१९॥
अर्हन् त्रैलोक्यसाम्राज्यं अर्हन् पूजां सुरेशिनाम् ।
हतवान् कर्मसम्भूतं अर्हन्नामा तत स्मृत ॥ २० ॥

रागद्वेषादयो येन जिताः कर्ममहाभटाः ।
कालचक्रविनिर्मुक्तः स जिनः परिकीर्तितः ॥ २१ ॥
स स्वयम्भूः स्वयं भूतं सज्ज्ञानं यस्य केवलं ।
विश्वस्य ग्राहकं नित्यं युगपद्दर्शनं तदा ॥ २२ ॥
येनाप्तं परमैश्वर्यं परानन्दसुखास्पदम् ।
बोधरूपं कृतार्थोऽसावीश्वरः पटुभिः स्मृतः ॥ २३ ॥
शिवं परमकल्याणं निर्वाणं शान्तमक्षयं ।
प्राप्तं मुक्तिपद येन स शिवः परिकीर्तितः ॥ २४ ॥
जन्ममृत्युजराख्यानि पुराणि ध्यानवन्हिना ।
दग्धानि येन देवेन तं नौमि त्रिपुरान्तकम् ॥ २५ ॥
महामोहादयो दोषा ध्वस्ता येन यदृच्छया ।
महाभवार्णवोत्तीर्णो महादेवः स कीर्तितः ॥ २६ ॥
महत्वादीश्वरत्वाच्च यो महेश्वरतां गतः ।
त्रैधातुकविनिर्मुक्तस्तं वन्दे परमेश्वरम् ॥ २७ ॥
तृतीयज्ञाननेत्रेण त्रैलोक्यं दर्पणायते ।
यस्यानवद्यचेष्टायां स[1] त्रिलोचन उच्यते ॥ २८ ॥
येन दुःखार्णवे घोरे मग्नानां प्राणिनां दया- ।
सौख्यमूलः कृतो धर्मः शकरः परिकीर्तितः ॥ २९ ॥
रौद्राणि कर्मजालानि शुक्लध्यानोग्रवन्हिना ।
दग्धानि येन रुद्रेण तं तु रुद्रं नमाम्यहम् ॥ ३० ॥
विश्वं हि द्रव्यपर्यायं विश्वं त्रैलोक्यगोचरम् ।
व्याप्तं ज्ञानत्विषा येन स विष्णुर्व्यापको जगत् ॥३१॥

---

१ 'संत्रिलोचनर चेत' पाठोऽय पुस्तके ।

वासवाद्यै सुरैः सर्वै योऽर्च्यत मेरुमस्तके ।
प्राप्तवान् पंचकल्याणे वासुदेवस्ततो हि स ॥२२॥
अनन्तदर्शनं ज्ञानं कर्मारिक्षयकारणम् ।
यस्मानन्तसुखं वीर्यं सोऽनन्तोऽनन्तसद्गुणः ॥२३॥
सर्वोत्तमगुणैर्युक्तः प्राप्तः सर्वोत्तमं पदम् ।
सर्वभूतहितो यस्मात्तेनासौ पुरुषोत्तमः ॥२४॥
भाविनां हितवेदोक्तं ? नैष्ठिक सङ्गवर्जितः ।
सर्वमापद्गुर्वमन्त्रो ब्रह्मासौ कामवर्जितः ॥२५॥
यस्य वाक्यामृतं पीत्वा भव्या मुक्तिमुपागताः ।
दत्तं येनाभयं दानं सत्त्वानां स पितामहः ॥२६॥
यस्य पञ्चदशमासानि रत्नवृष्टिः प्रवर्षिता ।
शक्रेण भक्तियुक्तेन रत्नगर्भस्ततो हि स ॥२७॥
मतिश्रुतावधिज्ञानं सहजं यस्य बोधनम् ।
मोक्षमार्गे स्वयं बुद्धस्तेनासौ बुद्धसंज्ञितः ॥२८॥
केवलज्ञानबोधेन बुद्धवान् स जगत्त्रयम् ।
अनन्तज्ञानसंकीर्णं तं तु बुद्धं नमाम्यहम् ॥२९॥
सत्यार्थभावया सम्यक् सर्वक्लेशप्रघातिनाम् ।
सत्त्वानां बोधको यस्तु बोधिसत्त्वस्ततो हि सः ॥४०॥
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तं स्थानमात्मस्वभावजम् ।
प्राप्तं परमनिर्वाणं येनासौ सुगतः स्मृतः ॥४१॥
सुप्रभातं सदा यस्य केवलज्ञानरश्मिना ।
लोकालोकप्रकाशेन सोऽस्तु भव्यदिवाकरः ॥४२॥

जन्ममृत्युजरारोगाः प्रदग्धा ध्यानवन्हिना ।
यस्यात्मज्योतिषां राशेः सोऽस्तु वैश्वानरः स्फुटम् ॥४३॥
एवमन्वर्थनामानि सर्वज्ञं सर्वलोचनम् ।
ईडितेनैव ? नामानि वेधोऽन्यत्र विचक्षणैः ॥४४॥
अर्हन् प्रजापतिर्बुद्धः परमेष्ठी जिनो जितः ।
लक्ष्मीभर्त्ता चतुर्वक्त्रो केवलज्ञानलोचनः ॥४५॥
अम्भोजनिलयो ब्रह्मा विष्णुरीशो वृषध्वजः ।
आतपत्रत्रयोद्भासी शंकरो नरकान्तकः ॥ ४६ ॥
निर्मलो निष्कलश्चैव विधाता धर्म एव च ।
परमपापनाशश्च परमज्योतिरव्ययम् ॥ ४७ ॥
योगीश्वरो महायोगी लोकनाथो भवान्तकः ।
विश्वचक्षुर्विभुः शम्भुर्जगच्छिखरिशेखरः ॥ ४८ ॥
लोकाग्रशिखरावासी सर्वलोकशरण्यकः ।
सर्वदेवाधिको देवो ह्यष्टमूर्तिर्दयाध्वजः ॥ ४९ ॥
सद्यो जातो महादेवो देवदेवः सनातनः ।
हिरण्यगर्भः सर्वात्मा पूतः पुण्यः पुनर्भवः ॥ ५० ॥
रत्नसिंहासनाध्यासी नैकचामरवीजितः ।
महामतिर्महातेजोऽकर्मा जन्मद्वान्तकः ॥ ५१ ॥
अच्युतः सुगतो ब्रह्मा लोकान्तो लोकभूषणः ।
देवदुन्दुभिनिर्घोषः सर्वज्ञः सर्वलोचनः ॥ ५२ ॥
अच्छेद्योऽनवभेद्यश्च सूक्ष्मो नित्यो निरञ्जनः ।
अजरो ह्यमरश्चैव शुद्धसिद्धो निरामयः ॥ ५३ ॥

अक्षयो ह्यव्ययः शान्तः शान्तिकल्याणकारकः ।
सर्वमूर्तिरमूर्तिश्च च कुशलः पुरुषोत्तमः ॥ ५४ ॥

नामाष्टकसहस्रेण युक्तं मोक्षपुरेश्वरं ।
ध्यायेत परमात्मानं मोक्षसौख्यप्रदायकम् ॥ ५५ ॥

शुद्धस्फटिकसंकाशं स्फुरन्तं ज्ञानतेजसा ।
गणैर्द्वादशभिर्युक्तं ध्यायदर्हन्तमक्षयम् ॥ ५६ ॥

सिंहासनसितच्छत्रचामरादिविभूतिभिः ।
युक्तं मोक्षपुरं देवं ध्यायेन्नित्यमनाकुलम् ॥ ५७ ॥

कल्याणातिशयैराढ्यो नवकेवललब्धिमान् ।
समस्थितो जिनो देवः प्रातिहार्यपतिः स्मृतः ॥ ५८ ॥

सर्वज्ञः सर्वदृक् सार्वो निर्मलो निष्कलोऽव्ययः ।
वीतरागः पराध्येयो योगिनां योगगोचरः ॥ ५९ ॥

सर्वलक्षणसम्पूर्णं निर्मले मणिदर्पणे ।
संक्रान्तबिम्बसादृश्यं शान्तं संचेतयेऽच्युतम् ॥ ६० ॥

येन जितं भवकारणसर्वं
मोहमलं कलिकाममलं च ।
येन कृतं भवमोक्षसुतीर्थं
सोऽस्तु सुखाकरतीर्थसुकर्ता ॥ ६१ ॥

क्षीणचिरन्तनकर्मसमूहो
निष्ठितयोगसमस्तकलापः ।
कोमलदिव्यशरीरसुभासः
सिद्धिगुणाकरसौख्यनिधिः ॥ ६२ ॥

निष्कलबोधविशुद्धसुदृष्टिः
पश्यति लोकविभावस्वभावम् ।
सूक्ष्मनिरञ्जनजीववपुनोऽसौ
तं प्रणमामि सदा परमाप्तम् ॥ ६३ ॥

क्षपितदुरितपक्षक्षीणनिःशेषदोषो
भवमरणविमुक्तः केवलज्ञानभानुः ।
परहृदयमतार्थग्राहकज्ञानकर्ता
ह्यमलवचनवक्ता भव्यबन्धुर्जिनाप्तः ॥ ६४ ॥

इतिश्री-आप्तस्वरूप समाप्तम ।

श्रीपोमराजसुतश्रीवादिराजप्रणीतं

ज्ञानलोचनस्तोत्रम् ।

ज्ञानस्य विश्राम्यति तारतम्यं
परप्रकर्षादतिशायनाच्च ।
यस्मिंश्च दोषावरणे तुलावत्
दृष्टेष्टशिष्टोक्तनयप्रकाशे ॥ १ ॥
ध्यात्वा च यं ध्यायति नौति नुत्वा
नत्वा नमत्यत्र परं न लोकः ।
श्रुत्वाऽऽगमान् यस्य शृणोति नान्यान्
श्रीपार्श्वनाथं तमहं स्तवीमि ॥ २ ॥

युग्मम् ।

तृणाय मत्वाखिललोकराज्यं
निर्वेदमाप्तोऽसि विमुक्तभावे ।
ध्यानैकतानेन च चेतसाम्
कैवल्यमासाद्य जिनेश ! मुक्तः ॥ ३ ॥
परं यथेष्टं प्रभुतेऽत्र यथाऽ
भिभूय राजन्यकमाशु विश्वम् ।
गुरुं च बुद्धं कपिलं हरार्धी
त्वया शिवश्री सततं यथेयम् ॥ ४ ॥
परैः प्रणीतानि कुशासनानि
दुरंतसंसारनिबंधनानि ।
त्वया तु तान्येव कृतानि संति
तीक्ष्णानि मर्माणि यथा प्रयोगात् ॥५॥

दाता न पाता न च धामधाता
कर्त्ता न हर्त्ता जगतो न भर्त्ता।
दृश्यो न वश्यो न गुणागुणज्ञो
ध्येयः कथं केन स लक्ष्मणा त्वम्॥ ६ ॥
दत्से कथं चेद्दृगिनस्त्वमिष्टं
चिंतामणिर्वा भविनां सुभावात्।
मतं यदीत्थं तव सेवया किं
स्वभाववादो ह्यवितर्क्य एव ॥ ७ ॥
संसारकूपं पतितान् सुजंतून्
यो धर्मरज्जूद्धरणेन मुक्तिम्।
नयत्यनंतावगमादिरूप-
स्तस्मै स्वभावाय नमो नमस्तात्॥ ८ ॥
रणत्यमोघं सकलो जनस्त्वां
विब्वोकवृंदैरजितं सदा हि।
पद्मालयापूजितपादयुग्मं
चित्तानवस्थाहरणं परार्घ्यम्॥ ९ ॥
णमो सव्वोसहिपत्ताण।

भणत्यमोघं सकलक्रियौघ-
मबोधतो देहिगणो न सिद्ध्यै।
तथा जिनोक्तेरमला गुणास्ते
प्रीणंति भव्यानिह पंचभाद्रैः॥ १० ॥
णमो सव्वोसहिजिणाण।

स्थितोऽयमात्मा वपुषि स्थितोऽच्छः
स्यात्कश्वर कर्मकलंकपंके ।
हेमाश्मवन्मृदितस्तपोभि
निर्णीक्त तं स्वं जिन ! मुक्तिदोऽसः ॥ ११ ॥

अमित्रमित्रास्त्रविवर्द्धमान
द्वेषानुरागा परमात्ममूढा ।
हिंसापकारान्यकलत्रसक्ता
व्यामोहभावं न कथं लभंते ॥ १२ ॥

तव स्तुतेरीश ! रसं रमज्ञा
जानाति या तच्छ्रवणाच्च्युति सा ।
तदुत्तमांगं पदयोर्न तं यद्
ध्यायेन धीस्त्वां मनुते मनस्तत् ॥ १३ ॥

छद्मोऽज्जिनेनाप्रसमोऽस्ति मूढो
मेघैर्गतो वह्निमिहाम्बुताप्यैः ।
वात्मा हि जन्मेष्विकृतरऽस्य जल्पे
स्वज्ञोत्रमंत्रे न तदाऽस्य मन्त्रम् ॥ १४ ॥

प्राप्ती विवर्त्तातुरस सुखीह
किमन्यचिंताभिरितीव बद्धा ।
हर्म्यं च नि'स्वं मरुमं रुझोर्नं
मन समाश्रयसतस्त्वदुक्त्या ॥ १५ ॥

हित्वांगनापद्धतिमप स्नाती
स्फुट सवेदा ममतोऽस्त्यपशोक ।

निरीक्ष्य निर्विण्णमिनं विरागोऽ-
भवत्स्वयं भृत्यगतिर्हि सैषा ॥ १६ ॥
खांदापतंती सुमनस्ततिः प्रा-
गस्यै जिनं यष्टुमसूययेव ।
त्वया जितेनावपुपेव हीना
निजेषु पंक्तिर्भवतः सभायाम् ॥ १७ ॥
ध्वनिर्ध्वनत्यक्रमवर्णरूपो
नानास्वभावो भुवि वृष्टिवत्ते ।
त्वत्तो न देवैरयमक्षरात्मा
जयत्ययं मेचकवज्जगत्याम् ॥ १८ ॥
प्रकीर्णकौघा मुनिराजहंसा
जिनं नमंतीव मुहुर्मुहुस्त्वाम् ।
वलक्षलेश्यातनया इवामी
बोधाब्धिफेनाः शिवभीरुहासाः ॥ १९ ॥
पीठत्रयं ते व्यवहारनाम
छत्रत्रयं निश्चयनामधेयम् ।
रत्नत्रयं दर्शयतीव मार्गं
मुक्तेस्त्वदंघ्रीक्षणतः क्षणेन ॥ २० ॥
भामंडले मारकतोपलाभे
निमग्नकायाश्च चतुर्णिकायाः ।
स्नांतीव तीर्थे परमागमाख्ये
देदीप्यमाने स्वदयारसेन ॥ २१ ॥

१ दिवः पतती इत्यपि पाठ २ पुरस्तात् इत्यपि पाठ ३ स्वदयागुणेनेत्यपि पाठ ।—सम्पादक ।

घातीनि कर्माणि जितान्यनेन
काल: समागच्छति नो समीपम्।
इत्थं मुहुर्ज्ञापयतीव लोकान्
दध्वन्यते दुंदुभिरंतरिक्षे ॥ २२ ॥
क्षुदादयोऽनंतसुखोदयात्तेऽ-
किंचित्करा घातिविघातनाच्च।
सत्त्वोदयाभ्यामविघातिनां किं
तोतुदतेऽगं विविधाहितत्वे ॥ २३ ॥
नाज्ञासि पश्यन् जिन! नारकादीन्
हतानन्नंतांश्च हनिष्यमाणान्।
चारित्रभंगात् खगतप्रसंगात्
कल्पानि चात्रातिशयो हि कश्चित् ॥ २४ ॥
लौकांतिकानां त्रिदिवातिगानां
पुंस्त्वोदये सत्यपि नांगनार्ति ।
तथा प्रमातोदयतो न पीडा
सामर्थ्यमावाञ्च फलोदयस्ते ॥ २५ ॥
योऽस्तीह श्वेत सत्रूप सदोषो
मानुषत्वे ह्यपि विपीरतीश!।
इत्यत्रमष्टादश संति दोषा
यस्मिन्नसौ भूरिभवाम्बिधारः ॥ २६ ॥
अर्हत्ववादोघनिषेधकारी
एकांतविध्यार्मविलासहारी।
मीमांसकस्त्वं सुगतो गुरुश्च
हिरण्यगर्भ: कपिलो जिनोऽपि ॥ २७ ॥

हठेन दुष्टेन शठेन वैरा-
दुपद्रुतस्त्वं कमठेन येन ।
नीलाचलो वा चलितो न योगात्
स एव पद्मापतिनात्तगर्वः ॥ २८ ॥

श्रुत्वाऽनुकंपांकनिधिं शरण्यं
विज्ञापयाम्येष भवार्दितस्त्वाम् ।
अशक्यतायास्तव सद्गुणानां
स्तुतिं विधातुं गणनातिगानाम् ॥ २९ ॥

कुदेववेशंतकदासदास-
कुतत्वजाले भ्रमतो निपत्य ।
मिथ्यामिषं ग्लस्तमिदं भवाब्धा-
वुरो धृतं कौलिशगोलकं वा ॥ ३० ॥

अनाद्यविद्यामयमूर्च्छितांगं
कामोदरक्रोधहुताशतप्तम् ।
स्याद्वादपीयूषमहौषधेन त्रायस्व
मां मोहमहाहिदष्टम् ॥ ३१ ॥

हिंसाऽक्षमादिव्यसनप्रमाद-
कषायमिथ्यात्वकुबुद्धिपात्रम् ।
व्रतच्युतं मां गुणदर्शनोनं
पातुं क्षमः को भुवने विना त्वाम् ॥ ३२ ॥

पुरांचितं नो तव पादयुग्मं
मया त्रिशुद्ध्याऽखिलसौख्यदायि ।

परालयातिथ्यपरैषिवत्स-
पात्रं हि गात्रं चरिपर्ति मेऽद्य ॥ २३ ॥
क्रोधाख्यहर्यक्षगृहीतकंठो
हतोस्मि मानाद्रिविचूर्णितांगः ।
मायाकुजायाचलुकेशपाशो
लोभाख्यपंकौघनिमग्नमूर्त्तिः ॥ २४ ॥
तारुण्यबाल्यांत्यदशासु किंचि
त्कृतं मया नो सुकृतं कदापि ।
ज्ञानमपीत्थं तु तथैव धर्मे
जन्मच्छ्यात्तु करवाणि किं वा ॥ २५ ॥
दानं न तीर्थं न तपो जपश्च
नाध्यात्मचिंता न च पुण्यपूजा ।
श्रुतं श्रुतं न स्वपरोपकारि
हा ! हारितं नाथ ! जनुर्निरर्थम् ॥ २६ ॥
भोगाशया भ्रांतमलं धरण्यां
धराधिपध्यानपरेण धाम्याम् ।
अपास्य धर्मं भयकारकूटे
गृहीतमज्ञानवशादधीश ! ॥ २७ ॥
पंचास्यनागीहयसिंधुदस्त्वा
रण्यज्वराब्ध्यादिभवं भयं प्राक् ।
त्वद्गोत्रमंत्रस्मरणप्रभावा
न्मित्रोदयाद्ध्वांतमिव प्रणश्येत् ॥ २८ ॥
यतोऽरुचि संसृतिदेहभोगा
दनारतं मिश्रफलप्रसर्गात् ।

आकृष्य चित्तं स्मरणात्त्वदीया-
न्नयंति कर्माणि पदं तदेव ॥ ३९ ॥
नाट्यं कृतं भूरिभवैरनंत
कालं मया नाथ ! विचित्रवेषैः।
हृष्टोऽसि दृष्ट्वा यदि देहि देयं
तदन्यथा चेदिह तद्धि वार्यम् ॥ ४० ॥
श्रद्धालुता मे यदनंगरंगे
कृपालुताऽभून्मम पापवर्गे।
निद्रालुता शान्तरसप्रसंगे
तंद्रालुताध्यात्मविचारमार्गे ॥ ४१ ॥
भ्रांत्वा चिरं दैववशेन विन्ना
त्वदुक्तिपूः साधुपदार्थगर्भा।
परैरगम्या नयरत्नशाला
तस्यां कुतो दुःखमहो स्थितानाम् ॥ ४२ ॥
हिताहितेऽर्थेऽथ हेतिहिता च ?
चिदात्मनो धर्मविचारहीना।
अजात्तपीणीय[1] ? मिवोद्धहंती
मतिर्मदीया जिननाथ ! नष्टा ॥४३॥
यद्यस्त्यनंतं त्वयि दर्शनं मे
तदेव दत्तादणुमात्रमद्यं।
ज्ञानं सुखं वीर्यमतोऽधिकं चे-
द्द्यात्तदा को जिन ! दूरवर्त्ती ॥ ४४ ॥

---

१ 'अजाकृपाणीयमिवो' इति सम्भाति।

हिरुक् सुखदिरिंद्रिय न हि भवेभ्रमसादिकं
पृथक् सदय नो नृपो न लभते सद्योगमः ।
इति प्रतिदिनं विभो ! चरणवीक्षणं कामये
तव कुरु कृपानिधे ! सपदि लोचनानंदनम् ॥४५॥
स्तोत्रं कृतं परमदेवगुरुप्रसादा-
च्छ्रीपोमराजतनयेन सुखादिराज्ञा ।
सज्ज्ञानलोचनमिदं पठतां सुखे स्यात्
दृग्दोषहारि जगतः परमोपकारि ॥४६॥

इति श्रीपोमराजतनयवादिराजविरचित ज्ञानलोचनस्तोत्रम्
समाप्तिमगमत ।

विष्णुसेनविरचितं

समवशरणस्तोत्रम्।



आर्या।

वृषभाद्यानभिवंद्यान् वंदित्वा वीरपश्चिमजिनेंद्रान्।
भक्त्या नतोत्तमांगः स्तोष्ये तत्समवशरणानि ॥१॥
भूम्या पंचसहस्रान् दंडानुत्क्रम्य समवशरणानाम्।
जायंते गगनगताः सद्वृत्तैकेन्द्रनीलशिलाः ॥ २ ॥
द्वादशयोजनतस्ताः क्रमेण चार्द्धार्द्धयोजनन्यूनाः।
तावद्यावन्नेमिश्चतुर्थभागोनिताः परतः ॥३॥
अवसर्पिण्यामेवं क्रमोऽन्यथोत्सर्पिणीक्रमो ज्ञेयः।
आद्या विदेहजानां मतांतराद्विश्वतीर्थेशाम् ॥४॥
दिक्षु चतसृष्वपि भुजप्रमाणविंशतिसहस्रसोपानाः।
एकादशभूमीकाः शीलचतुष्काश्च पंचवेदीकाः ॥५॥
प्रासादचैत्यखातीवल्ल्युपवनकेतवश्च कल्पतरुः।
भवनं गणस्त्रिपीठान्याद्यादीन्यवनिनामानि ॥६॥
एकैकं जिनभवनं प्रासादान् पंच पंच चोल्लंघ्य।
त्र्यस्राद्याः स्युर्वाप्यो वनखंडान्याद्यभूमितले ॥७॥
स्वच्छजलेनापूर्णं नानाविधजलचरैश्च संकीर्णम्।
सोपानशोभिततटं प्रोत्फुल्लाब्जावृताखातम् ॥ ८ ॥
पुंनागनागकुब्जकवरशतपत्रातिमुक्तकाकलितो।
सामरमिथुनलतालययुता तृतीयाऽवनी रम्या ॥९॥

उक्तं च,—

गाथा ।

उपवनपदाविवस्रोण सिता पिच्छति कथमथआर्दि ।
तस्स पिरिक्वणमेचे सत्तमभावीवमाविबावामो ॥ १ ॥

आर्या ।

वनभूरशोकसप्तच्छदचंपकचूतसद्वनैर्भाति ।
क्रीडाद्रिचैत्यतरुयुक्तदक्षिणस्यैश्चतुर्दिक्षु ॥१०॥
सिंहगजवृषभबर्हिणमालांबरहंसपद्मचक्रांकाः ।
गरुडैर्ध्वजाश्च दशधेत्येकैकेऽप्यष्टशतसंख्या ॥११॥
एतैश्चतुर्दिशास्थैश्चतुर्गुणैर्मुख्यकेतुभिर्भाति ।
साष्टशतेनाभिहतैर्मुख्यैः क्षुद्रध्वजैश्चान्यैः ॥ १२ ॥

चतुर्दिक्षु मुख्यध्वजसंख्या ४३२० । परिवारध्वजसंख्या ४६६५६० । सर्वध्वजसंख्या ४७०८८० ।

सर्वेषां स्तंभानां रुंद्रत्वमशीतिरंगुलान्यष्टौ ।
इष्वासनर्पचकतिस्तंतरमाद्यो तु हानिरपरेषु ॥ १३ ॥

मुख्यध्वजस्तंभानां रुंद्रत्वमंगुलानि ८८ । मुख्यध्वजस्तंभांतरं धनु २५ ।

इमांदालफक्षमर्लैर्दशविधकल्पैश्च सिद्धतरुभिश्च ।
सुरनरनिकरसनाथैश्चकास्ति कल्पद्रुमा वसुधा ॥ १४ ॥

अनुष्टुप् ।

मृदंगभृंगरत्नांगा पानभोजनपुष्पदाः ।
ज्योतिरालयवस्त्रांगा दीपाभिर्दशधा द्रुमा ॥१५॥

आर्यागीतम् ।

सालत्रयमध्यस्थितपीठत्रयवर्तिचैत्यसिद्धतरू ।
जिनसिद्धप्रतिबिंबैरघ स्थितनिषण्णकैर्भातः ॥ १६ ॥

नृत्यद्भिर्गायद्भिर्जिनाभिषकोद्यतैरशेषसुरैः।
बहुधेद्धप्रासादा भवंति भवनावनौ रम्याः॥ १७॥
स्फाटिकशालस्यांतर्लक्ष्मीवरमंडपे गणक्ष्मायाम्।
द्वादश कोष्ठाः स्फाटिकषोडशगुरुभित्तिभि र्भान्ति॥ १८॥
ऋषिकल्पजवनितार्याज्योतिर्वनभवनयुवतिभावनजाः।
ज्योतिष्ककल्पदेवा नरतिर्यंचो वसंति तेष्वनुपूर्वम्॥ १९॥
वैडूर्योत्तमकांचनविलसद्वरसकलरत्नवर्णानि।
अष्टचतुश्चतुरिष्वासोन्नतिमंति त्रिपीठानि॥ २०॥
प्रस्फुरितधर्मचक्रैर्यक्षपतिभिरुद्धृतैर्महाभक्त्या।
चतुराशासु विराजति कृतार्चनं प्रथमपीठतलम्॥ २१॥
अरिगजवृषहरिकमलांबरध्वजखगपतिपुष्पमालाख्यैः।
विलसत्केतुभिरष्टभिरनुपमपूज्यं द्वितीयपीठतलम्॥ २२॥
षट्शतरुंद्रायामा साधिकनवशतधनुःसमुत्तुंगा।
प्रथमे शेषेषूना गंधकुटी स्यात्तृतीयपीठतले॥ २३॥

रुंद्रत्व ६००। उदयं ९००।

तन्मध्यस्थितसिंहासनमध्ये शोणमंबुजं रमणीयम्।
दशशतदलसंयुक्त तन्मध्ये कनककर्णिकायामुपरि॥२४॥
चतुरंगुलगगनतले निविष्टवान् विमलकेवलज्ञानी।
लोकालोकविलोकी धर्माधर्मौ जिनो वक्ति॥२५॥
प्रहतघनघातिदोषश्चतुरधिकत्रिंशदतिशयैश्वर्ययुतः।
सोऽनंतचतुष्टयभाक्कोट्यादित्यप्रकाशसंकाशवपुः॥ २६॥
क्षुत्तृड्भात्क्रुधरागप्रमोहचिंता जरा रुजा मृत्युः।
स्वेदः खेदमदोरतिविसमयनिद्राजनूद्वेगः॥२७॥

छत्रत्रयसिंहासनसुरदुंदुभिपुष्पवृष्टिभाषाशोका ।
भावलयचामराणीत्यष्टमहाप्रातिहार्यविभवसमेतः ॥२८॥

उक्तं च,—

पुव्वण्हे मज्झण्हे अवरण्हे मज्झिमाय रत्तीए ।
छच्छग्घडियाणिग्गयदिव्वज्झुणी कहइ सुत्तत्थे ॥ १ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ।

गंभीरं मधुरं मनोहरतरं दोषैरपेतं हितं
कंठौष्ठादिवचोनिमित्तरहितं नो वातरोधोद्गतम् ।
स्पष्टं तत्तदभीष्टवस्तुकथकं निःशेषभाषात्मकं
दूरासन्नसमं समं निरुपमं जैनं वचः पातु नः ॥२९॥
यत्सर्वात्महितं न वर्णसहितं न स्पंदितौष्ठद्वयं
नो वांछाकलितं न दोषमलिनं न श्वासरुद्धक्रमम् ।
शान्तामर्षविषैः समं पशुगणैराकर्णितं कर्णिभि-
स्तन्नः सर्वविद् प्रणष्टविपदः पायादपूर्वं वचः ॥३०॥

गाथा ।

सप्तचतुर्विंशांशो प्रथमोऽष्टसु द्वितादिषार्द्धे च ।
अर्द्धं त्रित्रिद्व्यष्टमभागाः पंचसु तथा परेऽर्द्धे च ॥३१॥
सालो वेदी वेदी सालो वेदी च .. सालो ।
वेदीत्यंतरमेवंवि सर्वे बहिर्भागात् ॥३२॥
इंद्रचतुर्हैमे द्वे सुरत्नहैमे च हैमकार्जुनके ।
हैमी चार्कमयी सालो वेदी यथायोग्यम् ॥३३॥
धनुष शतानि पंचाद्यो पंचाशदेव पंचोनाः ।
अष्टसु पंचदशाष्टसु कल्प्य नव सप्त पार्श्वसन्मत्योः ॥३४॥

तीर्थकरोत्सेधो यथा ५००, ४५०, ४००, ३५०, ३००, २५०, २००, १५०, १००, ९०, ८०, ७०, ६०, ५०, ४५, ४०, ३५, ३०, २५, २०, १५, १०, रत्नय ९, ७।

चतुराहतजिनदैर्घ्यं वेदीसालेषु मानमान्मातं ।
किंचित्साभ्यधिकं तत्तोरणतुंगत्वमुद्गतम् ॥३५॥
चर्याट्टालकभवनै. केतुभिराभांति वेदिकाः सालाः ।
मूला मूलात्क्रमपरिहान्या रहितेतरमूर्त्तयः क्रमशः ॥३६
हन्नो? रजतस्य महाहरिन्मणिगणस्य गोपुरद्वारम् ।
एकं पट्ट च स्युर्द्वे नानामाणिक्यरचितानि ॥ ३७ ॥
ध्वजमानस्तंभाचलचैत्यप्रासादगोपुरस्तूपाः ।
द्वादशगुणजिनदैर्घ्या मंडपसिद्धार्थचैत्यसदशोकाः ॥३८
क्रोशव्यासाः प्रथमे न्यूनाश्चावीरतश्चतुर्वीथ्याः ।
बहिरंतः सालांतरदैर्घ्योभयदिक्क? स्फाटिका साला॥३९॥
द्वारेषु त्रिषु दंडान् ज्योतिष्कान् बिभ्रति द्वयोर्यक्षाः ।
नागास्तद्द्वितयस्था द्वयोश्च कल्पामराः प्रवराः ॥ ४० ॥
मध्ये गोपुरमंतर्वीथ्याः स्तंभो नभो द्विराभाति ।
नर्त्तनसालो शून्यं सालास्तूपा नभश्चरमम् ॥ ४१ ॥
मानस्तंभाश्चोपरि सालत्रयमध्यगत्रिपीठानाम् ।
कुंडाष्टकसंयुक्ताश्चतुर्ह्रदाः संति चतुराशम् ॥ ४२ ॥
अस्रविमिश्रा मूलादुपरिष्टाद्वर्तुलाश्चतुर्दिक्कम् ।
मूर्ध्निस्थितजिनबिंबा ह्रदाभिधानान्यतो वक्ष्ये ॥ ४३ ॥
नदोत्तरा च नंदा नंदवती नंदघोपनामा च ।
विजया च वैजयंती जयंतसंज्ञाऽपराजिताख्या च ॥४४॥

शोका सुप्रतिबुद्धा कुमुदान्या पुंडरीकनामा च ।
हृदयानंदा च महानंदाख्या सुप्रबुद्धनामा च ॥ ४५ ॥
षोडश पूर्णा वापी प्रभंकनामा तत परमरम्या।
आसां संपदमखिलां स्तोतुं शक्रो न शक्नोति ॥ ४६ ॥
धवलोर्ध्वगत्रिभूमिसाले नृत्यस्य राजते द्वे द्वे ।
वीथ्या पार्श्वद्वितये धूपघटौ द्वौ च चतुर्गाग्रौ ॥ ४७ ॥
द्वात्रिंशत्प्रेक्षणिकान्येकैकस्यां भवंति पृथुभूम्याम् ।
एकैकप्रेक्षणिके द्वात्रिंशद्देवकन्याः स्युः ॥ ४८ ॥
अर्हत्प्रतिमाकीर्णाः स्तूपा नव नव भवंति चाभ्यर्च्याः ।
अंतरिताः शतसंख्यैः रत्नानां तोरणैरमलैः ॥ ४९ ॥
चाभ्यन्तरदेशे पट्त्रिंशद्गोपुरात्मना संति ।
द्वारोभयभागस्था मंगलनिधय समस्तास्तु ॥ ५० ॥
संघाटकभृंगारध्वजछत्रादर्शव्यजनशुक्तिचामरकलशाः ।
मंगलमष्टविध स्याद्वैकैकस्याष्टशतसंख्या ॥५१॥
प्रत्येकं साष्टशते ता कालमहाकालपांडुमाणवशंखा ।
नैसर्पपद्मपिंगलनानारत्नाख नव निधयः ॥५२॥
ऋतुयोग्यवस्तुभाजनधान्यायुधतूर्यहर्म्यवस्त्राणि ।
आभरणरत्ननिकरान् क्रमेण निधय प्रयच्छंति ॥५३॥
शतमकरतोरणाद्या धूलीसालस्य बाह्यभागाः स्युः ।
अंतर्भागाः सर्वे प्रत्येकं रत्नतोरणशतास्तु ॥५४॥
प्राच्यां दिशि विजयाख्यं द्वारमपाच्यां च वैजयताख्यम्
प्रत्यक्कुमि जयंतं स्यादपराजितमथोदीच्याम् ॥५५॥
यद्यप्यसंख्यगुणितक्षेत्रफलास्तत्र भव्यजीवाः स्युः ।
जिनभक्तेः स्थितवंतस्तथापि निःक्षेपतः सर्वे ॥५६॥

संख्यातयोजनेऽपि प्रवेशनिर्गमयुजोऽत्र भव्याः स्युः ।
अंतर्मुहूर्त्तमात्रा जिनमाहात्म्येन वृद्धाद्याः ॥५७॥
मिथ्यादृष्टिरभव्योऽसंज्ञी जीवोऽत्र विद्यते नैव ।
य[1]श्चानध्यवसायो यः संदिग्धो विपर्यस्तः ॥५८॥
तत्र न मृत्युर्जन्म च विद्वेषो न च मन्मथोन्मादः ।
रागांतकबुभुक्षाः पीडा च न विद्यते क्वापि ॥५९॥

अनुष्टुप्वृत्तम् ।

अंधाः पश्यंति रूपाणि शृण्वंति बधिराः श्रुतिम् ।
मूकाः स्पष्टं विभाषंते चंक्रम्यंते च पंगवः ॥६०॥

आर्यावृत्तम् ।

यः स्तुत्वैवं ध्यायति समरसभावाज्जिनेश्वरं देवम् ।
तस्यैष भवति विभवः कतिपयदिवसैर्न संदेहः ॥६१॥
चत्वारिंशद्भवने द्वात्रिंशद्व्यंतरविमानेषु ।
चतुरधिकविंशतिश्चंद्रार्कौ सिंहोऽथ चक्रवर्त्तीन्द्राः ॥६२॥

कर्तु प्रशस्ति ।

शक्राज्ञया स्वभक्त्या धनदेवविनिर्मितं समवशरणम् ।
व्यावर्णितं त्रिविद्याधिगणिना विष्णुसेनेन ॥६३॥

इति श्रीविष्णुसेनविरचितं समवशरणस्तोत्रं
समाप्तम् ।

---

१ 'यश्चानध्यसायो' इति पाठ श्रेयानवभाति ।

जयानन्दसूरिविरचित

सर्वज्ञस्तवनम् ।

गद्यैः ।

दया प्रभो ! य विपिनात्मजुदर्प
भक्त्या सुमेरौ शिखरेऽभ्यर्पिचन् ।
सन्तूयस त्व स मया समोद-
मुमीलयत ज्ञानदृशा यथा म ॥ १ ॥

टीका—त्वया इति—गीर्वाणभारत्योच्चारणमन्त्यपसमन्वयं बालानां भज्ञापदम्यसम्यात्व्यानामसरं कथयति म आत्म कथ्यते—यथा हे प्रभो ! त्वां त्वा विधिनात्मजुन्प भक्त्या शक्तिसकाशात् सुमेरो शिखरे म्यर्पिचमस्नपयन् जन्मोत्सवमकाषु स त्वं मया समार्द सतुष यथा स्या-त्था संस्तूयस यथा मे ज्ञानदृशोन्मीत्यत इत्यन्वय । अभिपूर्वरिचेन् क्षरण "षस्तनी" अन् तुमदेन 'सुनादितृपत्युपेक्षि' नाऽन्त अभ्यपिचन् इय कर्मयुक्ति । समपूर्वस्तुक स्तुतो "प सौ" इति स्तुनिमित्तस्य पत्वा भावान्नैमित्तिकस्य टस्याप्यभाव "निमित्ताभावे नैमित्तिकस्याप्यभाव" इति न्यायात् । "ततसाप्यानाप्योति" कर्मणि वर्तमानात् यप्रत्ययः । "दीर्घश्चयङिसि दीर्घत्वं संस्तूयसे इति कर्मण्युक्ति । उत्पूर्वक मील निमेषणे भावे आत्मनेपदं शेषं पूर्ववत् इयं भावे उक्ति । अत्र काव्ये सप्त विभक्त्यामस्तित्वं तकार संबोधन क्रियाविशेषणं च कथितानि । मयाऽतरेऽर्थे टत्पयत्वा अपि अधिकारात् कथ्यते । यथा;—

एककर्मा द्विकर्मा चाकर्मा कर्तरि कर्मणि ।
कर्मकर्तरि भावे च उक्तयोऽपविधाः स्मृता ॥ १ ॥

अस्य व्याख्या—यथा श्राद्धा देवान् पूजयति इय एककर्मा १ मित्रोऽजा ग्राम नयति इय द्विकर्मा २ देवदत्त· शेते इयमकर्मा ३ एतत् प्रकारत्रय कर्त्तरि । अथ प्रकारत्रय कर्मणि, यथा श्राद्धैर्देवाः पूज्यते ४ मित्रेण अजा ग्राम नीयते ५ देवदत्तेन शय्यते ६ आरोह्ते हस्तिन हस्तिपकास्तानारोहतो हस्ती प्रयुक्ते आरोह(हय)ते हस्तिन हस्तिपकान् ७ वर्षासु मेघो गर्जति मयूरो नृत्यति ८ इत्यष्टप्रकारा उक्तयो ज्ञेयाः ॥१॥

ध्यानानुकंपाधृतयः प्रधानो-
ल्लासिस्थिराः ज्ञानसुखक्षमं च ।
सुनाथ ! संति त्वयि सिद्धिसौधा-
धिरूढ ! कर्मोज्झित ! विश्वरुच्य ! ॥२॥

टीका—हे सुनाथ ! हे सिद्धिसौधाधिरूढ ! हे कर्मोज्झित ! हे विश्वरुच्य ! त्वयि प्रधानोल्लासिस्थिराः ध्यानानुकपाधृतय· सति वर्त्तते, न्न पुनः ज्ञानसुखक्षम अस्ति इत्यन्वय ! ध्यान च अनुकपा च धृतिश्च ध्यानानुकपाधृतयः, अत्र केवलविशेष्यैरितरेतरद्वंद्वः कथितः । प्रधान च उल्लासिनी च स्थिरा च प्रधानोल्लासिस्थिराः अय केवलाविशेषणैः स एव प्रधानादीनि ध्यानादीना विशेषणानि । ज्ञान च सुख च क्षमा च ज्ञानसुखक्षम अय समाहारद्वद्व , पूर्वार्द्धेन द्वद्व· कथितः । शोभनश्चासौ नाथश्च सुनाथ. सबुद्धौ सुनाथ ! अत्र प्रथमातत्पुरुषः कथित· । सौधमधिरूढः सौधाधिरूढ सिद्धिरेव सौधाधिरूढ सिद्धिसौधाधिरूढः, अत्र द्वितीयातत्पुरुषः । कर्मभिरुज्झित·, अत्र तृतीयातत्पुरुषः । विश्वस्मै रुच्य , अत्र चतुर्थीतत्पुरुषः कथितः । पचमीतत्पुरुषषष्ठीतत्पुरुषसमासौ वक्ष्यमाणश्लोकपूर्वार्द्धेन ज्ञेयौ ॥ २ ॥

संसारभीतं जगदीश ! दीनं
मां रक्ष रक्षाक्षम ! रक्षणीयम् ।
प्रौढप्रसादं कुरु सौम्यदृष्ट्या
विलोकय स्वीयवचश्च देहि ॥ ३ ॥

टीका—संसाराद्भीतः संसारभीतः, अत्र पंचमीसमासः, जगतामीशो जगदीशः, अत्र षष्ठीतत्पुरुषसमासः । एवं तत्पुरुषसमासः संपूर्णः । प्रौढश्चासौ प्रसादश्च प्रौढप्रसादस्तं प्रौढप्रसादं, अत्र पुंसि कर्मधारयः, सौम्या चासौ दृष्टिश्चेति सौम्यदृष्टिस्तयेति स्त्रियां कर्मधारयः, स्वीयं च तद्वचश्चेति स्वीयवचः, इत्यत्र क्लीबे कर्मधारयसमासः, एवं कर्मधारयसमासः संपूर्णः । हे जगदीश ! हे रक्षाक्षम ! संसारभीतं दीनं रक्षणीयं मां त्वं रक्ष प्रौढप्रसादं त्वं कुरु सौम्यदृष्ट्या मां विलोकय, च पुनर्मम स्वीयवचो देहि इति ॥ ३ ॥

वक्ष्यमाणश्लोकेन बहुव्रीहिसमासं प्रतिपादयन्नाह,—

नरेंद्र ! विद्रावितदोष ! दत्त-
दाना दरिद्रा अपि पीतदौःस्थ्याः ।
त्वया कृता भूरिधना अनंत-
ज्ञान ! द्विपान् सक्षम ! मङ्क्षु मासान् ॥ ४ ॥

टीका—हे नरेंद्र ! हे विद्रावितदोष ! हे अनंतज्ञान ! हे सक्षम ! त्वया दरिद्रा अपि लोकाः इत्यध्याहार्यं दत्तदाना पीतदौःस्थ्या भूरिधना द्विपान् द्वादश मासान् यावत् इत्यध्याहार्यं मङ्क्षु शीघ्रं यथा स्यात्तथा

१ रक्षायां क्षमो रक्षाक्षमः तत्सम्बुद्धौ हे रक्षाक्षम ! इति सप्तमी तत्पुरुषोऽपि ज्ञेयः ।—संशोधक

कृता इत्यन्वयः। हे नतेंद्र ! नता इद्रा य इति नतेंद्र इति द्वितीयाबहुव्रीहिः १ विद्राविता दोषा येन स विद्रावितदोषस्तत्सबुद्धवित्यत्र तृतीयाबहुव्रीहिः २ दत्त दान येभ्यस्ते दत्तदाना इत्यत्र चतुर्थीबहुव्रीहिः ३ वीत दौःस्थ्य येभ्यस्ते वीतदौःस्थ्या इत्यत्र पचमीबहुव्रीहिः ४ भूरि धनं यषा ते भूरिधना इत्यत्र षष्ठीबहुव्रीहिः ५ अनत ज्ञान यस्मिन्नय अनतज्ञानस्तत्सबुद्धावित्यत्र सप्तमीबहुव्रीहिः ६ सह क्षमया वर्त्तते यः स सक्षम इत्यत्र सह पूर्वेण बहुव्रीहि ७। द्वि षट् द्विषा "प्रमाणीसख्याड्ड" इति सूत्रेण डप्रत्यय इति "सुज्वार्थे सख्या सख्यया सख्येये बहुव्रीहिः" समासो भवति इति सूत्रेण द्वादशार्थे बहुव्रीहिरष्टमो भेद. ८ इति ॥४॥

वक्ष्यमाणपद्येन अवशिष्टबहुव्रीहिं द्विगु च प्रतिपादयन्नाह,—

द्वित्रैर्भवैर्मुक्तिमना द्विपाद्या-
स्तव त्रिपूजां विदधत् त्रिसंध्यम् ॥
कल्याणकानां जिन ! पंचपर्वी-
माराध्य भव्यः क्षिपतेऽष्टकर्म ॥ ५ ॥

टीका—द्वौ वा त्रयो वा द्वित्रा', "प्रमाणीसख्याड्ड." इति अय नवमो भेदः सुज्वार्थेति सूत्रेण विकल्पार्थः समासः ९। प्रधानपदयोरपि यच्छब्देन बहुव्रीहिः समासो भवति यथा मुक्तौ मनो यस्य स मुक्तिमना इति दशमो भेदः बहुव्रीहि. १०। अथ द्विगुसमास' हे जिन ! तव द्विपाद्यास्त्रिपूजा विदधत् कल्याणकाना पचपर्वीमाराध्य द्वित्रैर्भवैर्मुक्तिमना भव्यो अष्टकर्म क्षिपते इत्यन्वय.। द्वयोः पादयोः समाहारः द्विपादी तस्या द्विपाद्या. द्विपादीति "द्विगो"रिकारातत्त्वान्नित्य ङी स्यात्। त्रिपूजा त्रिसध्यमित्यादौ पचपर्वी अष्टकर्म इत्यादौ "द्विगौ अन्नतावताभ्या" विकल्पेन ङी. अन्यस्तु सर्वो नपुसक इति वचनाच्छेप सर्वं स्वरात

व्यंजनार्थ च नपुंसके ज्ञेयं । क्षिपत इत्यत्र प्रेरणफलवति कर्तर्यात्मनेपदं तुदादेश, अष्टकर्मक्षयान्मुक्तिप्राप्तिफलं । विदधदित्यत्र विपूर्वधाञ् धातु., शतृप्रत्यये द्वित्वे नोते च भंतो नो लुगिति नलोपे विन्धदिति सिद्धम् ॥ ५ ॥

साम्येन पश्यँस्त्रिजगद्विवेकी
श्रयन् प्रभो ! पंचममिस्युपैति ।
अपास्य सप्तम्यपिसिद्धिमध्ये
सिद्धं जवेनोपमवादुपेशम् ॥ ६ ॥

टीका—हे प्रभो ! साम्येन त्रिजगत् पश्यन्, एवं पंचसमिति श्रयन् सप्तमि अपास्य विवेकी नर उपमवान्(त्) अपिसिद्धिमध्ये सिद्धं उपेशं यथा स्यात्तथा जवेन वेगेन उपैति गच्छतीत्यर्थ इत्यन्वय । शेषं स्व-रांतं व्यंजनांतं क्लीबे ज्ञेयमिति वचनात् त्रयाणां जगतां समाहारस्त्रिजगत् पंचानां समितीनां समाहार पंचसमिति, सप्तानां भीनां समाहार सप्तमि इत्यादौ सर्वत्र क्लीबत्वं तत्र क्लीबे ह्रस्व । अनतो लुबीति द्वितीया-स्लोप सिद्ध । अपिसिद्धिमध्ये ईशस्य समीपं उपेशं वीतरागसमीपं इत्यर्थ अत्र 'विभक्तिसमीपसमृद्धि" इत्यादिसूत्रेणाव्ययीभाव । सिद्धीनां मध्ये मध्येसिद्धिरित्यत्र पारे मध्येत षष्ठी वेति " षष्ठीसमास । उदाहरणत्रयेऽपि क्रियाविशेषणत्वात् । अथवा विवक्षात कारकाणीति न्यायादुदाहरणत्रये सप्तमी कर्म वा अव्ययादिति विभक्तीनां लोप । आका-रांताव्ययीभावस्याप्रस पंचमीवर्जविभक्तिनामम् स्यात् तदुदाहरणं उपेशं इति ज्ञेयं पंचमीवर्जनादुपभवानि (क्षिति) प्रत्युदाहरणं चेति ॥ ६ ॥

भवेऽकुमायोपमवद्यपेर्ट,
भये सनाथोऽस्मि नमोऽस्तु दोषा ।
दूरे प्रमायस्य गुरुः सुर्श मे
विद्यार्च्य ! श्रीश्रीकृष्णपद्विपादे ॥ ७ ॥

टीका—हे विश्वार्च्यधीश्रीकृदुपद्विपादे ! भवतः समीपमुपभवत् शुभाय भवेत् १ उपभवद्यथेष्टं श्रये २ उपभवदह सनाथोऽस्मि भवत्समीपेनाह स्वामिवानहमस्मीत्यर्थः ३ उपभवन्नमोस्तु ४ उपभवद्दोषा दूरे सतु ५ उपभवत्प्रभावो गुरुरस्ति ६ च पुनरुपभवद्भवत्समीपे सुखमस्तीत्यन्वय· ७ अत्र अन्यस्वरातव्यजनातेभ्यः सप्तविभक्तीनामनुक्रमेण लोपस्योदाहरणानि ज्ञातव्यानि । भवत· समीप उपभवत् इत्यव्ययीभावः सर्वविभक्तिषु दर्शितः । एव पट्समासोदाहरणानि। अथ सक्षेपतः पट् समासानाह,—विश्वार्च्यधीश्रीकृदुपद्विपादे इति पदे धीश्च श्रीश्च धीश्रियौ अय द्वंद्वः, विश्वेन अर्च्ये विश्वार्च्ये इति तत्पुरुप., विश्वार्च्ये च ते धीश्रियौ चाय कर्मधारय , विश्वार्च्यधीश्रियौ करोतीति विश्वार्च्यधीश्रीकृत्, द्वयोः पादयो समाहारः द्विपादीति द्विगु. द्विपाद्या समीपमुपद्विपादि क्लीबे न्हस्व अय अव्ययीभाव विश्वार्च्यधीश्रीकृदुपद्विपादि यस्य स विश्वार्च्यधीश्रीकृदुपद्विपादि इति वहुव्रीहि । एते सक्षेपत षट् समासाः कथिता ॥ ७ ॥

मुक्त्वा भवं सौख्यमवाप्तुमंगी
धीमाँस्त्यजन् मोहमघस्य हंता।
यो मुच्यमानस्तमसा शिवीयेत्
त्वत्सेविताकाम्यतु सोऽत्र नेतः! ॥ ८ ॥

टीका—भव मुक्त्वा सौख्यमवाप्तु मोह त्यजन् अघस्य हता तमसा मुच्यमान· यो धीमान् शिवीयेत् हे नेत· ! अत्र भुवि स पुरुषः त्वत्सेविताकाम्यतु इत्यन्वय । प्राक्काले क्त्वाप्रत्ययः मुक्त्वा। अवाप्तये अवाप्तु “ क्रियाया क्रियार्थाया तुम् ” अगमस्यास्तीत्यगी यथानेकस्व-

रादिन् दीर्घश्च भंगी प्राणी । धीर्मतिरस्ते यस्यासौ धीमान् "तदस्यास्त्यस्मिन्" इति मतुप्रत्ययः "उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः" इति नुम् "हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्" इति सलोपे "संयोगान्तस्य लोपः" इति तलोपे दीर्घे च धीमान् । त्यज हानौ त्यजतीति त्यजन् शतृप्रत्ययः अत्वसन्तस्य चेति दीर्घे च । मोहं मोहनीयं कर्म । हनक् हिंसागत्योरिति हन्तीति हंता घस्तृच् चौर (?) अघस्य पापस्य, "कृत कर्मणीति" षष्ठी । मुच्यमान इत्यत्र मुच्लृ मोक्षणे इत्यस्य अतोऽम् अतोमोक्षिमुपमादिन् (?) केन तमसा । शिवं इच्छेत् शिवीयेत् अमात्ययात् "क्यच्छेति" क्यच्प्रत्ययः क्यचि दीर्घे च, त्वां सेवते इत्येवं शीलस्त्वत्सेवी अजाते शीले णिन् त्वमावेकवचने इति मातावयवस्य युष्मदस्त्वादेशो त्वत्सेविनो भावस्त्वत्सेविता "भावे त्वतलौ" अनेन तल्प्रत्ययः तदन्ताट्टाप् त्वत्सेवितामिच्छतु त्वत्सेवितास्म्यतु "द्वितीयायां काम्य" इति काम्य । पंचमीनन्तातुम्, इन्मतुभन्तुचमानशक्यन्णिन्तल्काम्यादीनामुदाहरणानि ज्ञेयानि ॥ ८ ॥

> क्षेमेषु प्रवत्सु घनायमानो
> हित पितेवामृतवद्दुराप ।
> मम प्रभो ! मम्यतरं त्वयूत्यौ
> भावं जयानंदमय ! प्रदेयाः ॥ ९ ॥

टीका—हे प्रभो ! हे जयानन्दमय ! पुष्कलासु क्षेमेषु मंगलेषु किंविशिष्टेषु घनायमानः पितेव हितः अमृतवद्दुरापः मम्यतरं त्वमत्यौभावं मम प्रदेया इत्यन्वयः । प्रक्षा प्रभाषरीति प्रक्षीषि "सत् क्विप्" प्रक्षतीति क्वीबे शतृप्रत्ययः तेषु प्रक्षत्सु । क्षेमेषु किंविशिष्टेषु घन इवाचरसि घनायते इति घनायमानः । आन मोति च । दु खेनाप्यते इति दुरापः "दुःसुगृष्वापर्थे खल् प्रत्ययः" । न सम्मस्य असमभूत्य असमभत्यस्य

श्रीपार्श्वनाथसमस्यास्तोत्रम् ।



श्रीपार्श्वनाथं तमहं स्तवीमि
त्रैलोक्यलोके प्रणिधामधाम ।
सामोदमुद्भासि यदीयकीर्ति
यामामुखं चुंबति कार्तिकेया ॥ १ ॥

तैरश्मपयोगेन विवेकलेक
मुक्तास्ति या साऽपि जिनावतंस ! ।
विलोकिते कांतिकलत्स्वदास्य
चन्द्रोदये मुञ्चति चक्रवाकी ॥ २ ॥

पुरः प्रकीर्णानि कपोलपाली
तले तवाच्छे प्रतिबिम्बितानि ।
निभाल्य संदिग्ध बुधो जन किं
चन्द्रस्य मध्ये कदलीफलानि ॥ ३ ॥

यैर्निर्मितैः पञ्चशरेण चक्रे
कठ कुठार कमठ ठकार ।
अकीर्तिनाट्यस्य च नांदितोऽलं
साम्यं नय तेषां सुसदां त्वयास्तु ॥ ४ ॥

अभव्यदर्शमेव्यतयाज्ञमाजो
येषां त्वदास्ये सुभगेऽपि दृष्टे ।
संतापसंपत्तिरुपैति तेषां
मर्थं शशी वह्निकणान् प्रसूते ॥ ५ ॥

त्वद्दानलीलादलितप्रतापो
देव! द्युकुंभस्तव शक्तिमाप्तुम् ।
भृगोः पतन्नादमिमं तनोति
ठंठं ठठं ठंठ ठठं ठठं ठः ॥ ६ ॥

जनिमहे जिन! ते सवनोदकैः
प्रसृमरै रमरेश्वरभूधरे ।
विदलितेषु नगेषु किलाभवत्
उपरि मूलमधस्तरुपल्लवाः ॥ ७ ॥

रसना स्तवने नयनं वदने
श्रवणं वचने च करौ महने ।
तव देव! विशां कृतिनां सततं
रमते रमते रमते रमते ॥ ८ ॥

विश्वैकनायक! कला न हि या त्वदर्हा
कार्ये न या च कविता भवत स्तवाय ।
लग्नो न यस्त्वयि भवो विभवश्च सा किं
सा किं स किं स किमिति प्रवदन्ति धीराः ॥९॥

अहीशेऽधस्तात्त्वमुपनमति जेतुं दितिसुतं
समादाय क्रोधान्मणिमधुपकांतं किल धनुः ।
अधोऽधो मैनाक चरति जगतीनाथ! समभूत्
धनुःकोटौ भृगस्तदुपरि गिरिस्तत्र जलधिः॥१०॥

जगच्चक्रं चक्रे चरणपरिचर्यैकरुचिना-
मुना त्वद्दासेन स्वमनसि समंतान्निगमनम् ।
तदान्यो देवस्त्वां तुलयति विभो! चेद्भुवि भवेत्
धनुःकोटौ भृंगस्तदुपरि ।गीरिस्तत्र जलधिः ॥११॥

मीनां रूपवतीं मतीं जिनपतर्ल्लक्ष्मिलीलावतीं
हित्वा रूपरसोज्झितां रमयसे यन्मुक्तिसीमंतिनीम् ।
तन्नूनं भवताऽपि तीर्थपतिना स्वेसत्स्फुटं निर्ममे
युक्तायुक्तविचारणा यदि भवास्तन्नाथ दत्तं अलम् ॥११॥

इत्थं योगींद्रचेत कमलकमलभूर्मुक्तिकामारहंस
कल्याणांकूरकंद भवमहिमरमामंजरीवल्लरीभीः ।
मंत्रध्वन्मेयबीजं भुवनजनमनोल्लाससलीलावतंस
श्रीपार्श्व स्वात्मसंस्वात्तवकुसुमकृताभ्यर्चनोऽस्मी-
ष्टलभ्यै ॥ १२ ॥

इति पार्श्वनाथनमस्कारस्तोत्रम् ।

श्रीगुणभद्रविरचितं

चित्रबंधस्तोत्रम् ।



ये तीर्थरथनेतारः संत्यत्र वृषभादयः ।
चित्रबंधेन तान् स्तौमि हारिणा चित्रकारिणा ॥१॥
वृषभो वः सतां कांतां वृद्धिं देयादनिंदिताम् ।
भावयामास यः स्वीयां भासं दमितदुर्नयाम् ॥ २ ॥

छत्रम् ।

न जितस्त्वं जिनाधीश ! कर्मौघैरजितो वरः ।
रसरक्तैरसारं मां रक्षं रक्षरतेऽरत ॥ ३ ॥

चमरं ।

संभवो वोऽस्तु सौख्याय शंभवैधानलोऽभयः ।
सद्धर्म कर्ममोक्षाय समवीवदद्त्र यः ॥ ४ ॥

बीजपूर. ।

नक्षरश्रीश वादीननदीवार्द्धेऽभिनंदन ।
नंद नंद धनादाननदानाद्रक्ष रक्ष नः ॥ ५ ॥

चतुरारचक्र ।

सुमते मतिमन्नाम त्वमकाम यमद्रुम ।
नमस्याम इमं धाम शमस्य महमक्रमं ॥ ६ ॥

बीजपूरकमर्घ्यं ।

पद्मासेन पूतो येन समयो नयपावन ।
स्वलोकेऽस्मिन् कृतामान पूयाज्जिनः स नो मनः ॥ ७ ॥

नारङ्गकमर्घ्यं ।

सुपार्श्वो मम निःकाम सुमतिं ददतां प्रभु ।
सुखाय्यास्तु शुभ येन सुप्रोक्तममलं जने ॥ ८ ॥

स्वस्तिकं ।

सतः कुवलयानंदं दृष्ट्वा सिर्थं विधोरिव ।
सैष चन्द्राभ ते प्राप्तु केऽस्मृतं न शुभौकसः ॥ ९ ॥

फलं ।

पुष्पाभ्यश्रीपुष्पदन्तोऽयं मोक्ता मुक्तेरनेकधः ।
संस्कुर्वैदुमुक्तामो ममध्यानाय नो वपुः ॥ १० ॥

क्रमुकं ।

श्रीवृक्षांकस्तु सभीक ईडितो बलिभिर्धने ।
शीतल शीतलां नेयात्काममर्दिन् मम प्रभुः ॥ ११ ॥

श्रीफलं ।

योऽजिनासससामान श्रेयसे सुरसंस्तन ।
तव ज्ञानाघनानस तत्र सिद्धं परं रसम् ॥ १२ ॥

नालिकेरः ।

वासुपूज्यः सुरैः स्नात्वा मेरौ जन्मनि यो नुतः ।
तं जिनं न जितं वंदे देवतार्पिततार्पितम् ॥ १३ ॥

त्रिशूल ।

विमल त्वामहं चायेऽनंतसन्मतये जिनं ।
नवानंदद विख्यात तथ्यं तव वचोधनं ॥ १४ ॥

श्रीकरी ।

अनंतज्ञानसंयुक्त त्यक्तमंडन पावन ।
नमाम्यनंतनामानं त्वां जिनं जन्मभंजनं ॥ १५ ॥

हल ।

धर्मनाथ कुवादीश सर्वपक्षक्षयंकर ।
रसं पीत्वात्र ते वाचः प्राप मोक्षक्षितिं बुधः १६ ॥

वज्र ।

नयशक्त्योद्धृतो येन नरकाज्जनकोऽन्यथः ।
शमास्पदः स वः शांतिः शांतिं कुर्याद्यमाशयः ॥१७॥

शक्ति ।

कुंथुनाथ कुरूद्भूत कुंथुमुख्यदयास्पद ।
ददस्व धर्मचक्रेश शं नित्यं मम सद्यशः ॥ १८ ॥

भाल ।

त्वयार रविसंकाशतपसा साधितः स्मरः ।
तथारिचक्रं चक्रेण मां त्रायस्व यतीश्वर ॥ १९ ॥

चरः।

कन्दर्पदर्पकालीन मल्लं त्वं मलजिद्भुवि ।
विवेककन्दविर्या न संप्रयच्छ प्रमाधिकाम् ॥ २० ॥

ककारः ।

हित्वा मोहं य आत्मन परमार्थं ममार तम् ।
जिनं सुव्रतकं नौमि वर्णसाररमार्णवम् ॥ २१ ॥

रथः ।

कमलांक कलानेककलितः कंकरो मक ।
कं नमिकः करोत्येके कस्यास्माकं कलं सक ॥ २२ ॥

कमलं ।

पापान्मुक्ताय मां देव भावेष्वस्थिर धीवर ।
रथवीरं जिनं मेने नेमे त्वां शंखलक्षकरम् ॥ २३ ॥

शंखः ।

पादसेवनया तापाभिर्गतास्तव भूमिपा ।
पार्श्वार्हं न कर्थ फटाक्षमस्तुम्यं तु कः स्तुतः ॥ २४ ॥

नागस्तुतिः ।

पाहि मां भवतो वीर त्वीवोऽधिकस्सम्रम ।
भणंति सन्मतिस्त्वेन नत्वेति माऽन्न सच पा ॥ २५ ॥

ग्राम्यां वाहनम ।

पाहि मां भवतो वीर रवीतोऽधिकसत्प्रभ ।
भणंति सन्मतित्वेन नत्वेति भ्राऽत्र सत्त पाः ॥२६॥

मुरजबधोऽपि ।

छत्रौघाकृतिभिर्मृदंगनिधनैश्चित्रैर्विचित्रार्थिनीं
श्रीमंन्मगलकारिणां सुवृषभादीनां जिनानां स्तुतिं ।
यो नाधीत इमां स्तुतिं विनयतो मेधाविना संस्कृतां
पुंनागः कवितां स याति नृपतिः स्वर्गश्रियं चाश्नुते २७

पंचमंगलयुक्तानां पदान् वंदे जिनेशिनाम् ।
भागं देवादिबंधानां भालजित्यवृतेशिनाम् ॥ १ ॥

छत्रबध. ।

सर्वसद्गुणसंवासः सदाचारस्त्वनालसः ।
सद्धर्मो गुणभद्रः स संपायाद्वो महीनसः ॥ २ ॥

चमरं ।

मतिमंतं नमस्यामः मलेनास्पृष्टमुत्तमम् ।
मंगलाप मुनिं चेमं महामित्रद्विषोः समम् ॥ ३ ॥

चमरं ।

तर्काद्यर्थविशेषसार्थगणने दक्षः सतामग्रणीः
नंद्याच्छ्रीगुणभद्रकीर्तिरमदो मोहांधकारोष्णगौः ।
बालत्वेऽप्यजडं कविं यतिगुणश्रीशं जगुर्यं बुधाः
शुंभत्कीर्तिममुष्य कामदमिनं बौद्धादिमिथ्याहरं ॥४॥

कलश ।

इति चित्रबधस्तोत्र समाप्तिमगात् ।

महर्षिस्तोत्रम् ।



निर्वेदसौष्ठवतपश्चपुरात्मभेद
संवित्तिकल्पतरुमुदोद्भवदिव्यशक्तीन् ।
बुद्धयौषधीबलतपोरसविक्रियर्द्धि
क्षेत्रक्रियर्द्धिफलितान् स्तुमहे महर्षीन् ॥ १ ॥

ये केवलावधिमन पर्ययिणो बीजकोष्ठबुद्धियुत
संभिन्नश्रोतृतया मतिश्च पदानुसारितया ॥ २ ॥

दूरस्पर्शनरसनघ्राणश्रवणावलोकनसमर्था ।
सदशचतुर्दशपूर्वाष्टांगमहानिमित्तज्ञाः ॥ ३ ॥

प्रत्येकबुद्धवादिप्रज्ञाश्रमणाश्च बुद्धिऋद्धिपतीन् ।
दीप्ततपोऽस्तविषघ्नानष्टाङ्गधराऽपि तानीडे ॥ ४ ॥

रोगाः सर्वे विण्मलामर्शजल्ल-
क्ष्वेलैः सर्वेणापि शाम्यंति येषां
सिद्धा दृष्ट्यास्यविषत्वेन ये च
शाम्यतां नस्तेऽष्टधाप्यौषधीशाः ॥ ५ ॥

आप्याय सखिलश्रुतार्थममलं येऽन्तर्मुहूर्ते क्षमा-
स्तत्कृत्स्नमधीयते श्रुतमविच्छिन्नं पठंतोऽपि च ।
उत्पेसान्ति न कण्ठहानिमखिलं लोकं रमंतऽन्यतोऽ-
प्यगुरुण्या न्यसितुं बलाय बलिनस्तेषाऽपि ते संतु न ॥६॥
चरंति घोरमद्भुतमदीर्घं उग्र तपो घोरगुणं त्रिगुप्ताः ।
ब्रह्मापि ये घोरपराक्रमाश्च ते सप्तधाऽप्युग्रतपसस्तर्पंतु ॥७॥

वाग्दृष्टी कुरुतोऽगिनां लघुविषावेशेन मृत्युं क्रुधा
यैर्युक्ते घृतदुग्धमध्वमृतवद्यत्पाणिपात्रार्पितम् ।
स्याद्दुर्भोजनमप्युतस्विदुदिता वाचानुगृह्णंति ये
तद्वत्तान् कृपयास्यदृग्विषघृताद्यास्राविणः स्तौमि तान्॥८॥
वंदेऽणिममहिमलघिमगरिमैश्याप्तिवशिताप्रतीघातैः ।
प्राकाम्यकामरूपित्वांतर्धाद्यैश्च विक्रियर्द्धिगतान् ॥ ९ ॥
न क्षीयते चक्रिबलेऽपि भोजिते
यद्वत्तसेखंत ? दहः सुरादयः ।
वसंति यद्धाम्नि चतुःकरेऽपि
ते भांतूभयेऽक्षीणमहानसालयाः ॥ १० ॥
जंघाश्रेण्यग्निशिखाजलदलफलपुष्पबीजतंतुगतैः ।
चरणनाम्नः स्वैरं चरतश्च दिवाऽस्तु विक्रियर्द्धिगतान्॥११॥
इत्यन्यतद्भवतपोमहिमोदितर्द्धी-
नाचार्यपाठकयतीन् जगदेकभर्तॄन् ।
वंदारुदाश्रयति कामपि भावशुद्धिं
क्षिप्रं यया दुरितपाकमपाकरोति ॥ १२ ॥

इति महर्षिस्तुति संपूर्णा ।

श्रीपार्श्वनाथस्तोत्रम् ।

लक्ष्मीस्तोत्रापरनाम ।

(सटीकम् ।)

लक्ष्मीर्महस्तुल्यसती सती सती प्रवृद्धकालो विरतो रतो रतो ।
जरारुजाजन्महता हता हता पार्श्वं फणे रामगिरौ गिरा गिरौ ॥

टीका—ट इति निश्चयेन हे साधो ! त्वं पार्श्वं फणे पार्श्वनाथसमीपे गच्छ स्तुतिं कुरु । कया ? गिरा वाण्या कृत्वा । क ? रामगिरौ नामध्येयपर्वतो कोऽर्थो पार्श्वे ? लक्ष्मीर्महस्तुल्यसती कोऽर्थ सदाकाले वर्तमाने सत । पुन कथंभूते ? सती शोभमाने । पुन कथंभूते पार्श्वे ? सती शाश्वते । अत श्रीपार्श्वनाथात् प्रवृद्धकालो विरत कोऽर्थ प्रचुरकालो गत रतो येन महता पार्श्वेन जरारुजापद्धता, किंविशिष्टा जरारुजापत् ? हता कोऽर्थ केनापि न हता श्रीपार्श्वनाथस्य जिनेन्द्रस्य दत्ताम्बिका गृहीत्वा विना न केनापि जरारुजापत् हता ॥ १ ॥

अर्चेयमाय सुमना मनामना य सर्वदेशो भुवि नाविना विना ।
समस्तविज्ञानमयो मयोमयो पार्श्वं फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ ॥२॥

टीका—अहं आपि प्रथमं पार्श्वं अर्चेयं पूजयामि, क ? तथा रामगिरौ पर्वते पूर्वोक्तप्रकारेण । कथंभूतोऽहं ? सुमना कोऽर्थ आर्तरौद्ररहितमना तच्छोभनचित्त । पुन कथंभूतोऽहं ? मनामना कोऽर्थ मनान् यत् (ये)सर्वज्ञान् न मन्यंते ते मनामना तान् अहं त्यजामि तान् पंचविधमिथ्यात्वान् त्यक्त्वा (त्यक्त्वा) श्रीपार्श्व जिनं पूजयामि य पार्श्वनाथ सर्वेषु देशेषु वर्तते इति सर्वदेश पुन कीदृश श्रीपार्श्वनाथ ? अविना कोऽर्थ स्वामिना विना यस्य पार्श्वनाथस्य स्वामि (मी) नास्ति, पुन कीदृश पार्श्वं ? भुवि पृथिव्यां विश्वे

ा पुरुष प्रधानीकपुरुषः । पुन. कीदृश पार्श्व. ? समस्तविज्ञानमयः कोऽर्थ· विशेषेण समस्तनवपदार्थाना जीवाजीवादिकरूपारूपि-स्त्वादिषु केवलज्ञानेन कृत्वा परमानन्दै कृत्वा जानति पश्यति। पुन· कीदृशः ? मया कोऽर्थ वाह्याभ्यन्तरलक्ष्म्या कृत्वा शोभित· । पुनः कीदृश. ? उमया कोर्थ अत्यतलावण्यकातिसौभाग्यादिभि. शोभया कृत्वा उपलक्षित. मण्डित· ॥ २ ॥

विनेष्ट जंतोः शरणं रणं रणं क्षमादितो यः कमठं मठं मठं ।
नरामरारामक्रमं क्रमं क्रमं पार्श्वं फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ ॥३॥

टीका—य पार्श्वनाथ कमठ विनेष्ट शिक्षयामास। किंविशिष्ट कमठं ? मठ कोर्थ मठयति कुतापसाना स्वामीत्यर्थ । पुन. कीदृश कमठ ? मठ कोर्थ· सगर्द अष्टमदसहित। कथंभूत पार्श्व ? क्षमादितो गुणत जतो· शरण कोर्थः क्षमादिगुणसयुक्ताना प्राणिना शरणीभूत । पुन कीदृश पार्श्वं ? रण कोर्थ तत्वार्थभाषिण । कीदृशं कमठ ? रण कोर्थ सग्रामकारक। पुन कीदृश पार्श्व ? नरामरारामक्रम कोर्थ मनुष्यदेवाना क्रीडास्थानी-यचरणयुगल । पुन कीदृश पार्श्वनाथ ? क्रम कोर्थ उग्रवशे उत्पन्न इक्ष्वाकुवश इत्यर्थ । पुन कीदृश पार्श्वं ? क्रम क्रामत्यागत्या क्रामति भव्याना हृदयानि कोर्थ· आसन्नभव्याना हृदयानि उल्लसति ॥ ३ ॥

अज्ञानसत्कामलतालतालता यदीयसद्भावनता नता नता।
निर्वाणसौख्यं सुगता गतागता पार्श्वं फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ ॥

टीका—अज्ञाने सति सत विद्यमाना ये मनोरथा कामा· शब्दादयो देहादिकभोगा पुत्रकलत्रगृहधनादिका. तेषा भोगाना लता वल्ली स वल्लीमे-(ए) व आल अनर्थ तस्य अनर्थस्य योऽसौ तालः कोर्थ ताडन स्यात् स क श्रीपार्श्वनाथ तेन साधनेन कृत्वा ता लक्ष्मीर्येषा नराणा प्रवर्त्तते अज्ञान-

सत्कामस्तास्ताख्ता कथ्यते । यस्य पार्श्वनाथस्य संबंधिनी भक्तपुरुषा शुभभावेन नता नम्रीभूता सन्त तेषां नता कथ्यते । कीदृशा भक्ता पुरुषा ' नता कोर्थ सर्वैरपि नमस्कृता सर्वलोके नमस्कृता । पुन कीदृशा भक्ता ' सुष्ठु अतिशयेन निर्व्वाणसौरम्यं गता । पुन कीदृशा भक्ता पुरुषा ' गतागता कोर्थ गतं ज्ञानं अगतं अनष्टं येषां ते गतागता ज्ञानसहिता इत्यर्थ, अथवा अगता कोर्थ ! गतं नष्टं अगतं अज्ञानं येषां ते अगता ज्ञानसहिता पुरुषा इत्यर्थ, वाथवा आगता कोर्थ गतं नष्टं अगतं अज्ञानं येषां ते आगता अज्ञानरहिता पुरुषा इत्यर्थ । पार्श्व धर्मे राम पूर्व्वोक्त अर्थ इति ॥ ४ ॥

विवादिताक्षेपविधिर्विधिर्विधिर्बभूव सर्प्पापहरी हरी हरी ।
त्रिज्ञानसज्ञानहरोहरोहरो पार्श्व फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ ॥

टीका—पुन कीदृश पार्श्वनाथ ' विवादिताक्षेपविधि कोर्थ विवादिनां या विपैव लक्ष्मीस्तस्या लक्ष्म्या य क्षेप अस्वीकरणं तत्र अस्व-करणे विधि व्यापारो यस्य स व्यापारो भवति कोर्थ यस्य पार्श्वनाथस्य परवादीनां विवाद्यां विभ्ये सा विद्या तुच्छकरणाय व्यापारो अतिशक्तिरस्ति । पुन कीदृश पार्श्व ' विधि कोर्थ निज आचारत् तत्पर (निजाचा-रात्तत्पर) आचाररूप । पुन कीदृश पार्श्व ' विधि कोर्थ चतुर्विध-संघस्य जिनधर्म्मेणोद्योतकर्त्ता आस । पुन कीदृश पार्श्व ! सर्प्पापहरी कोर्थ सर्प्पाणां विषं श्रीपार्श्वनाथस्य नामस्मरणेन क्षयं यातीति सर्प्पापह । पुन कीदृश पार्श्व ' हरि इंद्र (ई) लक्ष्मी । पुन हरि सूर्य, ई कामः, पुन हरि वायु एते सर्व्वे ई गतौ याती प्रयोगात्व यान्ति गच्छंति सेवंति (ते) यं पार्श्वनाथं स सर्प्पापहरीहरीहरी । पुन कीदृश पार्श्वनाथ ! त्रिज्ञान कोर्थ य पार्श्वनाथो गर्भावतारसमये गर्भमध्ये मतिश्रुतावधि इति त्रिज्ञानलक्षण । पुन कीदृश पार्श्वनाथ ' सज्ञानन विराजित

सज्ञान कोर्थः केवलज्ञानेन कृत्वा भव्याना चित्त हरतीति त्रिज्ञानसज्ञानहरः पुन कीदृशः पार्श्वनाथ. ? अह· कोर्थ· सुष्ठु केवलज्ञानप्रकाशकः ॥५॥

यद्विश्वलोकैकगुरुं गुरुं गुरुं विराजिता येन वरं वरं वरं ।
तमालनीलांगभरं भर भरं पार्श्वं फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ ॥

टीका—कथभूत पार्श्वं ? यत् सचरणशीलो विनाशीय ईदृशो विश्वलोकः समस्तलोक. तस्य लोकस्य एकोऽद्वितीयो ज्ञानप्रकाशक. गुरु· श्रीपार्श्वनाथः त पार्श्वनाथं । पुन· कीदृश पार्श्वनाथ? गुरु गुरुतर गरिष्ठ । पुनः कीदृश पार्श्वनाथं? गुरु वाचस्पतिं वागीश । पुन· किंविशिष्ट पार्श्वनाथं ? भर कोर्थ पोषक जगत्पोषकं । पुनः कीदृशं पार्श्वनाथ ? भर कोर्थ भातीति भर· वन्हिरूपः तं भर कांतितेजवान् इत्यर्थ । पुन· किंविशिष्ट ? तमालनीलागभर तमालनील अंग तमालवन्नील अग ब्रिभर्ति धारयतीति तमालनीलागभर त । पुनः कीदृश पार्श्वं ? विराजित·(त) । पुन कीदृश पार्श्वं ? वरं मुक्तिलक्ष्म्या वरं शील स्वभावं । पुन कीदृश पार्श्वं ? वर निजोपार्ज्जिततत्वज्ञानस्य विभाग स्वभक्तेषु ददातीति वर, पर तु मूककेवलिना तत्वज्ञान न ददाति, मूककेवली कोर्थ ? यावत् ध्वनिं न उच्छलति तावन्मूककेवली कथ्यते ॥६॥

संरक्षितो दिग्भुवनं वनं वनं विराजिता येषु दिवै दिवै दिवैः ।
पादद्वये नूतसुरासुराः सुराः पार्श्वं फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ ॥७॥

टीका—यस्य पार्श्वनाथस्य दिग्भुवन दिशा एव भुवन आस्ति, पुन. वन जलकाय, पुन वन वनस्पतिकाय एषा त्रयाणा श्रीपार्श्वनाथ. सरक्षति रक्षा करोति । पुन यस्य पार्श्वनाथस्य पादद्वये नूता स्तुतिकर्त्तार पुरुषा सुराऽसुरा वर्त्तते, पुन सुरा सुष्ठु विराजते येषु नूतसुरासुरेषु, विराजिता क्क ? श्रीपार्श्वनाथचरणविषिये शोभमाना बभूव ये के दिवा स्वर्गे नरातु आगच्छत् यस्य पार्श्वनाथस्य पादद्वये ई काम वो वरुण आ विष्णु ई लक्ष्मीश्च वर्त्तते पुन. रा उत्कृष्टो दिवा प्रकाशं भ्रुवन्ति ॥ ७ ॥

रराज नित्य सकलाकला कला ममारतृष्णो वृजिनो जिनो जिनो।
संहारपूज्यं वृषभा सभा सभा पार्श्वे फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ॥८॥

टीका—यत्र पार्श्वनाथे अं अक्षा रराजते शोभते। पुन यत्र पार्श्वनाथे सकलाकला ज्ञानादिककला रराजते शोभते। पुन कला कीदृशी शोभते? ग्रासतसियनोज्ञकला शोभते, कथंभूत पार्श्वनाथ? ममारतृष्ण कोर्थ नि-ष्काम कामरहित। पुन कथंभूत पार्श्व? अवृजिन निष्पाप। पुन क-थंभूत पार्श्व जिनो कोर्थ कर्मजीवनसमर्थ त्रिधारत्नत्रये। पुन कीदृश पार्श्व? जिन जिनान् गणधरादीन् देवादीन् य पार्श्व स अवतीति [आराधयंतीति] स जिन। पुन कीदृश पार्श्वनाथ? सभा कोर्थ यस्य पार्श्व-नाथस्य सभा पूज्या बभूव के संहारा देवा आभरणै सह भूषिते देवै। तै देवै पूज्यं यस्य पार्श्वस्य सभा, सा सभा पुन कीदृशी? सभा [वृषभा] कोर्थः अमरदेवानाममरेन्द्राणां मुकुटरत्नतेजसा कृत्वा च पुना रत्नमयीसम-वशरणस्य कांत्या कृत्वा शोभिता सभा सा सभा॥ ८॥

शार्दूलविक्रीडितछंदः।

तर्के व्याकरणे च नाटकचये काव्याकुले कौशले
विख्यातो भुवि पद्मनंदिमुनिपस्तत्त्वस्य कोष निधि।
गंभीरं यमकाष्टकं पठति य संस्तूयसा लभ्यत
श्रीपद्मप्रभदेवनिर्मितमिदं स्तोत्रं जगन्मंगलं॥ ९॥

टीका—य पुमान् इदं पार्श्वनाथस्य स्तोत्रं पठति य पुरुष संस्तूयता कृत्वा संस्तवेन कृत्वा तावस्य कोष निधि लभ्यते। कथंभूतं स्तोत्रं श्रीपद्मप्रभदेवमुनिना निर्मितं निष्पादितं। पुन कीदृशं स्तोत्रं? जगन्मंगलं त्रिजगतमंगलदायकं। पुन कीदृशं स्तोत्रं? यमकाष्टकं गंभीरं कोर्थ तत्त्वादिकिन स्वरूपापरस्वरूपेण मंडिता अथव भुवि पृथिव्यां विख्यातो श्रीप

अनंदिमुनिपो विख्यातो बभुव। क² तर्कशास्त्रे न केवल तर्के चान्यत् व्याकरणेऽपि विख्यातोऽभूत्। पुनः नाटकचये समूहे नाटकशास्त्रसमूहे, पुनः काव्याकुले कौशले कोर्थ. महत्तनवरसै सह काव्यै· समूहे. कौशले प्रवीण-चतुरे अतः कारणात् पद्मनंदिमुनिः भुवि पृथिव्या विख्यातोऽभूत् ॥९॥

इति श्रीपद्मनंदिमुनिविरचित श्रीपार्श्वनाथस्तोत्र टीकासहित सपूर्णम्। *

---

* अस्य स्तोत्रस्य दशरा–मशरारूपा एकैव प्रेस-पुस्तिका संप्राप्ता सा तु 'बाबू जुगलकिशोरजी' इत्येतै· संशोधिताप्यतीवाशुद्धा। टीकापि विलक्षणा, भाषासाहित्यदृष्ट्याप्यशुद्धा ज्ञायते, शब्दानामर्थमपि पूर्णतया न प्रकाशयति। स्तोत्रमिद पद्मप्रभदेवनिर्मितमवभाति। अस्य सशोधने यो मम प्रमाद स क्षन्तव्य पाठकै।—सशोधकः।

नेमिनाथस्तोत्रम् ।



(अक्षरी नेमिजिनस्तुतिः ।)

मनोनान् नमोनेन नुममनामिमाननं ।
नेमनामानमननमं मुनिनामिनमानुम ॥ १ ॥
नमामानामनिम्नान मामानानामनामिनां ।
नामिने नामिनामोमे नमिनम्ने नमे नमः ॥ २ ॥
मने नाम्नामिन नाम नानानिम्नममानने ।
न्नुमेमिममोनेना मोमानामन्नममिमा ॥ ३ ॥
मिममन्मनमामानिमानिनीमाननोन्मना ।
नानानामीमननेमी मनोमनिममानिनां ॥ ४ ॥
मनोमुम्निम्नने नूनं मुममन्माननोननं ।
नुममे नोमुनानेमि नम्नाम्नोननमामनु ॥ ५ ॥
नोनमुन्माननमानेन मुनीनेनममाननं ।
मीनानमिनममेमी मनूनां नामिमीममां ॥ ६ ॥
मुनिनमे नेमि नानां निमाने नेमिमानिनां ।
नेमिनामा नमानाना मनोमान ममं नुम ॥ ७ ॥
नेमीनमननं नेमि नमनं नेमिनाननं ।
नेमि नाम्नो नमाम्नान मानानून नमीमम ॥ ८ ॥

इति स्तुतिंघे (?) पुरतः पठंते
नेमे निजव्यंजनयुग्मसिद्धिं ।
श्रीवर्द्धमानोदयशालिनस्ते
स्युः सिद्धिलब्धापरिभोगयेप्पा ॥ ९ ॥

इति नेमिनाथस्तोत्र सपूर्णम् ।*

---

* अस्य संशोधनं कापी-द्रूकापीरूप ।

श्रीमानुकीर्तिविरचितं

शंखदेवाष्टकम् ।

शुभमखवलयन्यो मोक्षकान्ताभिनन्द्यो
दलितमदनपाप प्राप्तकैवल्यरूपः ।
कुमतवनकुठार शंखरत्नावतारः
त्रिभुवननुतदेव पातु मां शंखदेवः ॥ १ ॥
अभिमतफलरूपो विमललोकप्रदीप
स्तुतिजनगणमूर्तिः स्फारकस्फारकीर्तिः ।
सुकृतजनसवासो मोक्षलक्ष्मीविलास
त्रिभुवननुतदेव पातु मां शंखदेवः ॥ २ ॥
अगणितमहिमेशो ज्ञानबोधोपदेशः
सहजपरमकायः प्राप्तनिर्वाणगेह ।
अधिगतपरमार्थो ज्ञानमज्ञानतीर्थः
त्रिभुवननुतदेव पातु मां शंखदेवः ॥ ३ ॥
गुणमणिगणधारो भव्यभाग्यावतारो
त्रिभुवनवसन्तो मोक्षलक्ष्मीसुकान्तः ।
त्यजतमलकलंको धौतसंसारपंक
त्रिभुवननुतदेव पातु मां शंखदेव ॥ ४ ॥
दिविजमनुजपूज्यस्त्यक्तमाभाग्यरागो
भुविजनिकरनाथः सर्वतत्त्वप्रकाशः ।

परिणतसुखरूपो निर्ज्जितः कालकूप-
त्त्रिभुवननुतदेवः पातु मां शंखदेवः ॥ ५ ॥
विगतजननदोपः सर्व्वभापाविभूपः
समवशरणनाथो जैनमार्गे सुतीर्थः ।
गणधरनुतराजः कोटिबालार्कतेज-
स्त्रिभुवन नुतदेवः पातु मां शंखदेवः ॥ ६ ॥
जितमनसिजरूपः कर्मनिर्म्मूलकोपः
विनयवनजभानुः वांछितः कामधेनुः ।
कुवलयवनमित्रो भारतीलोलनेत्र-
स्त्रिभुवन नुतदेवः पातु मां शंखदेवः ॥ ७ ॥
जिनपदकमलालिर्जैनभूते पिकालि-
र्मुनिपतिमुनिचन्द्रो शिष्यराजेन्द्रचन्द्रः ।
सकलविमलसूक्तिर्भानुकीर्तिप्रयुक्ति-
स्त्रिभुवननुतदेवः मातु मां शंखदेवः ॥ ८ ॥

इति शखदेवाष्टकम् ।

श्रीयोगीन्द्रदेवविरचितं

निजात्माष्टकम् ।



णिच्चं तेलोक्कचक्काहिवसयमहिया जे जिणिंदा य सिद्धा
सव्वे गंथत्थसत्था गमगमियमणा उवज्झायसूरिसाहू ।
सव्वे सुद्धप्पियादं अणुसरणगुणा मोक्खसंपत्तिरम्मा
सोहं झाएमि णिच्चं परमपयगओ णिम्मियप्पो णियप्पो ॥१॥
णिस्सो णिव्वायमग्गो णिरुवि णिरुवमो णिक्कलो णिक्कलंको
अव्वाबाहो अणंतो अगुरुगलहुगो णाणिमज्झावसाणो ।
सम्भावत्थो सयंभू गयपयपरिमलो सासओ सव्वकालं
सोहं झाएमि णिच्चं परमपयगओ णिम्मियप्पो णियप्पो ॥२॥
एक्को सम्माणणिम्हो विमलणहणिहो उड्ढगामीसहाओ
णिच्चो णाएयत्तो परसरसणिहो णियदेहप्पमाणो ।
सिद्धो सुद्धं सरुवो णिदुपरमगुणो अपखओ जो णिरक्खो
सोहं झाएमि णिच्चं परमपयगओ णिम्मियप्पो णियप्पो ॥३॥
ओईपं झाणगम्मो परमसुहमहो कम्मणोकम्ममुक्को
कायाकारो अबाधो फलिहकलसमसालेपपत्तो पवित्तो ।
समयाईगुणाढ्ढो गलियदुहपरासाणुबंधो विसुद्धो
सोहं झाएमि णिच्चं परमपयगओ णिम्मियप्पो णियप्पो ॥४॥
णोइंदियपुण्णपुंसो णिरविसयसुहालोयमाणो समाणो
णिद्देसो णिव्विसाओ मणवयणसमारंभसंबंधमुक्को ।

लोयालोयप्पयासो अविलयणिलयो णिव्विसेसो णिरीसो
सोऽहं झायेमि णिच्चं परमपयगओ णिव्वियप्पो णियप्पो ॥५॥
नादासंखप्पएसो समयमुवगओ णंतसोक्खावठाणा
छुत्तिण्हातीदभावो भवभयणभयो वंधमुत्तो अमुत्तो ।
अव्वत्तो णाणगेज्जो जरमरणचुदो जो परं वह्मरूओ
सोहं झायेमि णिच्चं परमपयगओ णिव्वियप्पो णियप्पो ॥६॥
सव्वण्णवण्णगंधाइयरविरहियो णिम्ममो णिव्विआरो
रूवातीदस्सरूओ सयलविमलसद्दस्सणण्णाणवीओ ।
इट्ठाणिट्ठप्पयोया सुहअसुहवियप्पा सया भावभूओ
सोहं झायेमि णिच्चं परमपयगओ णिव्वियप्पो णियप्पो ॥७॥
रूवे पिंडे पयत्थे ण कलपरिचये जोयिविंदेण णादे
अत्थे गंथे ण सत्थे ण करणकिरिया णावरे मंगचारे ।
साणंदाणंदरूओ अणुमहसुसुसंवेयणाभावपुव्वो
सोहं झायेमि णिच्चं परमपयगओ णिव्वियप्पो णियप्पो॥८॥

इति योगीन्द्रदेवविरचित निजात्माष्टक समाप्तम् ।

अमितिगत्याचार्यकृत

सामायिकपाठ ।

एकद्वित्रिहृषीकप्रमुखतो ये पंचधात्वस्थिता
जीवाः संचरता मया दशदिशंमिथ्याप्रमादात्मना ।
ते ध्वस्ता यदि लोटिता विघटिता संघट्टिता मोटिता
मार्गालोचनमोचिना जिन! तदा मिथ्याऽस्तु मे दुष्कृतं ॥१॥
अर्हद्भक्तिपरायणस्य विशदं जैनं वचोऽभ्यस्यतो
निर्विघ्नस्य परापवादवदने मूकस्य सत्कीर्तने ।
चारित्रोद्यतचेतसः क्षपयतः कोपादि विद्वेषिणो
देवाऽध्यात्मसमाहितस्य सकला सर्प्यंतु मे वासरा ॥२॥
आलस्याकुलितेन मूढमनसा सन्मार्गनिर्नाशिना
लोभक्रोधमदप्रमादमदनद्वेषादिदिग्धात्मना ।
यद्देवाचरितं विरुद्धमधिया चारित्रशुद्धेर्मया
मिथ्यादुष्कृतमस्तु भो जिनपते! त्वत्प्रसादेन मे ॥३॥
जीवाजीवपदार्थतत्त्वविदुषो बंधास्रवौ रुंधतः
शश्वत्संवरनिर्जरे विदधतो मुक्तिश्रियं कांक्षतः ।
देहादेः परमात्मतत्त्वममलं मे पश्यतस्तत्त्वतो
धर्म्यध्यानसमाधिशुद्धमनसः कालः प्रयातु प्रभो! ॥ ४ ॥
कषायमदनिर्जयः सकलसंगनिर्मुक्तता
परिग्रहपरिश्रमो मननञ्जु मतो भीरुता ।

मुनीन्द्रपदसेवना जिनवचोरुचिस्त्यागिता
हृषीकहरिनिग्रहो निकटनिर्वृतेर्ज्जायते ॥ ५ ॥
विद्विष्टे वा प्रशमवति वा बांधवे वा रिपौ वा
मूर्खौंघे वा बुधसदसि वा पत्तने वा वने वा ।
संपत्तौ वा मम विपदि वा जीविते वा मृतौ वा
कालों देव ! व्रजतु सकलः कुर्वतस्तुल्यवृत्तिं ॥ ६ ॥
सुखे वा दुःखे वा व्यसनजनके वा सुहृदि वा
गृहे वाऽरण्ये वा कनकनिकरे वा दृषदि वा ।
प्रिये वाऽनिष्टे वा मम समधियो यांतु दिवसा
दधानस्य स्वांते तव जिनपते ! वाक्यमनघं ॥ ७ ॥
ये कार्यं रचयंति निंद्यमधमास्ते यांति निंद्यां गतिं
ये वंद्यं रचयन्ति वंद्यमतयस्ते यांति वंद्यां पुनः ।
ऊर्ध्वं यांति सुधागृहं विदधतः कूपं खनंतस्त्वधः
कुर्वन्तीति विबुध्य पापविमुखा धर्म्मे सदा कोविदाः ॥८॥
चेष्टाश्चित्तशरीरबाधनकरीः कुर्वंति चित्तेऽधमाः
सौख्यं यस्य चिकीर्षवोऽक्षवशगा लोकद्वयध्वंसिनीः ।
कायो यत्र विशीर्यते सशतधा मेघो यथाऽशारद-
स्तत्रामी बत ! कुर्वते किमधियः पापोद्यमं सर्व्वदा ॥ ९ ॥
कांतेयं तनुभूरयं सुहृदयं मातेयमेषा स्वसा
जातोऽयं रिपुरेष पत्तनमिदं सद्मेदमेतद्वनं ।
एषा यावदुदेति बुद्धिरधमा संसारसंवर्द्धिनी
तावद्गच्छति निर्वृतिं बत ! कुतो दुःखद्रुमच्छेदिनीं ॥१०॥

नाहं कस्यचिदस्मि कश्चन न मे भावः परो विद्यते
मुक्त्वात्मानमपास्तकर्म्मसमितिं ज्ञानेक्षणालंकृतिं ।
यस्यैषा मतिरस्ति चेतसि सदा ज्ञातात्मतत्त्वस्थिते
र्बंधस्तस्य न यंत्रितंत्रिभुवनं सांसारिकैर्बंधनैः ॥ ११ ॥
चित्रोपायविवर्द्धितोऽपि न निजो देहोऽपि यत्रात्मनो
भावाः पुत्रकलत्रमित्रतनया जामातृतातादयः ।
तत्र स्वं निजपूर्व्वकर्म्मवशगाः केषां भवंति स्फुटं
विज्ञायेति मनीषिणा निजमतिः कार्या सदात्मस्थिता ॥१२
दुर्मेद्योद्भूतकर्म्मशैलदलने यो दुर्निवारः पविः
पोतो दुस्तरजन्मसिंधुतरणे यः सर्वसाधारणः ।
यो निःक्षेपशरीररक्षणविधौ शश्वत्पितेवाहतः
सर्वज्ञेन निवेदितः स भवतो धर्म्मः सदा पातु नः ॥ १३
यन्मात्रापदवाक्यवाच्यविकलं किंचन्मया भाषितं
साज्वालासकषायदर्पविषयव्यामोहसक्तात्मनः ।
वाग्देवी जिनवक्त्रपद्मनिलया तन्मे क्षमित्वाखिलं
दत्त्वा ज्ञानविशुद्धिमूर्जिततमां दयादनिंद्यपदं ॥ १४ ॥
निःसारा भवदायिनोऽसुखकरा भोगाः सदा नश्वरा
निंद्यस्थानभवाश्चिंभावजनका विद्याविदां निंदिताः ।
नेत्थं चिंतयतोऽपि मे बत ! मतिर्व्यावर्तते भोगतः
कं पृच्छामि कमाश्रयामि कमहं मूढः प्रपद्ये विधिं ॥ १५
मोहध्वांतमनेकदोषजनकं मे नाशितुं दीपका
दुष्कीर्णाविव कीलिताविव हृदि स्यूताविवेन्द्रार्चितौ

आश्लिष्टाविव त्रिंविताविव सदा पादौ निखाताविव
स्थेयास्तां लिखिताविवाघदहनौ बद्धाविवार्हस्तव ॥१६॥
संयोगेन दुरंतकल्मषभुवा दुःखं न किं प्रापितो
येन त्वं भवकानने मृतिजराव्याघ्रव्रजाध्यासिते ।
संगस्तेन न जायते तव यथा स्वप्नेपि दुष्टात्मना
किंचित्कर्म तथा कुरुष्व हृदये कृत्वा मनो निश्चलं ॥१७॥
दुर्गंधेन मलीमसेन वपुषा स्वर्गापवर्गश्रियः
साध्यंते सुखकारणा यदि तदा संपद्यते का क्षतिः ।
निर्माल्येन विगर्हितेन सुखदं रत्नं यदि प्राप्यते
लाभः केन न मन्यते बत ! तदा लोकस्थितिं जानता ॥१८॥
मृत्युत्पत्तिवियोगसंगमभयव्याध्याधिशोकादयः
सूद्यंते जिनशासनेन सहसा संसारविच्छेदिना ।
सूर्येणेव समस्तलोचनपथप्रध्वंसबद्धोदया
हन्यंते तिमिरोत्कराः सुखहरा नक्षत्रविक्षेपिणा ॥ १९ ॥
चित्रारंभप्रचयनपरा सर्व्वदा लोकयात्रा
यस्य स्वांते स्फुरति न मुनेर्मुष्णाती मुक्तियात्रां ।
कृत्वात्मानं स्थिरतरमसावात्मतत्त्वप्रचारे
क्षिप्त्वाशेष कलिलनिचयं ब्रह्मसद्म प्रयाति ॥ २० ॥
नो वृद्धा न विचक्षणा न मुनयो न ज्ञानिनो नाऽधमा
नो सूरा न त्रिभीरवो न पशवो न स्वर्गिणो नांडजाः ।
त्यज्यंते शमवर्त्तिनेव सकला लोकत्रयव्यापिना
दुर्वारेण मनोभवेन नयता हत्वांगिनो वश्यतां ॥ २१ ॥

अयं सुहृदुःखदानचतुरो वैरी मनोभूरयं
ध्यानेनैष नियम्यते न तपसा संगेन न ज्ञानिनां ।
देहात्मव्यतिरेकबोधजनितं स्वाभाविकं निर्मलं
वैराग्यं परमं विहाय शमिना निर्वाणदानक्षमं ॥ २२ ॥
कः कालो मम कोऽधुना भवभरं वर्ते कथं सांप्रतं
किं कर्म्मात्र हितं परत्र मम किं किं मे निजं किं परं ।
इत्थं सर्व्वविचारणाविरहिता दूरीकृतात्मक्रिया
जन्मांभोधिविवर्द्धिपातनपराः कुर्व्वंति सर्व्वाः क्रियाः ॥२३॥
येषां काननमालयं शशधरो दीपस्तमश्छेदको
भैक्ष्यं भोजनमुत्तमं वसुमती शय्या दिशस्त्वंबरं ।
संतोषामृतपानपुष्टवपुषो निर्धूय कर्माणि ते
धन्या यांति निवासमस्तविपदं दीनैर्दुरापं परं ॥२४॥
माता मे मम गेहिनी मम गृहं मे बांधवा मेंऽगजा-
स्तातो मे मम संपदो मम सुखं मे सज्जना मे जनाः ।
इत्थं घोरममत्वतामसवशव्यस्तावबोधस्थिति
शर्म्माधानविधानतः स्वहिततः प्राणी सनीभसते ॥२५॥
विख्यातौ महदार्हितापरिगतावाजन्मनो यौ स्थिरौ
यत्राऽश्चर्यरसौ परस्परमिमौ विश्लिष्यतोऽङ्गांगिनौ ।
खेदस्तत्र मनीषिणां ननु कथं बाह्ये विमुक्ते सति
मास्मेतीह विमुच्यतामनुदिनं विक्षेपशोकक्रियां ॥२६॥
तिर्यंचस्तृणपर्णलब्धवृत्तय सृष्टाः स्थलीशायिन
भिक्षान्नेतरलब्धभोगविभवा देवाः समं योगिभिः ।

मर्त्यानां विधिना विरुद्धमनसा वृत्तिः कृता सा पुनः
कष्टं धर्म्मयशःसुखानि सहसा या सूदते चिंतिता ॥ २७ ॥

भजसि दिविजयोषा यासि पातालमंगं
भ्रमसि धरणिपृष्ठं लिप्स्यसे स्वांतलक्ष्मीः ।
अभिलषसि विशुद्धां व्यापिनीं कीर्तिकांतां
प्रशमसुखसुखाब्धिं गाहसे त्वं न जातु ॥२८॥

भोक्तुं भोगिनितंबिनी सुखमधाश्रितां पनीपत्स्यसे
प्राप्तुं राज्यमनन्यलभ्यविभवं क्षोणीं चनीकस्यसे ।
लब्धुं मन्मथमंथराः सुरवधूनीकं चनीस्कद्यसे
रे भ्रांत्या ह्यमृतोपमं जिनवचस्त्वं नापनीपद्यसे ॥२९॥

भीमे मन्मथलुब्धके बहुविधव्याध्याधिदीर्घद्रुमे
रौद्रारंभहृपीकपासिकगणे मृज्जद्धतैणद्विषि ! ।
मा त्वं चित्तकुरंगजन्मगहने जातु भ्रमी ईश्वर !
प्राप्तुं ब्रह्मपदं दुरापमपरैर्यद्यस्ति वांछा तव ॥३०॥

व्यसननिहतिज्ञानोद्युक्तिर्गुणोज्वलसंगतः
करणविजितिर्जन्मत्रस्तिः कपायनिराकृतिः ।
जैनमतरतिः संगत्यक्तिस्तपश्चरणाध्वनि
तरितुमनसो जन्मांभोधिं भवंतु जिनेन्द्र ! मे ॥३१॥

विघ्नव्याघातवृक्षे विषयसुखतृणास्वादनाशक्तचित्ता
निस्त्रिंशरारसता जनहरिणगणाः सर्व्वतः संचरद्भिः ।
खाद्यंते यत्र सद्यो भवमरणजरास्वापदैर्भीमरूपै-
स्तत्र [illegible] दुःखदावाग्नितप्ते ॥३२॥

न मेधा न पुत्रा न मित्रा न शक्रा
  न कांता न माता न भृत्या न भूपाः ।
यमालिंगितं रक्षितुं संति शक्ता
  विचिंत्येति कार्यं निजं कार्यमार्यैः ॥ ३३ ॥
विचित्रैरुपायैः सदा पाल्यमान
  स्वकीयो न देहः समं यत्र याति ।
कथं बाह्यभूतानि वित्तानि तत्र
  प्रबुध्येति कृत्यो न कुत्रापि मोहः ॥ ३४ ॥
शिष्टे दुष्टे सदमि विपिने कांचने लोष्टवर्गे
  सौख्ये दुःखे शुनि नरवरे संगमे यो वियोगे ।
शश्वद्धीरो भवति सदृशो द्वेषरागव्यपोढः
  प्रौढा स्त्रीव प्रथितमहसस्तस्य सिद्धिः करस्था ॥ ३५ ॥
अभ्यस्ताक्षकषायवैरिविजया विध्वस्तलोकक्रिया
  बाह्याभ्यंतरसंगमांशविमुखा कृत्वात्मवश्यं मनः ।
ये भेत्तुं भवभोगदेहविषयं वैराग्यमध्यासते
  ते गच्छंति शिवालयं विकलिला लब्ध्वा समाधिं बुधाः ॥३६॥
संघस्तस्य न साधनं न गुरवो नो लोकपूजापरा
  नो योग्यैस्तृणकाष्ठशैलधरणीपृष्ठे कृतः संस्तरः ।
कर्तात्मैव विशुद्धधर्मयमलस्तस्यात्मतत्त्वस्थिरो
  जानानो जलदुग्धयोरिव भिदां देहात्मनोः सर्वदा ॥ ३७ ॥
विगलितविषयः स्व प्रस्थित मुच्यते यः
  पथिकमिव शरीरे नित्यमारमानमात्मा ।

विषमभवपयोधिं लीलया लंघयित्वा
पशुपदमिव सद्यो यात्यसौ मोक्षलक्ष्मीं ॥ ३८॥

बाह्यं सौख्यं विषयजनितं मुच्यते यो दुरंतं
स्थेयं स्वस्थं निरुपममसौ सौख्यमाप्नोति पूतं।
योऽन्यैर्जन्यश्रुतिविरतये कर्णयुग्मं पिधत्ते
तस्य च्छन्नो भवति नियतः कर्णमध्येपि घोषः ॥३९॥

संयोगेन विचित्रदुःखकरणे दक्षेण संपादिता-
मात्मीयां सकलत्रपुत्रसुहृदं यो मन्यते संपदं।
नानापायसमृद्धिवर्द्धनपरां मन्ये ऋणोपार्जितां
लक्ष्मीमेष निराकृतामितिगतिर्ज्ञात्वा निजां तुष्यति ॥४०॥

यत्पश्यामि कलेवरं बहुविधव्यापारजल्पोद्यतं
तन्मे किंचिदचेतनं न कुरुते मित्रस्य वा विद्विषः।
आत्मा यः सुखदुःखकर्म्मजनको नाऽसौ मया दृश्यते
कस्याहं बत! सर्वसंगविकलस्तुष्यामि रुष्यामि च ॥४१॥

क्रोधाबद्धधिया शरीरकमिदं यन्नाश्यते शत्रुणा
सार्धं तेन विचेतनेन मम नो काप्यस्ति संबंधता।
संबंधो मम येन शश्वदचलो नात्मा स विध्वंसते
न क्वापीति विधीयते मतिमता विद्वेषरागोदयः ॥४२॥

एकत्राऽपि कलेवरे स्थितिधिया कर्म्माणि संकुर्व्वता
गुर्व्वी दुःखपरंपरानुपरता यत्रात्मना लभ्यते।
तत्र स्थापयता विनष्टममतां विस्तारिणीं संपदं
का शक्रेण नृपेश्वरेण हरिणा न प्राप्यते कथ्यतां ॥ ४३॥

ये माया[1] परिवर्धिता विदधते कायोपकारं पुन-
स्ते संसारपयोधिमज्जनपरा जीवापकारं सदा ।
जीवानुग्रहकारियो विदधते कायापकारं पुन
र्निर्मित्येति विमुच्यतेऽनघधिया कायोपकारि त्रिधा ॥४४॥

आत्मा ज्ञानी परममलं ज्ञानमासेव्यमान
कायोऽज्ञानी वितरति पुनर्घोरमज्ञानमेव ।
सर्वत्रेदं जगति विदित दीयते विद्यमानं
कश्चित्यागी न हि खकुसुमं कापि कस्यापि दत्ते ॥ ४५ ॥

कांक्षंत सुखमात्मनोऽनवधितं हिंसापरैर्कर्मभि
र्दुःखोद्रेकमपास्तसंगधिषणा[2] कुर्वंति पिञ्जाभिन ।
बाधां किं न विवर्द्धयंति विविधैः कंडूयने कुट्टिन[3]
सर्व्वांगावयवोपमर्दनपरे खर्जूकृपाकांक्षिण ॥ ४६ ॥

व्यापारं परिमुच्य सर्व्वमपरं रत्नत्रयं निर्मल
कुर्व्वाणो सृखमात्मनः सुखदसावास्समप्रज्ञोऽन्यथा ।
वैरी दुःसहजन्मगुप्तिमथने क्षिप्त्वा सदा पार्थय
त्यात्मोऽभ्येति स तत्र जन्मपकिते कार्यः स्थिर कोविदै[ ] ४७

मूढ संपदविछितो न विपद संपधिविध्वंसिनीं
दुर्व्वारां जनमर्दनीमुपयतीमात्मात्मन[ ] पश्यति ।
वृक्षस्याग्रतरक्षुपभगमृगव्याघादिभि संकुले
कथ वृक्षगतां हुताशनशिखां प्रप्लोष्य तीमिव ॥ ४८ ॥

मात्मात्मानमशेषबाधविकलं ध्यालोकरूपमात्मना
दुष्प्रापां परमात्मतामनुपमामापद्यते निश्चितं ।

---

१ मिव्हर । २ वन्दिरद । ३ पांजमति ।

आत्मानं घनरूढकीचकचयः किं घर्षयन्नात्मना
वन्हित्वं प्रतिपद्यते न तरसा दुर्वारतेजोमयं ॥ ४९ ॥

व्यासक्तो निजकायकार्यकरणे यः सर्व्वदा यायते
मूढात्मा स कदाचनापि कुरुते नात्मीयकार्योद्यमं ।
दुर्वारेण नरेश्वरेण महति स्वार्थे हठाद्योजिते
भीतात्मा न कथंचनाऽपि तनुते कार्यं स्वकीयं जनः ॥५०॥

लक्ष्मीकीर्तिकलाकलापललनासौभाग्यभोग्योदया-
स्त्यज्यन्ते स्फुटमात्मनेह सकला एतैः सतामर्ज्जितैः ।
जन्मांभोधिनिमज्जिकर्मजनकैः किं साध्यते कांक्षितं
यत्कृत्वा परिमुच्यते न सुधियस्तत्रादरं कुर्व्वते ॥५१॥

हेया [पा] देयविचारणाऽस्ति न यतो न श्रेयसामागमो
वैराग्यं न न कर्म्मपर्व्वतभिदा नाप्यात्मतत्त्वस्थितिः ।
तत्कार्यं न कदाचनापि सुधियः स्वार्थोद्यताः कुर्व्वते
शीतं जातु नुनुत्सवो न शिखिनं विध्यापयंते बुधाः ॥५२॥

कामक्रोधविषादमत्सरमदद्वेषप्रमादादिभिः
शुद्धध्यानविवृद्धिकारिमनसः स्थैर्यं यतः क्षिप्यते ।
काठिन्यं परितापदानचतुरैर्हेमो हुताशैरिव
त्याज्या ध्यानविधायिभिस्तत इमे कामादयो दूरतः ॥५३॥

व्यावृत्त्येन्द्रियगोचरोरुगहने लोलं चरिष्णुं चिरं
दुर्वार हृदयोदरे स्थिरतरं कृत्वा मनोमर्क्कटं
ध्यानं ध्यायति मुक्तये श्रमतेर्निर्मुक्तभोगस्पृहो
नोपायेन विना कृता हि विधयः सिद्धिं लभंते ध्रुवं ॥५४॥

चंद्रार्कग्रहतारकाप्रभृतयो यस्य व्यपायेऽखिला
जायते भुवनप्रकाशकुशला ध्वांतप्रतानोपमाः ।
सद्विज्ञानमयप्रकाशविशदं यद्ध्यायते योगिभि-
स्तत्तत्वं परिचिंतनीयममलं देहस्थितं निश्चितं ॥५५॥

मन्यंतेत्यशरीरमंदिरमिदं ? मृत्युद्विपेन्द्र क्षणा-
दित्युच्छ्वासमिषेण मानसबहिर्निर्गत्य निर्गत्य किं ।
पश्यंतं न निरीक्षसेऽतिचकितं संसारगर्ते चेतनां
वैर्येनामरचेष्टितानि कुरुषे निर्धर्मकर्मोद्यमं ॥५६॥

करिष्यामीदं कृतमिदमिदं कृत्यमधुना
करोमीति व्यग्रं नयसि सकलं कालमफलं ।
सदा रागद्वेषप्रचयनपरं स्वार्थविमुखं
न जैनेऽप्यकृत्ये वचसि रमसे निर्वृतिकरे ॥ ५७ ॥

कुर्वाणोपि निरंतरामनुदिनं यान्यां विरुद्धक्रियां
धर्मारोपितमानसैर्न कृषिभिर्व्यापाद्यते कश्चन ।
यस्मायोद्भविनः परस्परमिमं निघ्नंति निष्कारणं
यत्तद्धर्ममपास्य नास्ति भुवने रक्षाकरं देहिनां ॥ ५८ ॥

नानारंभपरायणैर्नरवरैरावर्ज्य यस्त्यज्यते
दुःप्राप्योऽपि परिग्रहस्तृणमिव प्राणप्रयाणे पुनः ।
आदावेव विमुंच तं सुजनकं तस्यं त्रिधा दूरतः
भ्रंतो मस्करिमोदकव्यतिकरं हास्यास्पदं मा व्यधाः ॥५९॥

स्वाभिप्रायवशादिभिन्नगतयो ये भ्रातृपुत्रादय
स्तांस्त्वं मीलयितुं करोषि सततं चित्तप्रयासं वृथा

गच्छंतः परमाणवो दश दिशः कल्पांतवातेरिताः
शक्यंते न कदाचनापि पुरुषैरेकत्र कर्तुं ध्रुवं ॥ ६० ॥

भोजंभोजमपाकृता हृदय ! ये भोगास्त्वयाऽनेकधा
तांस्त्वं कांक्षसि किं पुनः पुनरहो तत्राऽग्निनिक्षेपिणः ।
तृप्तिस्तेषु कदाचिदस्ति तव नो तृष्णोदयं बिभ्रतो
देशे चित्रमरीचिसंचयचिते वल्ली कुतो जायते ॥ ६१ ॥

शूरोऽहं शुभधीरहं पटुरहं सर्वाऽधिकश्रीरहं
मान्योऽहं गुणवानहं विभुरहं पुंसामहमग्रणीः ।
इत्यात्मन्नपहाय दुष्कृतकरीं त्वं सर्वथा कल्पना
शश्वद्ध्याय तदात्मतत्त्वममलं नैःश्रेयसी श्रीर्यतः ॥ ६२ ॥

धृतविविधकषायग्रंथलिंगव्यवस्थं
यदि यतिनिकुरुंबं जायते कर्मरिक्तं ।
भवति ननु तदानीं सिंहपोताऽविदार्यं ?
शशकनलकरंध्रे हस्तियूथं प्रविष्टं ॥ ६३ ॥

कष्टं वंचनकारिणीष्वपि सदा नारीषु तृष्णा पराः
शर्म्माशां न कदाचनापि कुधियो मर्त्या विपर्य्याशया ।
मुंचंते मृगतृष्णिकास्विव मृगाः पानीयकांक्षा यतो
धिक्तं मोहमनर्थदानकुशलं पुंसामवार्योदयं ॥ ६४ ॥

पापाऽनोकुहसंकुले भववने दुःखादिभिर्दुर्गमे
यैरज्ञानवशः कषायविषयैस्त्वं पीडितोऽनेकधा ।
रे तान् ज्ञानमुपेत्य पूतमधुना विध्वंसयाऽशेषतो
विद्वांसो न परित्यजंति समये शत्रूनऽहत्वा स्फुटं ॥ ६५ ॥

असिमसिकृषिविद्याशिल्पिवाणिज्ययोगै
स्तनुधनसुतहेतो कर्म्म यादृक्करोषि ।
सकृदपि यदि तादृक् संयमार्थं विधत्से
सुखममलमनंतं किं तदा नाश्नुषेऽलं ॥ ६६ ॥
सुखजननपटूनां पावनानां गुणानां
भवति भपदि कर्त्ता सर्व्वलोकोपरिस्थ ।
त्रिदशशिखरिमूर्धाऽधिष्ठितस्येह पुंसः
स्वयमवनिरधस्ताज्जायते नाखिला किं ॥६७॥
दिनकरकरजाले शैत्यमुष्णत्वमिंदौ
सुरशिखरिणि जातु प्राप्यते जंगमत्वं ।
न पुनरिह कदाचिद् घोरसंसारचक्रे
स्फुटमसुखनिधाने भ्राम्यता शर्म्म पुंसा ॥६८॥
कार्ये कर्म्मविनिर्मितेबहुविधे स्थूलाणुदीर्घादिभि
र्नात्मा याति कदाचनापि विकृतिं संबध्यमानः स्फुटं ।
रक्तारक्तसिताभितादिवसनैरावेष्टमानोऽपि किं
रक्तारक्तसिताभितादिगुणितामापद्यते विग्रह ॥६९॥
गौरो रूपधरो दृढ परिवृढ स्थूल कृश कर्कशो
गीर्वाणो मनुज पशुर्नरकभू षंढः पुमानंगना ।
मिथ्या त्वं विदधासि कल्पनमिदं मूढोऽविबुध्यात्मनो
नित्यं ज्ञानमयस्वभावममलं सर्व्वव्यपायच्युत ॥७०॥
सप्वारंभकषायसंगरहितं शुद्धोपयोगोद्यत
तद्रूपं परमात्मना विकलितं मात्यपेक्षाऽतिगं ।

तन्निःश्रेयसकारणाय हृदये कार्यं सदा नापरं
कृत्यं क्वापि चिकीर्षवो न सुधियः कुर्वंति तद्‌ध्वंसकं ॥७१॥
यो जागर्ति शरीरकार्यकरणे वृत्ती विधत्ते यतो
हेयादेयविचारशून्यहृदये नात्मक्रियायामसौ ।
स्वार्थं लब्धुमना विमुंचतु ततः शश्वच्छरीरादरं
कार्यस्य प्रतिबंधके न यतते निष्पत्तिकामः सुधीः ॥७२॥
भीतं मुंचति नांतको गतघृणो भैपीद्वृथा मा ततः
सौख्यं जातु न लभ्यतेऽभिलपितं त्वं माभिलापीरिदं ।
प्रत्यागच्छति शोचितं न विगतं शोकं कृथा मा वृथा
प्रेक्षापूर्व्वविधायिनो विदधते कृत्यं निरर्थं कथं ॥७३॥
स्वस्थे कर्म्मणि शाश्वते विकलिले विद्वज्जनप्रार्थिते
संप्राप्ये रहसात्मना स्थिरधिया त्वं विद्यमाने सति ।
बाह्यं सौख्यमवाप्तुमंतविरसं किं खिद्यसे नश्वरं ।
रे सिद्धे शिवमंदिरे सति चरौ मा मूढ! भिक्षां भ्रमः ॥७४॥
अभिलषति पवित्रं स्थावरं शर्म लब्धु--
धनपरिजनलक्ष्मीं यः स्थिरीकृत्य मूढः ।
जिगमिषति पयोधेरेष पारं दुरापं
प्रलयसमयवीचीं निश्चलीकृत्य शंके ॥ ७५ ॥
ये दुःखं वितरंति घोरमनिशं लोकद्वये पोषिता
दुर्वारा विषयारयो विकरुणाः सर्वांगशर्म्माश्रयाः ।
प्रोच्यंते शिवकांक्षिभिः कथममी जन्मावलीवर्द्धिनो
दुःखोद्रेकविवर्धनं न सुधियः कुर्वंति शर्म्मार्थिनः ॥७६॥

कुर्वाणं परिणाममेति विमलं स्वर्गापवर्गश्रियं
प्राणीकल्मलपुञ्जदुःखजनिकां शुभ्रादिरीतिं मत" ।
गृह्णाना ? परिणाममाद्यमपरं मुञ्चति संततत"
कुर्वंतीह कुत कदाचिदहित हित्वा हितं धीमनाः ॥७७॥
नरकगतिमपुंङ्गं सुदरं स्वर्गवासं
शिवपदमनवद्यं याति शुद्धैकमा ।
स्फुटमिह परिणामैश्चेतन पोप्यमाने-
रिति शिवपदकामैस्तु विधेया विशुद्धा" ॥ ७८ ॥
श्वभ्राणामविसह्यमंतरहितं दुर्जल्पमन्योन्यजं
दाहच्छेदविभेदनादिजनितं दुःखं तिरश्चां परं ।
नृणां रोगवियोगजन्ममरणं स्वर्गौकसां मानसं ।
विश्वं वीक्ष्य सदति कष्टकलितं कार्यामतिर्मुक्तये ॥ ७९ ॥
कायं रूपमिव क्षयेन सलिले सांसारिकं सर्वथा
सर्वं नश्यति यत्नतेऽपि रचितं कृत्वाऽश्रमं दुष्करं ।
यत्रापि विधीयते मत ! कुतो मूढ ! प्रवृत्तिस्त्वया
कृत्ये क्वापि हि केवलश्रमकरे न व्याप्रियंते बुधा" ॥ ८० ॥
चित्रोपद्रवसंकुलामुरुमलां निःस्वस्थतां संसृतिं
मुक्तिं नित्यनिरंतरोन्नतसुखामापत्तिभिर्वर्जितां ।
प्राणी कोपि कषायमोहितमतिर्नो तत्त्वतो बुध्यते
मुक्त्वा दुःखिमनुत्तमामपरया किं संसृतौ रज्यते ॥८१॥
रे दुःखादयकारणं गुरुतरं बध्नंति पापं जनाः
कुर्वाणा मदकांक्षया बहुविधा हिंसापराः सत्क्रियाः ।

नीरोगत्वचिकीर्षया विदधतो नापथ्ययुक्तीरमी
सर्वांगीणमहो व्यथादयकरं किं यांति रोगोदयं ॥ ८२ ॥

रौद्रैः कर्म्म महारिभिस्त्वं ! वने योगिन् ! विचित्रैश्चिरं
नायं नायमवापितस्त्वमसुखं यैरुच्चकैर्दुःसहं ।
तान् रत्नत्रयभावनासिलतया न्यकृत्य निर्म्मूलतो
राज्यं सिद्धिमहापुरेऽनघसुखं निष्कंटकं निर्विश ॥ ८३ ॥

यो बाह्यार्थं तपसि यतते बाह्यमापद्यतेऽसौ
यस्त्वात्मार्थं लघु स लभते पूतमात्मानमेव ।
न प्राप्यन्ते क्वचन कलमाः कोद्रवै रोप्यमाणै-
र्विज्ञायेत्थं कुशलमतयः कुर्व्वते स्वार्थमेव ॥८४॥

कांतासद्मशरीरजप्रभृतयो ये सर्वथाऽप्यात्मनो
भिन्नाः कर्मभवाः समीरणचला भावाबहिर्भाविनः ।
तैः संपत्तिमिहात्मनो गतधियो जानंति ये शर्म्मदां
स्वं संकल्पवसेन ते विदधते नाकीशलक्ष्मीः स्फुटं ॥ ८५ ॥

यद्रक्तानां भवति भुवने कर्म्मबंधाय पुंसां
नीरागाणां कलिमलमुखे तद्धि मोक्षाय वस्तु ।
यन्मृत्त्यर्थं दधिगुडघृतं संनिपाताकुलानां
नीरोगाणां वितरति परां तद्धि पुष्टिं प्रकृष्टां ॥८६॥

सम्यग्दर्शनबोधसंयमतपःशीलादिभाजोपि नो
संक्लेशो विनिवर्त्तते भवभृतो लोभानलं बिभ्रतः ।
बिभ्राणस्य विचित्ररत्ननिचितं दुष्प्राप पारंपयः
संतापं किमुदन्वतो न कुरुते मध्यस्थितो बाडवः ॥८७॥

मोहांधानां स्फुरति हृदये बाह्यमात्मीयबुद्धया
  निर्मोहानां व्यपगतमलं शाश्वदात्मैव नित्यं ।
यत्तद्भेदं यदि विविदिषा ते स्वकीयं स्वकीयै-
  र्मोहं चित्त ! क्षपयसि सदा किं न दुष्टं क्षणेन ॥ ८८ ॥

स्वात्मारोपितशीलसंयमभरास्त्यक्तान्यसाहायका
  कायेनापि विलक्षमाणहृदयाः साहायकं कुर्वते ।
तप्यंते परदुष्करं गुरुतपस्तत्रापि ये निस्पृहा
  जन्मारण्यमतीत्य भूरिभयदं गच्छंति ते निर्वृतिं ॥८९॥

पूर्व्वं कर्म्म करोति दुःखमशुभं सौख्यं शुभं निर्मितं
  विज्ञायेत्यशुभं निहंतुमनसो ये पोषयंते तपः ।
जायंते समसंयमैकनिधयस्ते दुर्लभा योगिनो
  ये त्वत्रोभयकर्म्मनाशनपरास्तेषां किमत्रोच्यते ॥ ९० ॥

विच्छेद्यं यदुदीर्य्य कर्म्मरभसा संसारविस्तारकं
  साधूनामुदयागतं स्वयमदं विच्छेदने कः श्रमः ।
यो गत्वा विजिगीषुणा बलवता वैरी हठाद्धन्यते
  नाहत्वा गृहमागतं स्वयमसौ संत्यज्यते कोविदैः ॥९१॥

भजति सुखमवश्यादशुभमायोऽर्थजाते
  गतभरमुपरिष्टात्तत्र संत्यज्यमाने ।
इत्यहृदयवदयेन ! मध्यतुलाग्र
  यदि हि दुरितहेतु तेन संगे त्रिधापि ॥ ९२ ॥

सद्यो हंति दुरंतसंसृतिकरं यत्पूर्व्वकं पातकं
  हृदयं विमलं विधाय मलिनं तत्सेव्यते यस्तपः ।

शुद्धिं याति कदाचनापि गतधीर्नासावद्यावर्जकं ?
एकीकृत्य जलं मलाचिततनुः स्नातः कुतः शुद्धति ॥९३॥

लब्ध्वा दुर्लभभेदयोः सपदि ये देहात्मनोरंतरं
दग्ध्वा ध्यानहुताशनेन मुनयः शुद्धेन कर्मेंधनं ।
लोकालोकविलोकिलोकनयना भूत्वाद्रिलोकार्चिताः
पंथानं कथयंति सिद्धिवसतेस्ते संतु नः शुद्धये ॥ ९४ ॥

येषां ज्ञानकृशानुरुज्वलतरः सम्यक्त्ववातेरितो
विस्पष्टीकृतसर्व्वतत्त्वसमितिर्दग्धे विपापैधंसि ।
दत्तोत्तप्तिमनस्तमस्ततिहतिर्देदीप्यते सर्व्वदा
नाश्चर्यं रचयंति चित्रचरिताश्चारित्रिणः कस्य ते ॥ ९५ ॥

यावच्चेतसि बाह्यवस्तुविषयः स्नेहः स्थिरो वर्तते
तावन्नश्यति दुःखदानकुशलः कर्मप्रपंचः कथं ।
आर्द्रत्वे वसुधातलस्य सजटाः शुष्यंति किं पादपा
भृत्स्वत्तापनिपातरोधनपराः शाखोपशाखान्विताः ॥९६॥

चक्री चक्रमपाकरोति तपसे यत्तन्न चित्रं सतां
सूरीणां यदनश्वरीमनुपमां दत्ते तपः संपदं
तच्चित्रं परमं यदत्र विषयं गृह्णाति हित्वा तपो
दत्तेऽसौ यदनेकदुःखमवरे भीमे भवांभोनिधौ ॥९७॥

रामाः पापा विरामास्तनयपरिजना निर्म्मिता वह्नर्था
गात्रं व्याध्याधिपात्रं जितपवनजवा मूढलक्ष्मीरशेषा
किं रे दृष्टं त्वयात्मन्! भवगहनवने भ्राम्यता सौख्यहेतु-
र्येन त्वं स्वार्थनिष्टो भवसि न सततं बाह्यमत्यस्य सर्व्वं ॥९८

सम्यक्त्वज्ञानवृत्तत्रयमनघममृतं ज्ञानमात्रेण मूढा
लंघित्वा जन्मदुर्गं निरुपमितसुखां ये यियासंति सिद्धिं ।
ते सिभीपति नूनं निलपुरमुदधिं बाहुयुग्मेन तीर्त्वा
कल्पांतोद्भूतवातक्षुभितजलचरासारकीर्णान्तराले ॥ ९९ ॥

ये ज्ञात्वा भवमुक्तिकारणगणं बुद्ध्या सदा शुद्धया
कृत्वा चेतसि मुक्तिकारणगणं श्रेष्ठा विमुच्यापरं ।
जन्मारण्यनिसूदनक्षममरं जैनं तपः कुर्वते
तेषां जन्म च जीवितं च सकलं पुण्यात्मनां योगिनां॥१००॥

यो नि भेयसशर्मदानकुशलं संत्यज्य रत्नत्रयं
भीमं दुर्गमवेदनोदयकरं भोग मियः सेवते
मन्ये प्राणविपर्ययादिजनकं हालाहलं वल्भते
सद्यो जन्मजरांतकक्षयकरं पीयूषमत्यस्य सः ॥१०१॥

भवति भविनः सौख्यं दुःखं पुराकृतकर्मणः
स्फुरति हृदये रागो द्वेषः कदाचन मे कथं ।
मनसि समतां विज्ञायेत्थं तयोर्विदधाति यः
क्षपयति सुधी पूर्वं पापं चिनोति न नूतनं ॥ १०२ ॥

क्षपयितुमना कर्म्मनिष्ठं तपोभिरनिंदितै
नयति रभसा वृद्धिं नीचः कषायपरायणः ।
बुधजनमतैः किं भैषज्यैर्निषूदितुमुद्यत
प्रयपति गदं तं नापथ्यात् कदर्थितविग्रहं ॥ १०३ ॥

सद्रत्नत्रयपोषणाय वपुषस्ताभ्यस्य रक्षा परा
दत्तये ऽशनमात्रकं गतमलं धर्म्मार्थिभिर्दातृभिः ।

लज्जंते परिगृह्य मुक्तिविषये बद्धस्पृहा निस्पृहा-
स्ते गृह्णन्ति परिगृहं दमधराः किं संयमध्वंसकं ॥ १०४ ॥
ये लोकोत्तरते च दर्शनपरां दूतीं विमुक्तिश्रिये
रोचंते जिनभारतीमनुपमां जल्पंति शृण्वंति च
लोके भूरिकषायदोषमलिने ते सज्जना दुर्लभा
ये कुर्व्वंति तदर्थमुत्तमधियस्तेषां किमत्रोच्यते ॥१०५॥
ये स्तूयां जन्मसिंधोरसुखमितिततेर्लीलया तारयित्वा
नित्यं निर्वाणलक्ष्मीं बुधसमितिमतां निर्मलामर्प्पयंते ।
स्वाधीनास्तेऽपि यत्तदव्यपगतमतिभिर्ज्ञानसम्यक्त्वपूर्न्नाः
पोष्यंते नान्यपेक्षां मम परमगुभौ विद्यते नात्र चित्रं ॥१०६॥
ध्रुवापायः कायः परिभवभवाः सर्वविभवाः
सदानार्या भार्याः स्वजनतनयाः कार्यविनयाः
असारे संसारे विगतशरणे दत्तमरणे
दुराराधे गाधे किमपि सुखदं नापदपदं ॥ १०७ ॥
असुरसुरविभूनां हंति कालः श्रियं यो
भवति न मनुजानां विघ्नतस्तस्य खेदः
विचलयति गिरीणां चूलिकां यः समीरो
गृहशिखरपताका कंपते किं न तेन ॥ १०८ ॥
सकललोकमनोहरणक्षमाः
करणयौवनजीवितसंपदः
कमलपत्रपयोलवचंचलाः
किमपि न स्थिरमस्ति जगत्त्रये ॥ १०९ ॥
बलवतो महिपाधिपवाहनो
निरुनिलिंपपतीनपहंति यः

अपरमानववर्गविमर्दने,
भवति तस्य कदाचन न भ्रमः ? ॥ ११० ॥
स्वजनसंगतिरेव विनाशिनी
भवति यौवनिका जरसा रसा
विपदवैति सखी मच संपद्
किमपि शर्म्मविधायि न दृश्यते ? ॥१११॥
सचिवमंत्रिपदातिपुरोहिता
त्रिदशखेचरवैश्यपुरंदराः ।
यममटेन पुरस्कृतमातुरं
भवभृत प्रभवंति न रक्षितुं ॥ ११२ ॥
चलकृतोऽजनतोपि विपद्यते
यदि जनो न तदापरथः कथं ।
यदि निहंति शिशुं जननी हिता
न परमस्ति तदा शरणं ध्रुवं ॥ ११३ ॥
विविधसंग्रहकल्मषमंगिनो
विदधतेंगकुटुंबकहेतवे ।
अनुभवंत्यसुखं पुनरेकका
नरकवासमुपेत्य सुदुस्सहं ॥ ११४ ॥
वसनवाहनभोजनमंदिरं
सुखकरैभिरयासमुपासितं ।
व्रजति यत्र सम न कलेवरं
किमपरं भत! तत्र गमिष्यति ॥११५॥
सुख नागमदो दमयति ये
कथममी विषया न परं नरं ।

समददंतिमदं दलयंति ये
न हरिणं हरयो रहयंति ते ॥११६॥
मरणमेति विनश्यति जीवितं
द्युतिरटौति जरा परिवर्द्धते
प्रचुरमोहपिशाचवशीकृत-
स्तदपि नात्महिते रमते जनः ॥११७॥
जननमृत्युजरा नलदीपितं
जगदिदं सकलोऽपि विलोकते।
तदपि धर्म्ममतिं विदधाति नो
रममना विषयाकुलिनो जनः ॥११८॥
क्वचन भजति धर्म्मं काप्यधर्म्मं दुरंतं
क्वचिदुभयमनेकं शुद्धबोधोऽपि गेही
कथमिति गृहवासः शुद्धिकारी मलाना-
मिति विमलमनस्कैस्त्यज्यते स त्रिधापि ॥११९॥
सर्वज्ञः सर्व्वदर्शी भवमरणजरातकशोकव्यतीतो
लब्धात्मीयस्वभावः क्षतसकलमलः शश्वदात्मानपायः।
दक्षैः संकोचिताक्षैर्भवमृतिचकितेर्लोकयात्रानपेक्षै-
र्नष्टावाधात्मनीनस्थिरविशदसुखप्राप्तये चिंतनीयः ॥१२०॥
वृत्तविंशशतेनेति कुर्वता तत्त्वभावनां।
सद्योऽमितगतेरिष्टा निर्वृतिः क्रियते करे॥ १२१ ॥

इति द्वितीयभावना समाप्ता। *

---

* अस्यान्येकैत्र 'प्रेसकापी' संप्राप्ता सापि प्रायोऽशुद्धा एव।

सिरिपउमणंदिमुणिणा रइय

धम्म-रसायण ।

णमिऊण देवदेवं धरणिंदणरिंदइंदथुयचलणं ।
णाणं जस्स अणंतं लोयालोयं पयासेइ ॥ १ ॥

नत्वा देवदेवं धरणेन्द्रनरेन्द्रेन्द्रस्तुतचरणं ।
ज्ञानं यस्यानन्तं लोकालोकं प्रकाशयति ॥

बुहजणमणोहिरामं जाइजरामरणदुक्खणासयरं ।
इहपरलोयहिय (द)त्थं तं धम्मरसायणं वोच्छं ॥ २ ॥

बुधजनमनोऽभिरामं जातिजरामरणदुःखनाशकरं ।
इहपरलोकहितार्थं तं धर्मरसायनं वक्ष्ये ॥

धम्मो तिलोयबंधू धम्मो सरणं हवे तिहुयणस्स ।
धम्मेण पूयणीओ होइ णरो सव्वलोयस्स ॥ ३ ॥

धर्म त्रिलोकबन्धु धर्म शरणं भवेत् त्रिभुवनस्य ।
धर्मेण पूजनीय भवति नर सर्वलोकस्य ॥

धम्मेण कुलं विउलं धम्मेण य दिव्वरूवमारोग्गं ।
धम्मेण जए कित्ती धम्मेण होइ सोहग्गं ॥ ४ ॥

धर्मेण कुलं विपुलं धर्मेण च दीव्यरूपमारोग्यं ।
धर्मेण जगति कीर्तिं धर्मेण भवति साभाग्यं ॥

वरभवणजाणवाहणसयणासणयाणभोयणाणं च ।
वरजुवइवत्थभूसण संपत्ती होइ धम्मेण ॥ ५ ॥

वरभवनयानवाहनशयनासनयानभोजनाना च ।
वरयुवतिवस्त्रभूपणाना सप्राप्ति भवति धर्मेण ॥

तं णत्थि जं ण लब्भइ धम्मेण कएण तिहुयणे सयले ।
जो पुण धम्मदरिद्दो सो पावइ सव्वदुक्खाइं ॥ ६ ॥

तन्नास्ति यन्न लभते धर्मेण कृतेन त्रिभुवने सकले ।
यः पुन' धर्मदरिद्र स प्राप्नोति सर्वदु'खानि ॥

जो धम्मं ण करंतो इच्छइ सुक्खाइं कोइ णिब्बुद्धी ।
सो पीलऊण सिकयं इच्छइ तिल्लं णरो मूढो ॥ ७ ॥

यो धर्ममकुर्वन् इच्छति सुखानि कश्चित् निर्बुद्धि ।
स पीलयित्वा सिकतामिच्छति तैल नरो मूढ

सव्वो वि जणो धम्मं घोसइं[1] ण य कोइ जाणइ अहम्मं ।
धम्मोधम्मविसेसं[2] णाऊण णरेण घेतव्वं ॥८॥

सर्वोऽपि जन धर्मं घोषयति न च कश्चिज्जानाति अधर्मं ।
धर्माधर्मविशेष ज्ञात्वा नरेण गृहीतव्यं ।

खीराइं जहा लोए सरिसाइं हवंति वण्णणामेण ।
रसभेएण य ताइं वि णाणागुणदोसजुत्ताइं ॥ ९ ॥

क्षीराणि यथा लोके सदृशानि भवन्ति वर्णनामभ्या ।
रसभेदेन च तान्यपि नानागुणदोषयुक्तानि ॥

काइं वि खीराइं जए हवंति दुक्खावहाणि जीवाणं ।
काइं वि तुट्ठिं पुट्ठिं करंति वरवण्णमारोग्गं ॥ १० ॥

कान्यपि क्षीराणि जगति भवन्ति दु खप्रदानि जीवाना ।
कान्यपि तुष्टिं पुष्टिं कुर्वन्ति वरवर्णमारोग्यम् ॥

---

१ घोसय णइ पुस्तके पाठ । २ धम्मधम्म पुस्तके पाठ ।

धम्मा य तहा लोए अणेयभेया हवंति णायव्वा ।
णामेण समा सव्वे गुणेण पुण उत्तमा केई ॥ ११ ॥
धर्माश्च तथा लोके अनेकभेदा भवन्ति ज्ञातव्या ।
नाम्ना समाः सर्वे गुणेन पुनरुत्तमाः केचित् ॥

पावंति केइ दुक्खं णारयतिरियकुमाणुस्सजोणीसु ।
पावंति पुणो दुक्खं केई पुणु हीणदेवत्तं ॥ १२ ॥
प्राप्नुवन्ति केचित् दुःखं नारकतिर्यक्कुमानुषयोनिषु ।
प्राप्नुवन्ति पुनर्दुःखं कश्चित् पुनः हीनदेवत्वं ॥

पावंति केइ धम्मादो माणुससोक्खाइ देवसोक्खाइं ।
अव्वाबाहमणोवमअणंतसोक्खं च पावंति ॥ १३ ॥
प्राप्नुवन्ति केचिद्धर्मतः मानुषसौख्यानि देवसौख्यानि ।
अव्याबाधमनुपमानन्तसौख्यं च प्राप्नुवन्ति ॥

तम्हा हु सव्वधम्मा परिक्खियव्वा णरेण कुसलेण
सो धम्मो गहियव्वो जो दोसेहिं विवज्जिओ विमलो॥१४॥
तस्माद्धि सर्वधर्माः परीक्षितव्या नरेण कुशलेन ।
स धर्मो गृहीतव्यो यो दोषैर्विवर्जितो विमलः ॥

जत्थ वहो जीवाणं भासिज्जइ जत्थ अलियवयणं च ।
जत्थ परदव्वहरणं सेविज्जइ जत्थ परयारं ॥ १५ ॥
यत्र वधो जीवानां भाष्यते यत्रालीकवचनं च ।
यत्र परद्रव्यहरणं सेव्यते यत्र पराङ्गना ॥

बहुआरंभपरिग्गहगहणं संतोसवज्जियं जत्थ ।
पंचुंबरमहुमांसं भक्खिज्जइ जत्थ धम्मम्मि ॥ १६ ॥
बह्वारंभपरिग्रहग्रहणं सन्तोषवर्जितं यत्र ।
पंचोदुम्बरमधुमांसानि भक्ष्यन्ते यत्र धर्मे ॥

डंभिज्जइ जत्थ जणो पिज्जइ मज्ज च जत्थ बहुदोसं ।
इच्छंति सो वि धम्मो केइ य अण्णाणिणो पुरिसा ॥ १७ ॥

दम्भ्यते यत्र जन पीयते मद्य च यत्र बहुदोष ।
इच्छान्ति तमपि धर्मं केचिच्च अज्ञानिन: पुरुषाः ॥

जइ एरिसो वि धम्मो तो पुण सो केरिसो हवे पावो ।
जइ एरिसेण सग्गो तो णरयं गम्मए केण ॥ १८ ॥

यद्येतादृशोऽपि धर्मस्तर्हि पुनः तत्कीदृश भवेत्पापं ।
यद्येतादृशेन स्वर्गः तर्हि नरके गम्यते केन ॥

जो एरिसियं धम्मं किज्जइ इच्छेइ सोक्ख भुंजेउं ।
वावित्ता णिंबतरुं सो इच्छइ अम्बफलाइं ॥ १९ ॥

य एतादृश धर्म करोति इच्छति सौख्य भोक्तु ।
उप्त्वा निम्बतरु स इच्छति आम्रफलानि ॥

धम्मोत्ति मण्णमाणो करेइ जो एरिसं महापावं ।
सो उप्पज्जइ णरए अणेयदुक्खावहे भीमे ॥ २० ॥

धर्म इति मन्यमान करोति य एतादृश महापाप ।
स उत्पद्यते नरके अनेकदु:खपथे भीमे ॥

तत्थुप्पण्णं संतं सहसा तं पक्खिऊण णेरइया ।
सरिऊण पुव्ववइरं धावंति समंतदो भीमा ॥ २१ ॥

तत्रोत्पन्न सन्त सहसा त प्रेक्ष्य नारका ।
स्मृत्वा पूर्ववैर धावन्ति समन्ततो भीमा ॥

असिसुफरसमोग्गरसत्तितिसूलेहिं सेल्लकोंतेहिं ।
कोहेण पज्जलंता पहरंति सरीरयं तस्स ॥ २२ ॥

असिसुफरशमुद्गरशक्तित्रिशूलै. शेल्लकुन्तैः ।
क्रोधेन प्रज्वलन्त: प्रहरन्ति शरीरक तस्य ॥

गदापहारविद्धो मुच्छं गंतूण महियल पडइ ।
अइकंटएहिं तत्थ विभिज्जइ तिक्खेहिं सव्वंगं ॥ २३ ॥
गदाप्रहारविद्ध मूर्च्छां गत्वा महीतले पतति ।
अतिकंटक तत्र विभिद्यते तीक्ष्णै सर्वांगं ॥
लद्धूण चेयण्णए पुणरवि चिंतेइ किं इमे सव्वे ।
पहरंति मज्झ देहं जंपंता कडुयवयणाइं ॥ २४ ॥
लब्ध्वा चेतना पुनरपि चिन्तयति किं इमे सर्वे ।
प्रहरन्ति मम देहं जल्पन्त कटुकवचनानि ॥
देवयपियरणिमित्तं मंतोसहिजागभयणिमित्तेण ।
जं मारिया वराया अणेय जीवा मए आसि ॥२५॥
देवतापितृनिमित्तं मंत्रौषधियागभयनिमित्तेन ।
ये मारिता वराका अनेकजीवा मया आसन् ॥
जं परिमाणविरहिया परिग्गहा गिण्हिया मए आसि ।
जं खायं महुमंसं पंचुंबर जिब्भलुद्धेण ॥ २६ ॥
यत् परिमाणविरहिता परिग्रहा गृहीता मया आसन् ।
यत् खादितं मधुमांसं पंचोदुंबराणि जिह्वालुब्धेन ॥
जं भासियं असच्चं तेणिक्कं मए कयं आसि ।
जं तिलमेत्तसुहत्थं परदारं सेवियं आसि ॥ २७ ॥
यद्भाषितं असत्यं स्तेनकृत्यं मया कृतं आसीत् ।
यत्तिलमात्रसुखार्थं परदारा सेविता आसन् ॥
जं पीयं सुरयार्स्य जं च जणो दंमिओ मए सव्वो ।
तस्स हु पावस्स फलं जं जायं एरिसं दुक्खं ॥ २८॥
यत्पीता सुरा यच्च जनो दंमितो मया सर्व ।
तस्य हि पापस्य फलं यज्जातं एतादृशं दुःखम् ॥

णाऊण एव सव्वं पुव्वभवे जं कयं महापावं ।
अइतिव्ववेयणाओ असहंतो णासए सिघं ॥ २९ ॥

ज्ञात्वैव सर्वं पूर्वभवे यत्कृत महापाप ।
अतितीव्रवेदना असहमान नश्यति शीघ्र

सो एवं णासंतो णरइयभयेण असरणो संतो ।
पइसइ असिपत्तवणे अणेयदुक्खावहे भीमे ॥ ३० ॥

स एव नश्यन् नारकभयेन अशरण सन् ।
प्रविशति असिपत्रवने अनेकदु.खपथे भीमे ॥

तत्थ वि पडंति उवरिं फलाइं जट्टाइं असहणिज्जाइं ।
लग्गंति जत्थ गत्ते सइ चुण्णं तत्थ कुव्वंति ॥ ३१ ॥

तत्रापि पतन्ति उपरि फलानि जटानि असहनीयानि ।
लगाति यत्र गात्रे सकृच्चूर्णं तत्र कुर्वन्ति ॥

पत्ताइं पडंति तहा खंडयधारव्व सुट्ठु तिक्खाइं ।
ताइं वि छिंदंति पुणो अंगोवंगाइं सव्वाइं ॥ ३२ ॥

पत्राणि पतन्ति तथा खङ्गधारावत् सुष्ठु तीक्ष्णानि ।
तान्यपि छिन्दन्ति पुन अङ्गोपाङ्गानि सर्वाणि ॥

णीसरिऊं सो तत्थ वि असहंतो एरिसाइं दुक्खाइं ।
वेएण धावमाणो पव्वयसिहरं समारुहइ ॥ ३३ ॥

नि सृत्य म ततोऽपि असहमान एतादृशानि दु खानि ।
वेगेन धावन् पर्वतशिखर समारोहति ॥

तत्थ वि पव्वयसिहरे णाणाविहसावया परमभीमा ।
तिक्खणहकुडिलदाढा खादंति मरीरयं तस्स ॥ ३४ ॥

तत्रापि पर्वतशिखरे नानाविधशावका परमभीमा· ।
तीक्ष्णनखकुटिलदाढा खादन्ति शरीर तस्य ॥

तेसिं भएण पुणो धावंतो उत्तरइ भूमीए ।
गच्छइ वेयरणीए तिण्हाए पीडिओ संतो ॥ ३५ ॥
तेषां भयेन पुनः धावन् उत्तरति भूमौ ।
गच्छति वैतरण्यां तृष्णया पीडितः सन् ॥
सुक्को विज्झिमकंठो तत्थ जलं गेण्हिऊण पिवमाणो ।
उण्हेण तेण डज्झइ हत्थम्मि मुहम्मि ओठम्मि ॥ ३६ ॥
शुष्कः विध्यकण्ठः तत्र जलं गृहीत्वा पिबन् ।
उष्णेन तेन दह्यते हस्तेषु मुखे ओष्ठे ॥
भुक्खाए संतत्तो अलहंतो किंचि अण्णमाहारं ।
वेयरणीए कूले गिण्हित्ता मट्टियं खाइ ॥ ३७ ॥
बुभुक्षया संतप्तः अलभमानः किंचिदन्यमाहारं ।
वैतरण्याः कूले गृहीत्वा मृत्तिकां खादति ॥
ताए पुणो वि डज्झइ लोहंगारेहिं पज्जलंताए ।
घोराए कडुयाइअपूइयमयसाणगंधाए ॥ ३८ ॥
तया पुनरपि दह्यते लोहाङ्गारैः प्रज्वलन्त्या ।
घोरया कटुकपूतिमयश्वगन्धया ॥
सो एवं अच्छंतो णइकूले पिच्छिऊण णारइया ।
कडुयाइं जंपमाणा पुणरवि धावंति पाविट्ठा ॥ ३९ ॥
तमेवं तिष्ठन्तं नदीकूले दृष्ट्वा नारकाः ।
कटुकानि जल्पन्तः पुनरपि धावन्ति पापिष्ठाः ॥
वेएण वहंताए पत्तत्तलव्व पज्जलंताए ।
वेयरणीए मज्झे पवेति अणप्पवसिया हु ॥ ४० ॥
वेगेन वहन्त्या प्रतप्ततैलवत् प्रज्वलन्त्या ।
वैतरण्या मध्ये प्रविशन्ति अनात्मवशिका हि ॥

तत्थ वि पावइ दुक्खं डज्झंतो पज्जलंतसलिलेण ।
छोडीजंतसरीरो तिक्खाहिँ सिलाहिँ घोराहिं ॥४१॥

तत्रापि प्राप्नोति दुःख दहन् प्रज्वलितसलिलेन ।
स्पृष्टशरीर तीक्ष्णाभि. शिलाभि. घोराभि. ॥

सो एवं बुड्डंतो कह वि किलेसेहि तत्थ णीसरए ।
णीसरिओ वि हु संतो धरंति बंधंति णेरइया ॥ ४२ ॥

स एवं ब्रुडन् कथमपि क्लेशै ततो निःसरति ।
निःसृतमपि हि सन्त धरन्ति बध्नन्ति नारका ॥

जस्स रडंतस्स पुणो उण्हाए णिक्खंति सिगदाए ।
उद्धरिऊण सदेहं णासइ तं दुक्खमसहंतो ॥ ४३ ॥

तं रुदन्तं पुन॰ उष्णाया निखनन्ति सिकताया ।
उत्थाय स्वदेह नाशयति त दु.खमसहमान॰ ॥

पुणरवि धरंति भीमा णेरइया तस्स पावयम्मस्स ।
मस्सउमछियं ? करति हु छुहंति तह खारयंकम्मि ॥ ४४ ॥

पुनरपि धरन्ति भीमा नारकास्त पापकर्माणं ।

. ॥

णीसरिऊण वराओ णासंतो खारयंकमड्डुओ ? ।
पुव्वुत्तकमेण पुणो धरंति ते तस्स णारइया ॥ ४५ ॥

नि सृत्य वराक नश्यन् ।
पूर्वोक्तक्रमेण पुन॰ धरन्ति ते त नारका ॥

मरणभयभीरूयाणं जीवाणं जो हु जीवियं हरइ ।
णरयम्मि पावयम्मो पावइ तह बहुविहं दुक्खं ॥ ४६ ॥

मरणभयभीरूणा जीवाना यो हि जीवित हरति ।
नरके पापकर्मा प्राप्नोति तथा बहुविध दु॰ख ॥

पीलंति जहा इक्खू जंत छुहिऊण तस्स अवसस्स ।
कुम्भंति सुर्ण (ण्ण) सुण्णं मज्झसरीरं मुसंढीहिं ॥ ४७ ॥
पेलयन्ति यथा इक्षुन् यंत्रे निधाय तमवर्श ।
कुर्वन्ति चूर्णचूर्णं मध्यशरीरं मुशाढ्यः ।
चक्केहिं करकचेहिं य अंगं फाडंति गेवमाणस्स ।
सिंचंति पावयम्मा पुणरवि खारेण सलिलेण ॥४८॥
चक्र क्रकचैश्च अङ्गं विदारयन्ति रुदन् ।
सिंचन्ति पापकर्माण पुनरपि क्षारेण सलिलेन ॥
चंपंति सव्वदहं तिक्खससलाएहिं अग्गिवण्णाहिं ।
णहसधिपएसेसु य भिंदंति जलंति सूईहिं ॥ ४९ ॥
छिन्दन्ति सर्वदेहं तीक्ष्णशलाकाभिः अग्निवर्णाभिः ।
नखसन्धिप्रदेशेषु च भिन्दन्ति ज्वलन्तीभिः सूचीभिः ॥
पाडित्ता भूमीए पाएहिं मलंति पावयम्मस्स ।
सिंघाडयाण उवरिं अंगे वेयण लोदंति ॥ ५० ॥
पातयित्वा भूमौ पादैः मलन्ति पापकर्माणं ।
सिंघाटकानामुपरि अंगे वगेण लोठन्ति । ॥
अलियस्स फलेण पुणो गीवाए चंपिऊण पाएहिं ।
तस्स य खणंति जीहा समूला हु णारइया ॥ ५१ ॥
अलीकस्य फलेन पुनः ग्रीवायां चंपित्वा पादैः ।
तस्य च खनन्ति जिह्वां समूलां हि नारका ॥
छेइंति दो वि हत्था तेणिक्कफलेण तिक्खसत्थेहिए ।
सूलम्मि छुहंति पुणो णारइया सुट्ठु तिक्खेहिं ॥ ५२ ॥
छेदयन्ति द्वावपि हस्तौ स्तैन्यफलेन तीक्ष्णशस्त्रैः ।
शूले स्पर्शयन्ति पुनः नारकाः सुष्ठु तीक्ष्णे ॥

परदारस्स फलेण य आलिंगावंति लोहपडिमाओ ।
ताओ डहंति अंगं तत्ताओ अग्गिवण्णाओ ॥ ५३ ॥
परदाराणा फलेन च आलिङ्गयन्ति लोहप्रतिमा ॥
ता दहन्ति अग तप्ताः अग्निवर्णा ॥

तत्ताइं भूसणाइं चित्ते परिहावंति अग्गिवण्णाइं ।
ताइ वि डहंति अंगं परमहिला (हि) सेण फलेण ॥ ५४ ॥
ततानि भूपणानि चित्ते परिवारयन्ति अग्निवर्णानि ।
तान्यपि दहन्ति अग परमहिलाभिलागेण फलेन ॥

तस्स चडावंति पुणो णारइया कूडसम्मलीयाओ ।
तत्थ वि पावइ दुक्खं फाडिज्जंतम्मि देहम्मि ॥ ५५ ॥
तं आरोहयन्ति पुन नारका कूटशाल्मालिषु ।
तत्रापि प्राप्नोति दु ख विदारिते देहे ॥

जे परिमाणविरहिया परिग्गहा गेण्हिया भवे अण्णे ।
तेसिं फलेण गरुयं सिलिं चडावंति खंधम्मि ॥ ५६ ॥
ये परिमाणविरहिता परिग्रहा गृहीना भवे अन्यस्मिन् ।
तेषा फलेन गुरुका शिला वरन्ति स्कन्धे ।

पायंति पज्जलंतं महुमज्जफलेण कलयं ? घोरं ।
पंचुंबरफलभक्खणफलेण खावंति अंगार ॥ ५७ ॥
पाययन्ति प्रज्वलन्तं मधुमद्यफलेन लोहरस घोर ।
पचोदुम्बरफलभक्षणफलेन खादयन्ति अङ्गाराणि ॥

मांसाहारफलेण य सव्वंगं सुट्टउव्व पोलंति ॥
चल्लूरम्मि पित्तया वा ? कप्पंति अणप्पवसियस्स ॥ ५८ ॥
मासाहारफलेन च सर्वाङ्ग ।
कम्पयन्तिअनात्मवशास्य ॥

कुंभीपागेसु पुणो देह पचति पावयम्मस्स ।
पीसंति पुणो पावा जं संघ को वि ओगच्छी ॥ ५९ ॥

कुंभीपाकेषु पुनः देहं पाचयंति पापकर्मणः ।
पेषयंति पुनः पापा यत्कर्म्म कोऽपि भागच्छी ॥

सूमीसमं देहं अक्लय चम्मं च सस्स खिल्लिया ।
धावंति दुट्टहियया तिक्खतिसूलेहिं णेरइया ॥ ६० ॥

धावन्ति दुष्टहृदयास्तीक्ष्णत्रिशूलैः नारका ॥

खायंति साणसीहावयवग्घा अयमण्हिदतेहिं ।
अट्ठावया सियाला मज्जारा किण्हसप्पा य ॥ ६१ ॥

खादन्ति श्वसिंहवृकव्याघ्रा स्तैः ।
अष्टापदा शृगाला मार्जारा कृष्णसर्पाश्च ॥

वायस्सगिद्धकंका पिपीलिया मक्कुणा डंसा ।
मसगा य महुयरीओ जलुआओ तिक्खतुंडाओ ॥ ६२ ॥

वायसगृध्रकंका पिपीलिका मत्कुणास्तथा दंशा ।
मशकाश्च मधुकर्य्य जलुकास्तीक्ष्णतुण्डा ॥

दंसंति एक्कपक्खे महुदंडया हि णारइया ? ।
पुव्वकयपावयम्मा भासंता कडुयवयणाओ ॥ ६३ ॥

दंशयन्ति एकपक्ष मधुदंडका हि नारका ।
पूर्वकृतपापकर्माणो भाषमाणा कटुकवचनानि ॥

णारइयाणं वेरं छेत्तसहावेण होइ पावाणं ।
मज्जारमूसयाणं जह वेरं उल्लसप्पाणं ॥ ६४ ॥

नारकाणां वैरं क्षेत्रस्वभावेन भवति पापानां ।
मार्जारमूषकाणां यथा वैरं नकुलसर्पाणां ॥

सव्वे वि य णेरइया णपुंसया होंति हुंडसंठाणा ।
सव्वे वि भीमरूवा दुल्लेसा दव्वभावेण ॥ ६५ ॥

सर्वेऽपि च नारका नपुंसका भवन्ति हुडकसस्थाना' ।
सर्वेऽपि भीमरूपा दुर्लेश्या द्रव्यभावेन ॥

णिरए सहाव दुक्खं होइ सहावेण सीयउण्हं च ।
तह हुंति दुस्सहाओ घोराओ भुक्खतण्हाओ ॥ ६६ ॥

नरके स्वभावेन दु ख भवति स्वभावेन शीतोष्णे च ।
तथा भवत दु सहे घोरे क्षुत्तृष्णे ॥

जइ वि खिविज्जे कोई णरए गिरिरायमेत्तलोहुंडं ।
धरणियलमपावेंतो उण्हेण विलिज्जए सव्वो ॥ ६७ ॥

यद्यपि क्षिपेत् कश्चित् नरके गिरिराजमात्रलोहखड ।
धरणीतलमप्राप्नुवन् उष्णेन विलीयते सर्व ॥

तित्तियमेत्तो लोहो पज्जलिओ सीयणरयमज्झम्मि ।
जइ पिक्खिविजे कोई सडिज्ज भूमिसपावंतो ॥ ६८ ॥

तावन्मात्र लोह प्रज्वलित शीतनरकमध्ये ।
यदि प्रक्षिपेत् कश्चित् घनीभवति भूमिमप्राप्नुवन् ॥

णेरयाणं तण्हा तारसिया होइ पावयम्माणं ।
जा सव्वसमुद्देहिं य पीएहिं ण उवसमं जाइ ॥ ६९ ॥

नारकाणां तृष्णा तादृशी भवति पापकर्मणा ।
या सर्वसमुद्रेषु च पीतेषु न उपशम याति ॥

तारिसिया होइ छुहा णरयम्मि अणोवमा परमघोरा ।
जा तिहुयणे वि सयले खद्धम्मि ण उवसमं जाइ ॥ ७० ॥

तादृशी भवति क्षुत् नरके अनुपमा परमघोरा ।
या त्रिभुवनेऽपि सकले खादिते न उपशम याति ॥

१ द्रवीभवति । २ द्रवीभूत ।

सुण्णीकओ वि दहो तक्खणमेत्तेण होइ संपुण्णो ।
तेमि अउण्णयाले मिच्चू ण होइ पावाण ॥ ७१ ॥

पूर्णीकृताऽपि दहस्तत्क्षणमात्रेण भवति सम्पूर्णः ।
यथापूर्णकाले मृत्युन भवति पापानां ॥

उप्पण्णसमयपहुदी आमरणंत सहंति दुक्खाइं ।
अच्छिणिमीलयमेत्तं सोक्खं ण लहंति णेरइया ॥७२॥

उत्पन्नसमयप्रभृत्यामरणान्तं सहंते दुःखानि ।
अक्षिनिमीलनमात्रं सौख्यं न लभन्ते नारकाः ॥

एवं णरयगईए बहुप्पयाराइं होंति दुक्खाइं ।
बहुकालेण वि ताइं ण य सक्किज्जंति वण्णेउं ॥ ७३ ॥

एवं नरकगतौ बहुप्रकाराणि भवन्ति दुःखानि ।
बहुकालेनापि तानि न च शक्नुवन्ति वर्णयितुं ॥

इदी णरयगइ सम्मत्ता—इति नरकगतिः समाप्ता ।

उव्वरिऊण य जीवा णरयगईदो फलेण पावस्स ।
पुणरवि तिरियगईए पावेइ अणेयदुक्खाइं ॥ ७४ ॥

उद्धृत्य च जीवो नरकगतितः फलेन पापस्य ।
पुनरपि तिर्यग्गत्यां प्राप्नोति अनेकदुःखानि ॥

व (वा) हिज्जइ गुरुभारं णेच्छंतो पिट्टिऊण लोएहिं ।
पुव्वकयकम्मो पावयछोडिज्जंतीए पुट्टीए ॥ ७५ ॥

वाह्यते गुरुभारं नेच्छन् ताडयित्वा लोके ।
पूर्वकृतकर्मा पृष्ठया ।

ताडणतासणदुक्खं बंधण सह णासविंधणं दमणं ।
कण्णछेदणदुक्खं लंछण णिल्लंछणं चेय ॥ ७६ ॥

ताडनत्रासनदु ख बन्धन तथा नासावेधनं दमन ।
कर्णच्छेदनदु.ख लाञ्छन निलाञ्छन चैव ॥

सीउण्हं जलवरिसं चउमहिमारुवं छुहा तण्हा ।
णाणाविहवाहीओ सहइ तहा दंसमसया य ॥ ७७ ॥

शीतोष्णे जलवर्षा . .क्षुधा तृष्णा ।
नानाविधव्याधींश्च सहते तथा दशमशकाश्च ॥

एइंदिएसु पंचसु अणेयजोणीसु वीरियविहूणो ।
भुंजंतो पावफलं चिरकालं हिंडए जीवो ॥ ७८ ॥

एकेन्द्रियेषु पचसु अनेकयोनिषु वीर्यविहीन ।
भुजान पापफल चिरकाल हिण्डते जीव ॥

खणणुत्तावणवालणवीहणविच्छेयणाइं दुक्खाइं ।
पुव्वकयपावयम्मो सहइ वराओ अणप्पवसो ॥ ७९ ॥

खननोत्तापनज्वालनव्यजनाविच्छेदनादिदु खानि ।
पूर्वकृतपापकर्मा सहते वराक अनात्मवश ॥

एवं तिरियगइ सम्मत्ता-एव तिर्यग्गति समाप्ता ।

बहुवेयणाउलाए तिरियगईए भमित्तु चिरकालं ।
माणुसहवे वि पावइ पावस्स फलाइं दुक्खाइं ॥ ८० ॥

बहुवेदनाकुलाया तिर्यग्गतौ भ्रमित्वा चिरकालं ।
मानुषभवेऽपि प्राप्नोति पापस्य फलानि दु खानि ॥

पारसियभिल्लवव्वरचंडालकुलेसु पावयम्मेसु ।
उप्पज्जिऊण जीवो भुंजइ णिरओवमं दुक्खं ॥ ८१ ॥

पारसीकभिल्लवर्वरचडालकुलेषु पापकर्मसु ।
उत्पद्य जीवो भुक्ते नरकोपम दु ख ॥

जइ पावइ उत्तम चिरकाले पाविऊण णीयत्तं ।
ढंढिविगम्मसहुदिय ? पावेइ अणेय दुक्खाइं ॥ ८२ ॥
यदि प्राप्नोति उत्तमं चिरकाले प्राप्य नीचत्वं ।
तत्रापि गर्भगतानि प्राप्नोति अनेकदुःखानि ॥
जम्मंधमूयबहिरो उप्पज्जइ सो फलेण पावस्स ।
उप्पण्णदिवसपहुई पीडिज्जइ घोरवाहीहिं ॥ ८३ ॥
जन्मान्धमूकबधिर उत्पद्यते स फलेन पापस्य ।
उत्पन्नदिवसप्रभृतिव पीड्यते घोरव्याधिभि ॥
णवजोव्वणं पि पत्तो इच्छियसुक्खं ण पावए किंपि ।
गच्छइ जोव्वणकालो सव्वो वि णिरत्थओ तस्स ॥ ८४ ॥
नवयौवनमपि प्राप्त इच्छितसुखं न प्राप्नोति किमपि ।
गच्छति यौवनकालः सर्वोऽपि निरर्थकस्तस्य ॥
धणधण्णविप्पहीणो भिक्खं भमिऊण भुंजए णिच्चं ।
पुव्वकयपावकम्मो सुयणो वि ण पावए सोक्खं ॥ ८५ ॥
धनधान्यविप्रहीनो भिक्षां भ्रमित्वा भुंक्ते नित्यं ।
पूर्वकृतपापकर्मा, सुजनोऽपि न प्राप्नोति सौख्यं ॥
पसुमणुविगईए एव हिंसालियचोरियाइदोसेहिं ।
बहुदुक्खाइं वराओ चिरकालं पावए जीवो ॥ ८६ ॥
पशुमनुष्यगत्याः एव हिंसालीकचौर्यादिदोषैः ।
बहुदुःखानि वराका चिरकालं प्राप्नोति जीवः ॥
एवं कुमाणुसगई समत्ता-एवं कुमानुषगतिः समाप्ता ।

—

१ जोवण क

सव्व (ण्हु) वयणवज्जिय बालतवं कुणइ णरो मूढो ।
सो पावेइ वर उपरलोण्हीदेवत्तं ॥ ८७ ॥

सर्वज्ञवचन वर्जयित्वा बालतप करोति नरो मूढ ।
स प्राप्नोति .... ॥

दट्ठूण अण्णदेवे महिड्ढिए दिव्ववण्णमारोगं ।
होऊण माणभंगो चित्ते उप्पज्जए दुक्खं ॥ ८८ ॥

दृष्ट्वा अन्यदेवेषु महर्धिकेषु दिव्यवर्ण आरोग्य ।
भूत्वा मानभग चित्ते उत्पद्यते दुःख ॥

तिलोयसव्वसरणं धम्मो सव्वण्हु भाविओ विमलो ।
तइयामएण गहिओ तेण महंतारिओ एहिं ॥ ८९ ॥

त्रिलोकसर्वशरण धर्म. सर्वज्ञभावितो विमलः ।
तस्यागमेन गृहीतस्तेन महत्तारक . ॥

छम्मासाउगसेसे विलाइ माला विणस्सए छाए ।
कंपंति कप्परुक्खा होइ विरागो य भोयाणं ॥ ९० ॥

षण्मासायुष्कशेषे विलीयते माला विनश्यति छाया ।
कम्पन्ते कल्पवृक्षा भवति विरागश्च भोगेभ्यः ॥

बहुणट्टगीयसाला णाणाविहकप्पतरुवराइण्णो ।
भो सुरलोयपहाणा णक्खयपडंतयं विसमं ॥ ९१ ॥

बहुनृत्यगीतसाला नानाविधकल्पतरुवराकीर्णा ।
भो सुरलोकप्रधानाः . विषम ॥

वसियव्वं कुच्छीए कुणिमाए किमिकुलेहिं भरियाए ।
पीयव्वं कुणिमपयं जणणीए मे अहम्मेण ॥ ९२ ॥

वस्तव्य कुत्साया कुणपाया क्रमिकुलै भृताया ।
पातव्य कुणपपय जनन्या मया अधर्मेण ॥

सो एवं विलवंतो पुण्णवसाणम्मि असरणो संतो ।
मूलच्छिण्णो वि दुमो णिवडइ हेट्ठामुहो दीणो ॥ ९३ ॥
स एवं विलपन् पुण्यावसानेऽशरणः सन् ।
मूलच्छिन्नोऽपि द्रुमः निपतति अधोमुखो दीनः ॥
एवं देवगई सम्मत्ता—एवं देवगतिः समाप्ता ।

एवं अणाइकाले जीओ संसारसायरे घोरे ।
परिहिंडइ अलहंतो धम्मं सव्वण्हुपण्णत्तं ॥९४॥
एवमनादिकाले जीवः संसारसागरे घोरे ।
परिहिंडते अलभमानो धर्मं सर्वज्ञप्रणीतं ॥
परिचइऊण कुधम्मं तम्हा सव्वण्हुभासिओ धम्मो ।
संसारुत्तरणट्ठं गहियव्वो बुद्धिमंतेहिं ॥९५॥
परित्यज्य कुधर्मं तस्मात् सर्वज्ञभाषितो धर्मः
संसारोत्तरणार्थं गृहीतव्यो बुद्धिमद्भिः ॥
सव्वण्हू वि य णेया लोए बहुभावहरिहराईया ।
तम्हा परिक्खियव्वा सव्वेण णरेण कुसलेण ॥ ९६ ॥
सर्वज्ञा अपि च ज्ञेया लोके बहुहरिहरादिकाः
तस्मात् परीक्षितव्याः सर्वेः नरैः कुशलैः ॥
खट्टंगकपालहरो डमरुय वज्जंत भीसणायारो ।
णच्चइ पिसायसहिओ रयणीए पिउवणे भीमे ॥९७॥
खट्वाङ्गकपालधरः डमरुकं वादयन् भीषणाकारः ।
नृत्यति पिशाचसहितः रजन्यां पितृवने भीमे ॥
जो तिक्खदाढभीसणपिंगलणयणेहिं दारुणमुहेण ।
भक्खेइ भव्वजीवे सो प

य: तीक्ष्णदाढाभीषणपिंगलनयनैः . ..मुखेन ।
भक्षयति सर्वजीवान् स परमात्मा कथ भवति ॥

अहवा सो परमप्पो जइ होइ जयम्मि दोसजुत्तो वि ।
ता भीसणरूओ (पुण) णिसायरो केरिसो होइ ॥ ९९ ॥

अथवा स परमात्मा यदि भवति जगति दोषयुक्तोऽपि ।
तर्हि भीषणरूप: पुनः निशाचर कीदृशो भवति ॥

जो वहइ सिरे गंगा गिरिवधू वहइ अद्धदेहेण ।
णिच्चं भारक्कंतो कावडिवाहो जहा पुरिसो ॥ १०० ॥

यो वहति शिरसि गगा गिरिवधू वहति अर्धदेहेन ।
नित्य- भाराक्रान्तः कावटिकावाहो यथा पुरुष. ॥

जइ एरिसो वि लोए कामुम्मत्तो वि होइ परमप्पो ।
तो कामुम्मत्तमणा घरे घरे किं ण परमप्पा ॥ १०१ ॥

यदि एतादृशोऽपि लोके कामोन्मत्तोऽपि भवति परमात्मा ।
तर्हि कामो-मत्तमनस: गृहे गृहे किं न परमात्मान ॥

जो दहइ एयगामं वुच्चइ लोयम्मि सो वि पाविट्ठो ।
दड्ढं पि जेण तिउरं परमप्पत्तं कहं तस्स ॥ १०२ ॥

यो दहति एकग्रामं उच्यते लोके सोऽपि पापिष्ठ. ।
दग्धमपि येन त्रिपुर परमात्मत्व कथ तस्य ॥

रण्णे तवं करंतो दट्ठूण तिलोत्तमाए लावण्णं ।
बम्मह सरेहिं विद्धो तवभट्ठो चउमुहो जाओ ॥ १०३ ॥

अरण्ये तप: कुर्वन् दृष्ट्वा तिलोत्तमाया लावण्य ।
ब्रह्मा शरै विद्ध तपोभ्रष्ट: चतुर्मुखो जातः ॥

कामग्गितत्तचित्तो इच्छयमाणो तिलोवणारूवं ।
जो रिच्छीभत्तारो जादो सो किं होइ परमप्पो ॥ १०४ ॥

कामाग्निसंतप्तचित्त इच्छन् तिलोत्तमारूपं ।
य ऋक्षिभर्ता जात स किं भवति परमात्मा ॥

जइ एरिसो वि मूढो परमप्पा वुच्चए एवं ।
तो खरघोडाईया सव्वे वि य होंति परमप्पा ॥ १०५ ॥
यदि एतादृशोऽपि मूढ परमात्मा उच्यते एवं ।
तर्हि खराश्वादिका सर्वेऽपि च भवन्ति परमात्मान ॥

जलथलआयासयले सव्वेसु वि पव्वएसु रुक्खेसु ।
तिणवल्लिकट्ठपाहण परिवसइ महुमहणो ॥१०६॥
जलस्थलाकाशतले सर्वेषु अपि पर्वतेषु वृक्षेषु ।
तृणवल्लिकाष्ठपाषाण परिवसति मधुमथ ॥

होऊण परमदेवो कण्हो परिवसइ जए सव्वे ।
तो छेमणाइओ सो पावइ सव्वे किरियाओ ॥१०७॥
भूत्वा परमदेव कृष्ण परिवसति जगति सर्वस्मिन् ।
तर्हि स प्राप्नोति सर्व क्रियाः ॥

संसारम्मि वसंतो परमप्पो जइ जए हवे कण्हो ।
संसारत्था जीवा सव्वे ते किण्ण परमप्पा ॥ १०८ ॥
संसारे वसन् परमात्मा यदि जगति भवेत् कृष्ण ।
संसारस्था जीवा सर्वे ते किं न परमात्मान ॥

हरिहरबम्भणो वि य महाबला सव्वलोयविक्खादा ।
तिण्णि वि एक्कसरीरा तिण्णि वि लोए वि परमप्पा ॥१०९॥
हरिहरब्रह्माणोऽपि च महाबला सर्वलोकविख्याता ।
त्रयोऽपि एकशरीरा त्रयापि लोकेऽपि परमात्मान ॥

जइ होदि एयमुत्ती बम्हाण तिलोयणाय महुमहणो ।
तो बम्हणस्स सिरं हरेण किं कारणं छिण्णं ॥११०॥

यदि भवति एकमूर्तिः ब्रह्मा त्रिलोकनाथ· मधुमदः ।
तर्हि ब्रह्मणः शिरो हरेण किं कारणेन छिन्न ॥

णेच्छइ थावरजीवं जंगमजीवेसु संसओ जस्स ।
मंसं जस्स अदोसं कह बुद्धो होइ परमप्पा ॥१११॥

नेच्छति स्थावरजीव जगमजीवेषु सशयो यस्य ।
मास यस्यादोष कथ बुद्धो भवति परमात्मा ॥

णियंजणणीए पेट्टं जो फाडिऊण णिग्गओ बहिरं ।
अण्णेसिं जीवाणं कह होइ दयावरो बुद्धो ॥११२॥

निजजनन्या उदर यो विदार्य निर्गतो बहिः ।
अन्येषा जीवाना कथ भवति दयापरो बुद्धः ॥

जो अप्पणो सरीरे ण समत्थो वाहिवेयणा छेउं ।
अण्णेसिं जीवाणं कह वाहिं णासए सूरो ॥ ११३ ॥

य आत्मनः शरीरे न समर्थो व्याधिवेदना छेतु ।
अन्येषा जीवाना कथ व्याधिं नाशयति सूर· ॥

ण समत्थो रक्खेउं सयमवि खे राहुणा गसिज्जंतो ।
कह सो होइ समत्थो रक्खेउं अण्णजीवाणं ॥११४॥

न समर्थो रक्षितु स्वयमपि खे राहुना ग्रसमान ।
कथ स भवति समर्थो रक्षितु अन्यजीवान् ॥

जइ ते हवंति देवा एए सव्वे वि हरिहराईया ।
तो तिक्खपहरणाइं गिण्हंति करेण णिकज्जं॥११५॥

यदि ते भवन्ति देवा एते सर्वेऽपि हरिहरादिका ।
तर्हि तीक्ष्णप्रहरणानि गृह्णन्ति करेण किमर्थं ॥

---

१ निय पुस्तके ।२ पोठ पुस्तके ।३ वह पुस्तके ।४ सूयं ।

जस्स त्थि भय वि(चि)घ सो गिण्हइ आउहं करग्गेण ।
जस्स पुणो णत्थि भयं तस्साउहकारणं णत्थि ॥११६॥
यस्यास्ति भयं चित्ते स गृह्णाति आयुधं कराग्रेण ।
यस्य पुनर्नास्ति भयं तस्यायुधकारणं नास्ति ॥
छुहतण्हवाहिवेयणचिंतामयसोयपीडियसरीरा ।
संसारे हिंडंता ते सव्वण्हू कहं होंति ॥ ११७ ॥
क्षुधातृष्णाव्याधिवेदनाचिन्ताभयशोकपीडितशरीराः ।
संसारे हिंडमाना ते सर्वज्ञाः कथं भवन्ति ॥
छुह तण्हा भय दोसो राओ मोहो य चिंतण वाही ।
जर मरण जम्म णिद्दा खेदो सेदो विसादो य ॥११८॥
क्षुधा तृष्णा भयं दोषो रागो मोहश्च चिन्ता व्याधिः ।
जरा मरणं जन्म निद्रा खेद स्वेदो विषादश्च ॥
रइ विम्हओ य दप्पो एए दोसा तिलोयसत्ताणं ।
सव्वेसिं सामण्णा संसारे परिभमंताणं ॥ ११९ ॥
रतिर्विस्मया च दर्प एते दोषा त्रिलोकसत्त्वानां ।
सर्वेषां सामान्या संसारे परिभ्रमतां ॥
एए सव्वे दोसा जस्स ण विज्जंति छुहतिसाईया ।
सो होइ परमदेवो णिस्संदेहेण घत्तव्वो ॥ १२ ॥
एते सर्वे दोषा यस्य न विद्यन्ते क्षुधातृषादिकाः ।
स भवति परमदेवो निःसन्देहेन गृहीतव्यः ॥
सिंहासणछत्तत्तयदिव्वोझुणिपुप्फविट्ठिचमराई ।
भामंडलदुंदुहिओ वरतरु परमेट्ठिचिण्हाई ॥ १२१॥
सिंहासनच्छत्रत्रयदिव्यध्वनिपुष्पवृष्टिचामराणि ।
भामंडलदुंदुभी वरतरु परमेष्ठिचिह्नानि ॥

संपुण्णचंदवयणो जडमउडविवज्जिओ णिराहरणो ।
पहरणजुवइविमुक्को संतियरो होइ परमप्पा ॥ १२२ ॥

सम्पूर्णचन्द्रवदन. जटामुकुटविवर्जितो निराभरण· ।
प्रहरणयुवतिविमुक्त· शान्तिकरो भवति परमात्मा ॥

णिब्भूसणो वि सोहइ कोहोराप्रभओसणो [१] णत्थि ।
जह्मा वियाररहिओ णिरंबरो मणोहरो तह्मा ॥ १२३ ॥

निर्भूपणोऽपि शोभते ।
यस्माद्विकाररहितो निरम्बरो मनोहरस्तस्मात् ॥

जह्मा सो परमसुही परमसिवो वुच्चए जिणो तह्मा ।
देविंदाण वि देओ तह्मा णामं महादेओ ॥ १२४ ॥

यस्मात् स परमसुखी परमशिव उच्यते जिनस्तस्मात् ।
देवेन्द्राणामपि देवस्तस्मान्नाम्ना महादेव ॥

अव्वावाहमणंतं जह्मा सोक्खं करेइ जीवाणं ।
तह्मा संकरणामो होइ जिणो णत्थि संदेहो ॥ १२५ ॥

अव्याबाधमनन्त यस्मात् सुख करोति जीवाना ।
तस्माच्छकरनामा भवति जिनो नास्ति सन्देह ॥

लोयालोयविदण्हू तह्मा णामं जिणस्स विण्हूत्ति ।
जह्मा सीयलवयणो तह्मा सो वुच्चए चंदो ॥ १२६ ॥

लोकालोकवित् तस्मात् नाम जिनस्य विष्णुरिति ।
यस्माच्छीतलवचनस्तस्मात् स उच्यते चन्द्र ॥

अण्णाणाण विणासो विमलाण बोहयरो ।
कम्मासुर . णिद्दहणो तेण जिणो वुच्चए सूरो ॥ १२७ ॥

अज्ञानाना विनाशक विमलाना बोधकर ।
कर्मा. . निर्दहन तेन जिन उच्यते सूरः ॥

अण्णाणमोहिएहिं य पर्चेदियलोलुएहिं पुरिसेहिं ।
जिणणामाइं परेसिं कयाइं गुणवज्जयाणं पि ॥ १२८ ॥

अज्ञानमोहितैश्च पंचेन्द्रियलोलुपैः पुरुषैः ।
जिननामानि परेषां कृतानि गुणवर्जितानामपि ॥

जइ ईसरणाम णरो भिक्खं भमिऊण भुंजए को वि ।
ईसरस्स गुणविहूणो किं सच्चं ईसरो होइ ॥ १२९ ॥

यदि ईश्वरनामा नरः भिक्षां भ्रमित्वा भुंक्ते कोऽपि ।
ईश्वरस्य गुणविहीनः किं सत्यं ईश्वरो भवति ॥

सव्वण्हूणाम हरी तह लोए हरिहराइया सव्वे ।
सव्वण्हुगुणविरहिया किं सव्वे होंति सव्वण्हू ॥ १३० ॥

सर्वज्ञनामा हरिः तथा लोके हरिहरादिकाः सर्वे ।
सर्वज्ञगुणविरहिताः किं सर्वे भवन्ति सर्वज्ञाः ॥

जइ इच्छह परमपयं अव्वाबाहं अणोवमं सोक्खं ।
तिहुवणवंदियचलणं णमह जिणंदं पयत्तेण ॥ १३१ ॥

यदि इच्छति परमपदं अव्याबाधं अनुपमं सौख्यं ।
त्रिभुवनवंदितचरणं नमत जिनेन्द्रं प्रयत्नेन ॥

जम्हा अरिहंत हवइ णिराउहो णिब्भयो हवे तम्हा
जम्हा हु अणंतसुहो इच्छीविरहिओ हवे तम्हा ॥ १३२ ॥

यस्मात् अर्हन् भवति निरायुधः निर्भयो भवेत् तस्मात् ।
यस्माद्धि अनन्तसुखः स्त्रीविरहितो भवेत् तस्मात् ॥

जम्हा छुहतण्हाओ तस्स ण पीडंति परमघोराओ ।
तम्हा असणं पाणं तिलोयणाहो ण सेवेइ ॥ १३३ ॥

यस्मात् क्षुत्तृष्णे तं न पीडयतः परमघोरे ।
तस्मादशनं पानं त्रिलोकनाथो न सेवते ॥

पूजारिहो दु जह्मा धरणिंदणरिंदसुरवरिंदाणं ।
अरिरयरहस्समहणो अरहंतो वुच्चए तह्मा ॥ १३४ ॥

पूजार्हस्तु यस्मात् धरणेन्द्रनरेन्द्रसुरवरेन्द्राणा ।
अरिरजरहस्यमथन अर्हन् उच्यते तस्मात् ॥

जियकोहो जियमाणो जियमायालोहमोह जियमयओ ।
जियमच्छरो य जह्मा तम्हा णामं जिणो उत्तो ॥ १३५ ॥

जितक्रोधो जितमानो जितमायालोभमोहः जितमद' ।
जितमत्सरश्च यस्मात्तस्मान्नाम जिन' उक्त' ॥

जम्मजरमरणतिदयं जम्हा दड्ढं जिणेण णिस्सेसं ।
तम्हा तिउरविणासो होइ जिणे णत्थि संदेहो ॥ १३६ ॥

जन्मजरामरणात्रितय यस्माद्दग्ध जिनेन निःशेष ।
तस्मात्त्रिपुरविनाशो भवति जिने नास्ति सन्देहः ॥

अरहंतपरमदेवं जो वंदइ परमभत्तिसंजुत्तो ।
तेलोयवंदणीओ अइरेण य सो णरो होइ ॥ १३७ ॥

अर्हत्परमदेव यो वन्दते परमभक्तिसयुक्त. ।
त्रिलोकवन्दनीयोऽचिरेण च स नरो भवति ॥

जो जिणवरिंदपूअं कुणइ ससत्तीइ सो महापुरिसो ।
तेलोयपूअणीओ अइरेण य सो णरो होइ ॥ १३८ ॥

यो जिनवरेन्द्रपूजा करोति स्वशक्त्या स महापुरुषः ।
त्रिलोकपूजितोऽचिरेण च स नरो भवति ॥

सव्वण्हुपरिक्खा सम्मत्ता—सर्वज्ञपरीक्षा समाप्ता ।

धम्मो जिणेहिं भणिओ सायारो तह हवे अणायारो ।
एएसिं दोण्हं पि हु सारं खलु होइ सम्मत्तं ॥ १३९ ॥

धर्मो जिनै भणित सागारस्तथा भवेन्नगार ।
एतयोर्द्वयोरपि हि सारं खलु भवति सम्यक्त्वं ॥

सम्मत्तसलिलपवहो णिच्चं हिययम्मि पवट्टए जस्स ।
कम्मं वालुयवरणं तस्स बंधो चिय ण एइ ॥ १४ ॥

सम्यक्त्वसलिलप्रवाहो नित्यं हृदये प्रवर्तते यस्य ।
कर्म वालुकावरणं तस्य बन्धमेव नैति ॥

सम्मत्तरयणलम्भे णरयतिरिक्खेसु णत्थि उववाओ ।
जइ ण मुयइ सम्मत्तं अहव ण बंधाउसो पुव्वं ॥ १४१ ॥

सम्यक्त्वरत्नलम्भे नरकतिर्यक्षु नास्ति उपपाद ।
यदि न मुञ्चति सम्यक्त्वं अथवा न बंधआयुष पूर्वं ॥

पंचय अणुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तिण्णेव ।
चत्तारि य सिक्खावयाइं सायारो एरिसो धम्मो ॥१४२॥

पंचाणुव्रतानि गुणव्रतानि भवन्ति त्रीण्येव ।
चत्वारि च शिक्षाव्रतानि सागार एतादृशो धर्म ॥

देवयपियरणिमित्तं मंतोसहजंतभयणिमित्तेण ।
जीवा ण मारियव्वा पढमं तु अणुव्वयं होइ ॥ १४३ ॥

देवतापितृनिमित्तं मंत्रौषधयंत्रभयनिमित्तेन ।
जीवा न मारयितव्या प्रथमं तु अणुव्रतं भवति ॥

णागासीहि असच्चं परपीडयरं तु सच्चवयणं पि ।
वज्जंतस्स णरस्स हु बिदियं तु अणुव्वयं होइ ॥ १४४ ॥

१ बंधुच्चिय णायए तस्स इति दर्शनप्राभृते पाठान्तरम् ।

वागादिभिरसत्य परपीडाकरं तु सत्यवचनमपि ।
वर्जतो नरस्य हि द्वितीय तु अणुव्रत भवति ॥

गामे णयरे रण्णो वट्टे पडियं च अहव विस्सरियं ।
णादाणं परदव्वं तिदियं तु अणुव्वयं होइ ॥ १४५ ॥

ग्रामे नगरे अरण्ये वृत्ते पतित चाथवा विस्मृत ।
नादान परद्रव्य तृतीय तु अणुव्रतं भवति ॥

मायावहिणिसमाओ दट्ठव्वाओ परस्स महिलाओ ।
सयदारे संतोसो अणुव्वयं तं चउत्थं तु ॥ १४६ ॥

मातृस्वसृसमाना दृष्टव्या परस्य महिला' ।
स्वदारे सन्तोषोऽणुव्रत तच्चतुर्थं तु ॥

धणधण्णदुपयचउप्पयखेत्तण्णछादियाण दव्वाणं ।
जं किज्जइ परिमाणं पंचमयं अणुव्वयं होइ ॥ १४७ ॥

धनधान्यद्विपदचतुष्पदक्षेत्रान्याच्छादनाना द्रव्याणा ।
यत्क्रियते परिमाण पचमक अणुव्रतं भवति ॥

जं तु दिसावेरमणं गमणस्स दु जं च परिमाणं ।
तं च गुणव्वय पढमं भणियं जियरायदोसेहिं ॥ १४८ ॥

यत्तु दिग्विरमण गमनस्य तु यच्च परिमाण ।
तच्च गुणव्रत प्रथम भणित जितरागदोषै. ॥

मज्जारसाणरज्जु चंड लोहो य अग्गिविससत्थं ।
सपरस्स घादहेदुं अण्णेसिं णेव दादव्वं ॥ १४९ ॥

मार्जारश्वरज्जु लोहश्च अग्निविषशस्त्राणि ।
स्वपरस्य घातहेतूनि अन्येषा नैव दातव्यानि ॥

वहवंधपासछेदो तह गुरुभाराधिरोहणं चेव ।
ण वि कुणइ जो परेसिं विदियं तु गुणव्वयं होइ ॥ १५० ॥

बधबन्धपाशच्छेदानि तथा गुरुभाराधिरोहणं चैव ।
नापि करोति य परेषां द्वितीयं गुणव्रतं भवति ॥

वत्थंगच्छभूसणाण तंबोलाहरणगंधपुप्फाणं ।
जं किज्जइ परिमाणं तिदियं तु गुणव्वयं होइ ॥ १५१ ॥

वस्त्राङ्गभूषणानां ताम्बूलाभरणगंधपुष्पाणां ।
यत्क्रियते परिमाणं तृतीयं तु गुणव्रतं भवति ॥

पंचणमोक्कारपयं मंगल लोगुत्तमं तहा सरणं ।
णिच्चं झाएयव्वं उभए सञ्झाहिं हिययम्मि ॥ १५२ ॥

पंचनमस्कारपदं मंगलं लोकोत्तमं तथा शरणं ।
नित्यं ध्यातव्यं उभयो सन्ध्ययो हृदये ॥

रुद्दट्टविवज्जण पि समदा सव्वेसु चेव भूदेसु ।
संजमसुहभावणा वि सिक्खा सा वुच्चए पढमा ॥ १५३ ॥

रुद्रार्तविवर्जनमपि समता सर्वेषु चैव भूतेषु ।
संयमशुभभावना अपि शिक्षा सा उच्यते प्रथमा ॥

उववासो कायव्वो मासे मासे चउस्सु पव्वेसु ।
हवदि य विदिया सिक्खा सा कहिया जिणवरिंदेहिं ॥ १५४ ॥

उपवासः कर्तव्यो मासे मासे चतुर्षु पर्वसु ।
भवति च द्वितीया शिक्षा सा कथिता जिनेन्द्रैः ॥

असणाइचउवियप्पो आहारो संजयाण दादव्वो ।
परमाए भत्तीए तिदिया सा वुच्चए सिक्खा ॥ १५५ ॥

अशनादिचतुर्विकल्प आहारः संयतानां दातव्य ।
परमया भक्त्या तृतीया सा उच्यते शिक्षा ॥

चाऊण सव्वसंगे गहिऊणं तह महव्वए पंच ।
परिमते सण्णासं जं घिप्पइ सा चउत्थिया सिक्खा ॥ १५६ ॥

त्यक्त्वा सर्वसङ्गान् गृहीत्वा तथा महाव्रतानि पच ।
चरमान्ते सन्यास यत् गृह्णति सा चतुर्थी शिक्षा ॥

एयाइं वयाइं णरो जो पालइ जइ सुद्धसम्मत्तो ।
उप्पज्जिऊण सग्गे सो भुंजइ इच्छियं सोक्खं ॥ १५७ ॥

एतानि व्रतानि नरो य· पालयति यदि शुद्धसम्यक्त्वः ।
उत्पद्य स्वर्गे स भुक्ते इच्छित सौख्य ॥

दिव्वाणि विमाणाणि य सुरलोए होंति पंचवण्णाइं ।
दित्तीए आयच्चं जिणंति चंदस्स कंतीए ॥ १५८ ॥

दिव्यानि विमानानि च सुरलोके भवन्ति पचवर्णानि ।
दीप्त्या आदित्य जीयन्ते चन्द्र कान्त्या ॥

सोहंति ताइं णिच्चं पलंबवरहेमदामघंटाहिं ।
बहुविहकूडेहि तहा णाणाविहधयवएहिं ॥ १५९ ॥

शोभन्ते तानि नित्य प्रलंबवरहेमदामघटाभिः ।
बहुविधकूटै· तथा नानाविधध्वजापताकाभि· ॥

तेसिं होंति समीवे बहुभेयजलासया परमरम्मा ।
सोहंति सव्वकालं फलपुप्फपवालपत्तेहिं ॥ १६० ॥

तेषा होंति समीपे बहुभेदजलाशाया परमरम्या· ।
शोभन्ते सर्वकाल फलपुष्पप्रवालपत्रै ॥

दट्ठूण य उप्पत्तिं केई विज्जंति सेयचमरेहिं ।
केई जयजयसद्दे कुव्वंति सुरा सउच्छाहा ॥ १६१ ॥

दृष्ट्वा चोत्पत्तिं केचित् वीजयन्ति श्वेतचमरै· ।
केचित् जयजयशब्दान् कुर्वन्ति सुरा· सोत्साहाः ॥

वरमुरवदुंदुहिरओ भेरीओ संखवेणुवीणाओ ।
पडुपडहझल्लरिओ वायंति सुरा सलीलाए ॥ १६२ ॥

वरमुरजदुन्दुभिरवानि भेर्य शंखवेणुवीणा ।
पटुपटहझल्लर्य्यो वादयन्ति सुरा सलीलया ॥

गायंति अच्छराओ काओ वि मणोहराओ गीयाओ ।
काओवि वरंगीओ णच्चंति विलासवेसाओ ॥ १६३ ॥

गायन्ति अप्सरसः का अपि मनोहराणि गीतानि ।
का अपि वराङ्ग नृत्यन्ति विलासवेषा ॥

को मज्झ इमो धम्मो रमणीओ आसमो इमो को वा ।
कस्स इमो परिवारो एवं चिंतेइ सो देवो ॥ १६४ ॥

किं मम इदं अत्र रमणीयं आसीदयं को वा ।
कस्यायं परिवार एवं चिन्तयति स देवः ॥

णाऊण देवलोयं पुणरवि उप्पत्तिकारणं देओ ।
सव्वंगजायमासो वियसियवयणो य चिंतेइ ॥ १६५ ॥

ज्ञात्वा देवलोकं पुनरपि उत्पत्तिकारणं देव ।
सर्वाङ्गजातमास विकसितवदनश्च चिन्तयति ॥

किं दत्तं वरदाणं को व मए सोहणो तवो चिण्णो ।
जेण अहं सुरलोए उववण्णो सुरसणीए ॥ १६६ ॥

किं दत्तं वरदानं किं वा मया शोभने तप चिर्ं ।
येनाहं सुरलोके उपपन्न सुर .. ॥

णाऊण चिरयसेसं पुव्वभवे य जिणपुज्जआ रइया ।
तो कुणइ णमोकारं भत्तीए जिणवरिंदाणं ॥ १६७ ॥

ज्ञात्वा निरवशेषं पूर्वभवे च जिनपूजा रचिता ।
तत करोति नमस्कारं भक्त्या जिनवरेन्द्राणां ॥

पुणरवि पणमियमत्थो भणइ सुरो अंजलिं सिरे किच्चा ।
धम्मायरियस्स णमो जेणाहं गाहिओ धम्मो ॥ १६८ ॥

पुनरपि प्रणतमस्तकः भणति सुरः अजालिं शिरसि कृत्वा।
धर्माचार्याय नमः येनाहं ग्राहितः धर्मः ॥

सो मज्झ वंदणीओ अहिगमणीओ य पूअणीओ य।
जस्स पसाएणाहं उप्पण्णो देवलोयम्मि ॥ १६९ ॥

स मम वन्दनीयः अभिगमनीयश्च पूजनीयश्च।
यस्य प्रसादेनाहं उत्पन्नो देवलोके ॥

अहिसेहगिहं देवा णाऊण करंति तस्स अहिसेहं।
पुणरवि अरुहं गेहं आणंति मणोहरं रम्मं ॥ १७० ॥

अभिषेकगृहं देवा नीत्वा कुर्वन्ति तस्याभिषेकं।
पुनरपि अर्हद्गृहं आनयन्ति मनोहरं रम्यं ॥

बहुभूसणेहि देहं भूसंता तस्स दि (व्व) मंतेहिं।
अहिसिंचिऊण पुणरवि देवा बंधंति वरपट्टं ॥ १७१ ॥

बहुभूषणैः देहं भूषयन् तस्य दिव्यमंत्रैः।
अभिषिंच्य पुनरपि देवा बध्नन्ति वरपट्टम् ॥

सिंहासणट्ठियस्स हु सुहगेहेसु सुट्ठु रमणीए।
उवगम केइ देवा जोगाइं कहंति कम्माइं ॥ १७२ ॥

सिंहासनस्थितस्य हि शुभगृहेषु सुष्ठु रमणीयेषु।
उपगम्य केचिद्देवा योग्यानि कथयन्ति कर्माणि ॥ २

पढमं जिणंदपूयं अवि चलवरलोयणं पुणो पेच्छा।
वरणाडयस्स पिच्छा तह माणिय दिव्वबहुआउ ॥ १७३ ॥

प्रथम जिनेन्द्रपूजा अपि चलवरलोचन पुनः पश्चात्।
वरनाटक पश्चात् तथा . ॥

पडिबोहिओ हु संतो अण्णेहि सुरेहिं सुरवरो एवं।
तो कुणइ महापूअं भत्तीए जिणवरिंदाणं ॥ १७४ ॥

प्रतिबोधितो हि सन् अन्यैः सुरैः सुरवर एवं ।
तत्र करोति महापूजां भक्त्या जिनवरेन्द्राणां ॥

कुणइ पुणो वि य तुट्ठो अच्छेलालोयणं च सो देओ ।
णरयाडयं स पच्छा कुणइ पुणो पुव्वकयठवि ॥ १७५ ॥

करोति पुनरपि च तुष्ट अप्सरोलोचनं ? च स देव ।
नरनाटकं स दृष्ट्वा करोति पुन पूर्वकर्म इति ॥ *

दिव्वच्छराहिं य समं उत्तंगपउहराहिं चिरकालं ।
अणुहवइ कामभोए अट्ठगुणरिद्धिसंपण्णो ॥ १७६ ॥

दिव्याप्सरोभिश्च समं उत्तुंगप्र हाराभि चिरकालं ।
अनुभवति कामभोगान् अष्टगुणर्द्धिसम्पन्नः ॥

अणिमं महिमं लहिमं पत्ती पायम्म कामरूवित्त ।
ईसत्तं च वसित्त अट्ठगुणा होंति णायव्वा ॥ १७७ ॥

अणिमा महिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं कामरूपित्वं ।
ईशित्वं च वशित्वं अष्टगुणा भवन्ति ज्ञातव्या ॥

इय अट्ठगुणो देओ जरवाहिविवज्जिओ चिरं कालं ।
जिणधम्मस्स फलेण य दिव्वसुहं भुंजए जीओ ॥ १७८ ॥

इति अष्टगुणो देवो जराव्याधिविवर्जितश्चिरं कालं ।
जिनधर्मस्य फलेन च दिव्यसुखं भुंक्ते जीव ॥

इति देवसुगइसम्मत्ता-इति देवसुगतिः समाप्ता ।

भुंजित्ता चिरकालं दिव्वं हियइच्छियं सुहं सग्गे ।
माणुसलोयम्मि पुणो उप्पज्जए उत्तमे वंसे ॥ १७९ ॥

भुक्त्वा चिरकालं दिव्यं हृदयेप्सितं सुखं स्वर्गे ।
मानुष्यलोके पुन उत्पद्यते उत्तमे वंशे ॥

भुंजित्ता मणुलोए सव्वे हियइच्छियं अविग्घेण ।
होऊण भोयविरओ जिणादिक्खं गिण्हए परमं ॥ १८० ॥
भुक्त्वा मनुजलोके सर्वान् हृदयेप्सितान् अविघ्नेन ।
भूत्वा भोगविरतो जिनदीक्षा गृह्णाति परमा ॥
डहिऊण य कम्मवणं उग्गेण तवाणलेण णिस्सेसं ।
आपुण्णभवं अणंतं सिद्धिसुहं पावए जीओ ॥ १८१ ॥
दग्ध्वा च कर्मवन उग्रेण तपोऽनलेन नि:शेष ।
आपूर्णभवमनन्त सिद्धिसुख प्राप्नोति जीव: ॥
सुमणुसहिए वल्लहमणाइसिद्धं तओ समासेण ।
अणयारपरमधम्मं वोच्छामि समासओ पत्तो ॥ १८२ ॥
सुम.. वल्लभ अनादिसिद्ध तत: समासेन ।
अनगारपरमधर्म वक्ष्ये समासत: प्राप्त ॥
अट्ठदस पंच पंच य मूलगुणा सव्वतो सदाणयाराणं ।
उत्तरगुणा अणेया अणयारो एरिसो धम्मो ॥ १८३ ॥
अष्टादश पच पच च मूलगुणा सर्वत सदानगाराणा ।
उत्तरगुणा अनेके अनगार एतादृशो धर्म: ॥
जे सुद्धवीरपुरिमा जाइजरामरणदुक्खणिव्विण्णा ।
पालंति सुसुद्धभावा ते मूलगुणा य परिसेसा ॥ १८४ ॥
ये शुद्धवीरपुरुषा जातिजरामरणदु खनिर्विण्णा ।
पालयन्ति सुशुद्धभावास्ते मूलगुणान् च परिशेषान् ॥
इच्चेयावि सव्वे पालंति सविरियं अगूहंता ।
उवलुद्धयावधीरा संसारदुक्खक्खयंट्टाए ॥ १८५ ॥
इत्यादिकानपि सर्वान् पालयन्ति स्ववीर्यं अगूहमानाः ।
अपलुब्धका ? धीरा ससारदु खक्षयेच्छया ॥

प्रतिबोधितो हि सन् अन्यैः सुरैः सुरवर एवं ।
स्तत्र करोति महापूजां भक्त्या जिनवरेन्द्राणां ॥

कुणइ पुणो वि य तुट्ठो अट्ठवेलालोयणं च सो देओ ।
धरणाटयं स पच्छा कुणइ पुणो पुव्वकम्मउत्ति ॥ १७५ ॥

करोति पुनरपि च तुष्टः अष्टवेलालोचनं च स देवः ।
धरनाटकं स दृष्ट्वा करोति पुनः पूर्वकर्म इति ॥ ?

दिव्वच्छराहिं य सम उत्तंगपउहाराहिं चिरकालं ।
अणुहवइ कामभोए अट्ठगुणरिद्धिसंपण्णो ॥ १७६ ॥

दिव्याप्सरोभिश्च सम उत्तंगप्र हाराभिः चिरकालं ।
अनुभवति कामभोगान् अष्टगुणर्द्धिसम्पन्न ॥

अणिमं महिमं लहिमं पत्ती पायम्म कामरूवित्तं ।
ईसत्तं च वसित्तं अट्ठगुणा होंति णायव्वा ॥ १७७ ॥

अणिमा महिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं कामरूपित्वं ।
ईशित्वं च वशित्वं अष्टगुणा भवन्ति ज्ञातव्याः ॥

इय अट्ठगुणो देओ जरवाहिविवज्जिओ चिरं कालं ।
जिणधम्मस्स फलेण य दिव्वसुहं भुंजए जीओ ॥ १७८ ॥

इति अष्टगुणो देवो जराव्याधिविवर्जितश्चिरं कालं ।
जिनधर्मस्य फलेन च दिव्यसुखं भुंक्ते जीव ॥

इति देवसुगइसम्मत्ता–इति देवसुगतिः समाप्ता ।

भुंजित्ता चिरकाल दिव्वं हियइच्छियं सुहं सग्गे ।
माणुसलोयम्मि पुणो उप्पज्जए उत्तमे वंसे ॥ १७९ ॥

भुक्त्वा चिरकालं दिव्यं हृदयेप्सितं सुखं स्वर्गे ।
मानुषलोके पुन उत्पद्यते उत्तमे वंशे ॥

भुंजित्ता मणुलोए सव्वे हियइच्छियं अविग्घेण ।
होऊण भोयविरओ जिणदिक्खं गिण्हए परमं ॥ १८० ॥
भुक्त्वा मनुजलोके सर्वान् हृदयेप्सितान् अविघ्नेन ।
भूत्वा भोगविरतो जिनदीक्षा गृह्णाति परमा ॥
डहिऊण य कम्मवणं उग्गेण तवाणलेण णिस्सेसं ।
आपुण्णभवं अणंतं सिद्धिसुहं पावए जीओ ॥ १८१ ॥
दग्ध्वा च कर्मवन उग्रेण तपोऽनलेन नि शेष ।
आपूर्णभवमनन्त सिद्धिसुख प्राप्नोति जीव' ॥
सुमणुसहिए वल्लहमणाइसिद्धं तओ समासेण ।
अणयारपरमधम्मं वोच्छामि समासओ पत्तो ॥ १८३ ॥
सुम... वल्लभ अनादिसिद्ध तत समासेन ।
अनगारपरमधर्मं वक्ष्ये समासतः प्राप्त ॥
अट्ठदस पंच पंच य मूलगुणा सव्वतो सदाणयाराणं ।
उत्तरगुणा अणेया अणयारो एरिसो धम्मो ॥ १८३ ॥
अष्टादश पच पच च मूलगुणा' सर्वत सदानगाराणा ।
उत्तरगुणा अनेके अनगार एतादृशो धर्म. ॥
जे सुद्धवीरपुरिसा जाइजरामरणदुक्खणिव्विण्णा ।
पालंति सुसुद्धभावा ते मूलगुणा य परिसेसा ॥ १८४ ॥
ये शुद्धवीरपुरुपा जातिजरामरणदु खनिर्विण्णा ।
पालयन्ति सुशुद्धभावास्ते मूलगुणान् च परिशेपान् ॥
इच्चेयावि सव्वे पालंति सविरियं अगूहंता ।
उवलुद्धयावधीरा संसारदुक्खक्खयंट्टाए ॥ १८५ ॥
इत्यादिकानपि सर्वान् पालयन्ति स्ववीर्यं अगूहमानाः ।
अपलुब्धका [१] वीरा ससारदुःखक्षयेच्छया ॥

हेमंते धिदिमंता णलिणिदलविणासियं महासीयं ।
संसारदुक्खभीए विसहंति चउंति य सीयं ॥ १८६ ॥

हेमन्ते धृतिमन्तो नलिनीदलविनाशितं महाशीतं ।
संसारदुःखभयानपि सहन्ते चत्वमिति च शीतं ॥

जल्लमलमइलियंगा पावमलविवज्जिया महामुणिणो ।
आइच्चस्साहिमुहं करंति आदावणं धीरा ॥ १८७ ॥

जल्लमलमलिनिताङ्गाः पापमलविवर्जिता महामुनयः ।
आदित्यस्याभिमुखं कुर्वन्ति आतापनं धीरा ॥

धारंधयारगहिले कापुरीसभयागरे परमभीमे ।
मुणिणो वसंति रण्णे तरुमूले वरिसयालम्मि ॥ १८८ ॥

धारान्धकारगहने कापुरुषभयकरे परमभीमे ।
मुनयो वसन्ति अरण्ये तरुमूले वर्षाकाले ॥

अणयारपरमधम्मं धीरा काऊण सुद्धसम्मत्ता ।
गच्छंति केई सग्गे केई सिज्झंति धुदकम्मा ॥ १८९ ॥

अनगारपरधर्मं धीरा कृत्वा शुद्धसम्यक्त्वा ।
गच्छन्ति केचित् स्वर्गे केचित् सिध्यन्ति धुतकर्माणः ॥

ण वि अत्थि माणुसाणं आदसमुत्थं चिय विसयातीदं ।
अव्वुच्छिण्णं च सुहं अणोवमं जं च सिद्धाणं ॥ १९० ॥

नाप्यस्ति मनुष्याणां आत्मसमुत्थं एव विषयातीतं ।
अव्युच्छिन्नं च सुखं अनुपमं यच्च सिद्धानां ॥

अट्ठविहकम्मवियडा (ला) सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा ।
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ॥ १९१ ॥

अष्टविधकर्मविकला शीतीभूता निरंजना नित्या ।
अष्टगुणा कृतकृत्या लोकाग्रनिवासिनः सिद्धा ॥

सम्मत्त णाण दंसण वीरिय सुहमं तहेव अवगहणं ।
अगुरुलघुमव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ॥ १९२ ॥

सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन वीर्यं सूक्ष्म तथैवावगाहनं ।
अगुरुलघु अव्याबाध अष्टगुणा भवन्ति सिद्धानाम् ॥

भवियाण बोहणत्थं इय धम्मरसायणं समासेण ।
वरपउमणंदिमुणिणा रइयं जमणियमजुत्तेण ॥ १९३ ॥

भव्याना बोधनार्थं इद धर्मरसायन समासेन ।
वरपद्मनन्दिमुनिना रचितं यमनियमयुक्तेन ॥

इदि सिरिधम्मरसायणं सम्मत्तं ।

श्रीमत्कुलभद्रविरचित

सार-समुच्चयः।

देवदेवं जिनं नत्वा भवोद्भवविनाशनम्।
वक्ष्येऽहं देशनां कांचिन्मतिहीनोऽपि भक्तितः ॥ १ ॥
संसारे पर्यटन् जन्तुर्बहुयोनिसमाकुले।
शारीरं मानसं दुःखं प्राप्नोति यत ! दारुणं ॥ २ ॥
आर्तध्यानरतो मूढो न करोत्यात्मनो हितं।
तेनासौ सुमहत्क्लेशं परत्रेह च गच्छति ॥ ३ ॥
ज्ञानभावनया जीवो लभते हितमात्मनः।
विनयाचारसम्पन्नो विषयेषु पराङ्मुखः ॥ ४ ॥
आत्मानं भावयेन्नित्यं ज्ञानेन विनयेन च।
मा पुनर्म्रियमाणस्य पश्चात्तापो भविष्यति ॥ ५ ॥
तथापि सत्तपः कार्यं ज्ञानसद्भावमाश्रितं।
यथा विमलतां याति चेतोरत्नं सुदुस्तरम् ॥ ६ ॥
नृजन्मनः फलं सारं यदेतज्ज्ञानसेवनम्।
अनिगूहितवीर्यस्य संयमस्य च धारणम् ॥ ७ ॥
ज्ञानध्यानोपवासैश्च परीषहजयैस्तथा।
शीलसंयमयोगैश्च स्वात्मानं भावयेत् सदा ॥ ८ ॥

---

१ न केवे हितमात्मनः क–पुस्तके। २ भावना जिनमात्मनः इति –पुस्तके शोधितपाठः। ३ 'सुदुर्धरं' ख–पुस्तके।

ज्ञानाभ्यासः सदा कार्यो ध्याने चाध्ययने तथा ।
तपसो रक्षणं चैव यदीच्छेद्धितमात्मनः ॥ ९ ॥
ज्ञानादित्यो हृदिर्यस्य नित्यमुद्योतकारकः ।
तस्य निर्मलतां याति पंचेन्द्रियदिगङ्गना ॥ १० ॥
एतज्ज्ञानफलं नाम यच्चारित्रोद्यमः सदा ।
क्रियते पापनिर्मुक्तैः साधुसेवापरायणैः ॥ ११ ॥
सर्वद्वन्द्वं परित्यज्य निभृतेनान्तरात्मना ।
ज्ञानामृतं सदापेयं चित्ताल्हादनमुत्तमम् ॥ १२ ॥
ज्ञानं नाम महारत्नं यन्न प्राप्तं कदाचन ।
संसारे भ्रमता भीमे नानादुःखविधायिनि ॥ १३ ॥
अधुना तत्त्वया प्राप्तं सम्यग्दर्शनसंयुत्तम् ।
प्रमादं मा पुनः कार्षीर्विषयास्वादलालसः ॥ १४ ॥
आत्मानं सततं रक्षेज्ज्ञानध्यानतपोबलैः ।
प्रमादिनोऽस्य जीवस्य शीलरत्नं विलुप्यति ॥ १५ ॥
शीलरत्नं हतं यस्य मोहध्वान्तमुपेयुषः ।
नानादुःखशताकीर्णे नरके पतनं ध्रुवम् ॥ १६ ॥
यावत् स्वास्थं (स्थ्यं) शरीरस्य यावच्चेन्द्रियसम्मदः ।
तावद्युक्तं तपः कर्तुं वार्द्धक्ये केवलं श्रमः ॥ १७ ॥
शुद्धे तपसि सद्वीर्यं ज्ञानं कर्मपरिक्षये ।
उपयोगिधनं पात्रे यस्य याति स पंडितः ॥ १८ ॥
गुरुशुश्रूषया जन्म चित्तं सद्ध्यानचिन्तया ।
श्रुतं यस्य समे याति विनियोगं स पुण्यभाक् ॥ १९ ॥

१ तप संरक्षण ख–पुस्तके । २ 'विलुम्पते' ख–पुस्तके । ३ 'सम्पद' ख–पुस्तके । ४ उपयोग धन प्राप्ते ख–पुस्तके ।

छित्वा स्नेहमयान् पाशान् भित्वा मोहमहार्गलाम् ।
सचारित्रसमायुक्तः शूरो मोक्षपथे स्थितः ॥ २० ॥
अहो मोहस्य माहात्म्यं विद्वांसो येऽपि मानवाः ।
मुह्यन्ते तेऽपि संसारे कामार्थरतितत्पराः ॥ २१ ॥
कामः क्रोधस्तथा लोभो रागो द्वेषश्च मत्सरः ।
मदो माया तथा मोहः कन्दर्पो दर्प एव च ॥ २२ ॥
एते हि रिपवो चौरा धर्मसर्वस्वहारिणः ।
एतैर्वंभ्रम्यते जीवः संसारे बहुदुःखदे ॥ २३ ॥
रागद्वेषमयो जीवः कामक्रोधवशे यतः ।
लोभमोहमदाविष्टः संसारे संसरत्यसौ ॥ २४ ॥
सम्यक्त्वज्ञानसम्पन्नो जैनभक्तो जितेन्द्रियः ।
लोभमोहमदैस्त्यक्तो मोक्षभागी न संशयः ॥ २५ ॥
कामक्रोधस्तथा मोहस्त्रयोऽप्येते महाद्विषः ।
एतेन निर्जिता यावत्तावत्सौख्यं कुतो नृणाम् ॥ २६ ॥
नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपुः ।
नास्ति क्रोधसमो वन्हिर्नास्ति ज्ञानसमं सुखम् ॥ २७ ॥
कषायविषयार्त्तानां देहिनां नास्ति निर्वृतिः ।
तेषां च विरमे सौख्यं जायते परमाद्भुतम् ॥ २८ ॥
कषायविषयोरगैर्भ्रात्मा च पीडितः सदा ।
चिकित्स्यतां प्रयत्नेन जिनवाक्सारभैषजैः ॥ २९ ॥

---

१ अस्मादग्रे अयमधिकः श्लोकोऽधिकः क-पुस्तके ।
कर्मणा मोहनीयेन मोहितं सकलं जगत् ।
धन्या मोहं समुत्सार्य तपस्यन्ति महाधियाः ॥ १ ॥
२ विषयोरगैर्मीरात्मा क-पुस्तके । विषयैर्व्यीरात्मा ख-पुस्तके ।

विषयोरगदष्टस्य कषायविषमोहितः ।
संयमो हि महामंत्रस्त्राता सर्वत्र देहिनाम् ॥ ३० ॥
कषायकलुषो जीवो रागरञ्जितमानसः[1] ।
चतुर्गतिभवाम्भोधौ भिन्ना नौरिव सीदति ॥ ३१ ॥
कषायवशगो जीवो कर्म बध्नाति दारुणम् ।
तेनासौ क्लेशमाप्नोति भवकोटिषु दारुणम् ॥ ३२ ॥
कषायविषयैश्चित्तं मिथ्यात्वेन च संयुतम् ।
संसारबीजतां याति विमुक्तं मोक्षबीजताम् ॥ ३३ ॥
कषायविषयं सौख्यं इन्द्रियाणां च संग्रहः ।
जायते परमोत्कृष्टमात्मनो भवभेदि यत् ॥ ३४॥
कषायान् शत्रुवत् पश्येद्विषयान् विषवत्तथा ।
मोहं च परमं व्याधिमेवं मर्त्यो विचक्षणः ॥ ३५ ॥
कषायविषयैश्चौरैर्धर्मरत्नं विलुप्यति (ते) ।
वैराग्यखड्गधाराभिः शूराः कुर्वन्ति रक्षणम् ॥ ३६ ॥
कषायकर्षणं कृत्वा विषयाणामसेवनम् ।
एतद्धो मानवाः ! पथ्यं सम्यग्दर्शनमुत्तमम् ॥ ३७ ॥
कषायातपतप्तानां विषयामयमोहिनाम् ।
संयोगायोगखिन्नानां सम्यक्त्वं परमं हितम् ॥ ३८ ॥
वरं नरकवासोऽपि सम्यक्त्वेन समायुतः ।
न तु सम्यक्त्वहीनस्य निवासो दिवि राजते ॥ ३९ ॥
सम्यक्त्वं परमं रत्नं शंकादिमलवर्जितम् ।
संसारदुःखदारिद्र्य नाशयेत्सुविनिश्चितम् ॥ ४० ॥
सम्यक्त्वेन हि युक्तस्य ध्रुवं निर्वाणसंगमः[2] ।
मिथ्यादृशोऽस्य जीवस्य संसारे भ्रमणं सदा ॥४१॥

१ 'भेषमूचुर्विचक्षणा ख-पुस्तके । २ ' देवे गति सुनिश्चित क-पुस्तके ।

पंडितोऽसौ विनीतोऽसौ धर्मज्ञ प्रियदर्शन ।
य सदाचारसम्पन्न सम्यक्त्वदृढमानस ॥४२॥
जरामरणरोगाणां सम्यक्त्वज्ञानभेषजं ।
धर्मेन कुरुते यस्तु स च योगी विधीयते ॥४३॥
जन्मान्तरार्जितं कर्म सम्यक्त्वज्ञानसंयमैः ।
निराकर्तुं मया युक्तमपूर्वं च निरोधनम् ॥४४॥
सम्यक्त्वं भावयेत्क्षिप्रं सज्ज्ञानं चरणं तथा ।
कृच्छ्रात्सुचरितं प्राप्तं नृत्वं याति निरर्थकम् ॥४५॥
अतीतेनापि कालेन यन्न प्राप्तं कदाचन ।
तदिदानीं त्वया प्राप्तं सम्यग्दर्शनमुत्तमम् ॥४६॥
उत्तमे जन्मनि प्राप्ते चारित्रे कुरु यत्नत ।
सद्धर्मे च परां भक्तिं शमे च परमां रतिम् ॥४७॥
अनादिकालजीवेन प्राप्तं दुःखं पुनः पुन ।
मिथ्यामोहपरीतेन कषायवशवर्तिना ॥४८॥
सम्यक्त्वादित्यसंपर्कं कर्मध्वान्तं विनश्यति ।
आसन्नभव्यसत्त्वानां काललब्ध्यादिसन्निधौ ॥४९॥
सम्यक्त्वमात्रशुद्धेन विपर्यासत्ववर्जित ।
कषायविजयेनैव भवदुःखं विहन्यते ॥५ ॥
संसारध्वंसनं प्राप्य सम्यक्त्वं नाशयन्ति ये ।
वमन्ति तेऽमृतं पीत्वा सर्वव्याधिहरं पुन ॥५१॥
मिथ्यात्वं परमं बीजं संसारस्य दुरात्मन ।
तस्मात्तदेव मोक्तव्यं मोक्षसौख्यं जिघृक्षुणा ॥५२॥

१ संयमै क-पुस्तके । २ अपूर्वो च निरोधनाम् ग-पुस्तके । ३ संभिन्न क-पुस्तके ।

आत्मतत्वं[1] न जानन्ति मिथ्यामोहेन मोहिताः ।
मनुजा येन मानस्था विप्रलुब्धाः कुशासनैः ॥५३॥
दुःखस्य भीरवोऽप्येते सद्धर्मं न हि कुर्वते ।
कर्मणा मोहनीयेन मोहिता बहवो जनाः ॥५४॥
कथं न रमते चित्तं धर्मे चैकसुखप्रदे ।
देवानां दुःखभीरूणां प्रायो मिथ्यादृशो यतः ॥५५॥
दुःखं न शक्यते सोढुं पूर्वकर्मार्जितं नरैः ।
तस्मात् कुरुत सद्धर्मं येन तत्कर्म नश्यति ॥ ५६ ॥
सुकृतं तु भवेद्यस्य तेन यान्ति परिक्षयम् ।
दुःखोत्पादनभूतानि दुष्कर्माणि समन्ततः ॥ ५७ ॥
धर्म एव सदा कार्यो मुक्त्वा व्यापारमन्यतः ।
यः करोति परं सौख्यं यावन्निर्वाणसंगमः ॥ ५८ ॥
क्षणेऽपि समतिक्रान्ते सद्धर्मपरिवर्जिते ।
आत्मानं मुषितं मन्ये कषायेन्द्रियतस्करैः ॥ ५९ ॥
धर्मकार्ये मतिस्तावद्यावदायुर्दृढं तव ।
आयुः[2]कर्मणि संक्षीणे पश्चात्त्वं किं करिष्यसि ॥६०॥
धर्ममाचर यत्नेन मा भवस्त्वं मृतोपमः ।
सद्धर्मं चेतसां पुंसां जीवितं सफलं भवेत् ॥ ६१ ॥
मृता नैव मृतास्ते तु ये नरा धर्मकारिणः ।
जीवंतोऽपि मृतास्ते वै ये नराः पापकारिणः ॥६२॥
धर्मामृतं सदा पेयं दुःखातङ्कविनाशनम् ।
यस्मिन् पीते परं सौख्यं जीवानां[3] जायते सदा ॥६३॥

१ तत्व ख—पुस्तके । २ आयुषि कर्मसक्षीणे क—पुस्तके । ३ जीविना क—पुस्तके ।

स धर्मो यो दयायुक्तः सर्वप्राणिहितप्रदः ।
स एवोद्धारणे शक्तो भवाम्भोधौ सुदुस्तरे ॥ ६४ ॥
यदा कंठगतप्राणो जीवोऽसौ परिवर्तते ।
नान्य कश्चित्तदा त्राता मुक्त्वा धर्मं जिनोदितम् ॥६५॥
अल्पायुषा नरेणेह धर्मकर्मविजानता ।
न ज्ञायते कदा मृत्युर्भविष्यति न संशयः ॥ ६६ ॥
आयुर्यस्यापि देवस्य परिज्ञाते हितान्तके ।
तस्यापि क्षीयते सद्यो निर्मलोत्तरयोगत ॥ ६७ ॥
जिनैर्निगदितं धर्मं सर्वसौख्यमहानिधिम् ।
ये न तं प्रतिपद्यन्ते तेषां जन्मनिरर्थकम् ॥ ६८ ॥
हितं कर्म परित्यज्य पापकर्मसु रज्यते ।
तेन वै दह्यते चैव शोचनीयो भविष्यति ॥ ६९ ॥
यदि नामाप्रियं दुःखं सुखं वा यदि वा प्रियम् ।
तत' कुरुध्व सद्धर्मं जिनानां जितजन्मनाम् ॥ ७० ॥
विश्वाद्येव संकल्पास्सर्व सञ्चिस्याप्यर्यते ।
स्वल्पेनैव प्रयासेन चित्रमवददो परम् ॥७१॥
धर्म एव सदा त्राता जीवानां दुःखसंकटात् ।
तस्मात्कुरुत भो यत्नं मत्रोनन्तसुखप्रद ॥७२॥

१ अस्यार्थे मागधाप्राकृतस्येयं गाथा वर्तते ।

जीवपिमुक्को मयभो धम्मगुणो य हाइ चलसयमो ।
मयभो मोयमपुत्ता लाउत्तारियम्मि चलसयमा ॥१॥

२ तस्य ग क—पुस्तके । ३ निमित्तोत्तरयोगतः क—पुस्तके । ४ तंच प्रपद्यन्ते क । ५ तथा ग ।

यत्त्वया न कृतो धर्मः सदा मोक्षसुखावहः ।
प्रसन्नमनसा येन तेन दुःखी भवानिह ॥७३॥
यत्त्वया क्रियते कर्म विषयान्धेन दारुणम् ।
उदये तस्य सम्प्राप्ते कस्ते त्राता भविष्यति ॥७४॥
भुक्त्वाप्यनन्तरं भोगान् देवलोके यथेप्सितान् ।
यो हि तृप्तिं न सम्प्राप्तः स किं प्राप्स्यति सम्प्रति ॥७५॥
वरं हालाहलं भुक्तं विषं तद्भवनाशनम् ।
न तु भोगविषं भुक्तमनन्तभवदुःखदम् ॥७६॥
इन्द्रियप्रभवं सौख्यं सुखाभासं न तत्सुखम् ।
तच्च कर्मविबन्धाय दुःखदानैकपण्डितम् ॥७७॥
अक्षाश्वान्निश्चलं धत्स्व विषयोत्पथगामिनः ।
वैराग्यप्रग्रहाकृष्टान् सन्मार्गे विनियोजयेत् ॥७८॥
अक्षाण्येव स्वकीयानि शत्रवो दुःखहेतवः ।
विषयेषु प्रवृत्तानि कषायवशवर्तिनः ॥ ७९ ॥
इन्द्रियाणां यदा छंदे वर्तते मोहसंगतः ।
तदात्मैव तव शत्रुरात्मनो दुःखबन्धनः ॥ ८० ॥
इन्द्रियाणि प्रवृत्तानि विषयेषु निरन्तरम् ।
सज्ज्ञानभावनाशक्त्या वारयन्तीह[1] ते रताः ॥ ८१ ॥
इन्द्रियेच्छारुजामज्ञैः[2] कुरुते यो ह्युपक्रमम् ।
तमेव मन्यते सौख्यं किं तु कष्टमतः परम् ॥ ८२ ॥
आत्माभिलाषरागाणां यः समः क्रियते बुधैः ।
तदेव परमं तत्वमित्यूचुर्ब्रह्मवेदिन ॥ ८३ ॥

१ वारयन्ति हिते रता ख । २ मन्य ।

इन्द्रियाणां समे लाभे रागद्वेषजयेन च ।
आत्मानं योजयेत्सम्यक् संसृतिच्छेदकारणम् ॥ ८४ ॥
इन्द्रियाणि वशे यस्य यस्य दुष्टं न मानसम् ।
आत्मा धर्मरतो यस्य सफलं तस्य जीवितम् ॥ ८५ ॥
परनिन्दासु ये मूका निजश्लाघ्यपराङ्मुखा ।
ईदृशैर्ये गुणैर्युक्तो पूज्या सर्वत्र विष्टपे ॥८६॥
प्राणान्तिकेऽपि सम्प्राप्ते वर्जनीयानि साधुना ।
परं लोकविरुद्धानि येनात्मा सुखमश्नुते ॥ ८७ ॥
स मानयति भूतानि यः सदा विनयान्वितः ।
स प्रियः सर्वलोकेऽस्मिन्नापमानं समश्नुते ॥ ८८ ॥
किम्पाकस्य फलं भक्ष्यं कदाचिदपि धीमता ।
विषयास्तु न भोक्तव्या यद्यपि स्युः सुपेशला' ॥ ८९ ॥
स्त्रीसम्पर्कसमं सौख्यं वर्णयन्त्यबुधा जना ।
विचार्यमाणमेतद्धि दुःखानां बीजमुत्तमम् ॥ ९० ॥
स्मराग्निना प्रदग्धानि शरीराणि शरीरिणाम् ।
शमाम्भसा हि सिक्तानि निर्वृतिं नैव भेजिरे ॥ ९ ॥
अग्निना प्रदग्धानां स(श)मोऽस्तीति यतोऽत्र वै ।
स्मरवह्निप्रदग्धानां स(श)मो नास्ति भवेष्वपि ॥ ९२ ॥
मदनोऽस्ति महाव्याधिर्दुश्चिकित्स्यः सदा बुधै ।
संसारवर्धनेऽत्यर्थं दुःखोत्पादनतत्परः ॥ ९३ ॥
यावदस्य हि कामाग्निर्हृदये प्रज्वलत्यलम् ।
आर्भयन्ति हि कर्माणि तावदस्य निरन्तरम् ॥ ९४ ॥

१ युक्तास्ते पूज्याः सर्वविष्टपे ख । २ परलोक ख । ३ आभूवन्ति ख । ४ तावत्तस्य ख ।

कामाहिदृढदष्टस्य तीव्रा भवति[1] वेदना ।
यया सुमोहितो[2] जन्तुः संसारे परिवर्तते ॥ ९५ ॥
दुःखानामाकरो यस्तु संसारस्य च वर्धनम् ।
स एव मदनो नाम नराणां स्मृतिसूदनः[3] ॥ ९६ ॥
संकल्पाच्च समुद्भूत कामसर्पोतिदारुणः ।
रागद्वेषद्विजिव्होऽसौ वशीकर्तु न शक्यते ॥ ९७ ॥
दुष्टा येयमनङ्गेच्छा सेयं संसारवर्धिनी ।
दुःखस्योत्पादने शक्ता शक्ता वित्तस्य नाशने ॥ ९८ ॥
अहो ते धिषणाहीना ये स्मरस्य वशं गताः ।
कृत्वा कल्मषमात्मानं पातयन्ति भवार्णवे ॥ ९९ ॥
स्मरेणातीवरौद्रेण नरकावर्तपातिना ।
अहो खलीकृतो लोको धर्मामृतपराङ्मुखः ॥ १०० ॥
स्मरेण स्मरणादेव वैरं देवनियोगतः ।
हृदये निहितं शल्यं प्राणिनां तापकारकम् ॥ १०१ ॥
तस्मात्कुरुत सद्वृत्तं जिनमार्गरताः सदा ।
ये सत्खंडितां याति स्मरशल्यं सुदुर्धरम् ॥ १०२ ॥
चित्तसंदूषकः[4] कामस्तथा सद्गतिनाशनः ।
सद्वृत्तध्वंसनश्चासौ कामोऽनर्थपरम्परा ॥ १०३ ॥
दोषाणामाकर कामो गुणानां च विनाशकृत् ।
पापस्य च निजो बन्धु परापदां चैव संगमः ॥ १०४ ॥
पिशाचेनैव कामेन छिद्रितं सकलं जगत् ।
बंभ्रमेति परायत्तं भवाब्धौ स निरन्तरम्[5] ॥ १०५ ॥

१ तीव्रभावातिवेदना क । २ यस्यासिमोहितो क । ३ बन्दन ख. ।
४ संदूषण ख । ५ निरन्तर क ।

वैराग्यभावनामंत्रैस्तन्निवार्य महाबलं ।
स्वच्छन्दवृत्तयो धीराः सिद्धिसौख्यं प्रपेदिरे ॥ १०६ ॥
कामी त्यजति सद्वृत्तं गुरोर्वाणीं ह्रियं तथा ।
गुणानां समुदाय च चेतः स्वास्थ्यं तथैव च ॥ १०७ ॥
तस्मात्कामः सदा हेयो मोक्षसौख्यं जिघृक्षुभिः ।
संसारं च परित्यक्तु वाञ्छद्भिर्यतिसत्तमैः ॥ १०८॥
कामार्थौ वैरिणौ नित्यं विशुद्धध्यानरोधनौ ।
संत्यज्यतां महाक्रूरौ सुखं संजायते नृणाम् ॥ १०९ ॥
कामदाहो वरं सोढुं न तु शीलस्य खण्डनम् ।
शीलखण्डनशीलानां नरके पतनं ध्रुवं ॥ ११० ॥
कामदाहः सदा नैव स्वल्पकालेन शाम्यति ।
सेवनाच्च महापापं नरकावर्तपातनम् ॥ १११ ॥
सुतीव्रेणापि कामेन स्वल्पकालं तु वेदना ।
खंडनेन तु शीलस्य भवकोटिषु वेदना ॥ ११२ ॥
नियतं प्रशमं याति कामदाह[1] सुदारुणः ।
ज्ञानोपयोगसामर्थ्याद्विषं मंत्रपदैर्यथा ॥ ११३ ॥
असेवनमनङ्गस्य क्षमाय परमं स्मृतम् ।
सेवनाच्च परा वृद्धिः शमस्तु न कदाचन ॥ ११४ ॥
उपवासोऽवमोदर्यं रसानां त्यजनं तथा ।
अस्नानसेवनं चैव ताम्बूलस्य च वर्जनम् ॥११५॥
असेवेच्छानिरोधस्तु निरनुस्मरणं तथा ।
एते हि निर्जरोपाया मदनस्य महारिपो ॥ ११६ ॥

---

१ महदानं च ।

कामिच्छानिरोधेन क्रोधं च क्षमया भृशं।
जयेन्मानं मृदुत्वेन मोहं संज्ञानसेवया ॥ ११७ ॥
तस्मिन्नुपशमे प्राप्ते युक्तं सद्वृत्तधारणं।
तृष्णां सुदूरतस्त्यक्त्वा विषान्नमिव भोजनं ॥ ११८ ॥
कर्मणां शोधनं श्रेष्ठं ब्रह्मचर्यसुरक्षितं।
सारभूतं चरित्रस्य देवैरपि सुपूजितम् ॥ ११९ ॥
या चैषा प्रमदा भाति लावण्यजलवाहिनी।
सैषा वैतरणी घोरं[1] दुःखोर्मिशतसंकुला[2] ॥ १२० ॥
संसारस्य च बीजानि दुःखानां राशयः पराः।
पापस्य च निधानानि निर्मिता केन योषितः ॥ १२१ ॥
इयं सा मदनज्वाला वन्हेरिव समुद्भुता।
[3]मनुष्यैर्यत्र हूयंते यौवनानि धनानि च ॥ १२२ ॥
नरकावर्तपातिन्यः स्वर्गमार्गदृढार्गलाः।
अनर्थानां विधायिन्यो योषितः केन निर्मिताः ॥१२३॥
कृमिजालशताकीर्णे दुर्गन्धमलपूरिते।
विण्मूत्रसंवृते[4] स्त्रीणां का काये रमणीयता ॥ १२४ ॥
अहो ते सुखितां प्राप्ता ये कामानलवर्जिताः।
सद्वृत्तं विधिनापाल्य यास्यन्ति पदमुत्तमं ॥ १२५ ॥

---

१ घोरा ख । २ अस्मादग्रे श्लोकोऽयं ख-पुस्तके-
दर्शने हरते चित्त स्पर्शने हरते धनम्
संयोगे हरते प्राण नारी प्रत्यक्षराक्षसी ॥ १ ॥
३ नराणा ख । ४ त्वङ्मात्रसभृते ख ।

भोगार्थी य करोत्यज्ञो निदानं मोहसंगत ।
चूर्णीकरोत्यसौ रत्नं अनर्घ्यसूत्रहेतुना ॥ १२६ ॥
भवभोगशरीरेषु भावनीयं सदा बुधैः ।
निर्वेद परया शुद्ध्या कर्मारातिजिघृक्षुभि ॥ १२७ ॥
यावन्न मृत्युवज्रेण देहशलो निपात्यते ।
नियुज्यतां मनस्तावत्कर्मारातिपरिक्षये ॥ १२८ ॥
त्यज कामार्थयो संगं धर्मध्यानं सदा भज ।
छिंद्धि स्नेहमयान् पाशान् मानुष्यं प्राप दुर्लभम् ॥१२९॥
कथं ते भ्रष्टसद्वृत्त ? विषयानुपसेवते ।
पश्यतां हरतां तेषां नरके तीव्रवेदना ॥ १३० ॥
सद्वृत्तभ्रष्टचित्तानां विषयासंगसंगिनाम् ।
तेषामिहैव दु खानि भवन्ति नरकेषु च ॥ १३१ ॥
विषयास्वादलुब्धेन रागद्वेषवशात्मना ।
आत्मा च वंचितस्तेन य क्षमं नापि सेवते ॥ १३२ ॥
आत्मनो यत्कृतं कर्म भोक्तव्यं तदनेकधा ।
तस्मात् कर्मास्रवं रुद्ध्वा स्वेन्द्रियाणि वशं नयेत्॥१३३॥
इन्द्रियप्रसरं रुद्ध्वा स्वात्मानं वशमानयेत् ।
येन निर्वाणसौख्यस्य भाजनं त्वं प्रपत्स्यसे ॥ १३४ ॥
सम्पन्नेष्वपि भोगेषु महतां नास्ति गृद्धता ।
अन्येषां गृद्धिरेवास्ति क्षमस्तु न कदाचन ॥ १३५ ॥
षट्खंडाधिपतिश्चक्री परित्यज्य वसुन्धराम् ।
तृणवत् सर्वभोगांश्च दीक्षा दैगम्बरी स्थिता ॥ १३६ ॥

१ आत्मानो क आप्यनी ख ।

कृमितुल्यैः किमस्माभिः भोक्तव्यं वस्तु दुस्तरं ।
तेनात्र गृहपंकेषु सीदामः किमनर्थकम् ॥ १३७॥
येन ते जनितं दुःखं भवाम्भोधौ सुदुस्तरम् ।
कर्मारातिमतीवोग्रं विजेतुं किं न वाञ्छसि ॥ १३८ ॥
अब्रह्मचारिणो नित्यं मांसभक्षणतत्परा. ।
शुचित्वं तेऽपि मन्यन्ते किन्तु चिन्त्यमतःपरम् ॥१३९॥
येन संक्षीयते कर्म संचयश्च न जायते ।
तदेवात्मविदा कार्यं मोक्षसौख्याभिलाषिणा ॥ १४० ॥
अनेकशस्त्वया प्राप्ता विविधा भोगसम्पदः ।
अप्सरोगणसंकीर्णे दिवि देवविराजिते ॥ १४१ ॥
पुनश्च नरके रौद्रे रारवेऽत्यन्तभीतिदे ।
नानाप्रकारदुःखौघैः संस्थितोऽसि विधेर्वशात् ॥ १४२ ॥
तप्ततैलिकभल्लीषु पच्यमानेन यत्त्वया ।
संप्राप्तं परमं दुःखं तद्वक्तुं नैव पार्यते ॥ १४३ ॥
नानायंत्रेषु रौद्रेषु पीड्यमानेन वन्हिना ।
दुःसह्या वेदना प्राप्ता पूर्वकर्मनियोगतः ॥१४४॥
विण्मूत्रपूरिते भीमे पूतिश्लेष्मावसाकुले ।
भूयो गर्भगृहे मातुर्दैवाद्यातोऽसि संस्थितिम् ॥ १४५ ॥
तिर्यग्गतौ च यद्दुःखं प्राप्तं छेदनभेदनैः ।
न शक्तस्तत् पुमान् वक्तुं जिन्हाकोटिशतैरपि ॥ १४६ ॥
संसृतौ नास्ति तत्सौख्यं यन्न प्राप्तमनेकधा ।
देवमानवतिर्यक्षु भ्रमता जन्तुनानिशं ॥ १४७ ॥

१ मोक्तव्य वस्तु सुदर ख । २ त कर्मारातिमत्युग्र ख । ३ चिन्त्र ख. ।

चतुर्गतिनिबन्धेऽस्मिन् संसारेऽत्य तभीतिदे ।
सुखदुःखान्यवाप्तानि भ्रमता विधियोगतः ॥ १४८ ॥
एवंविधमिदं कष्टं ज्ञात्वात्यन्तविनश्वरम् ।
कथं न यासि वैराग्यं धिगस्तु तव जीवितम् ॥१४९॥
जीवितं विद्युता तुल्यं संयोगाः स्वप्नसन्निभाः ।
सन्ध्यारागसमः स्नेहः शरीरं तृणबिन्दुवत् ॥ १५० ॥
शक्रचापसमा भोगाः सम्पदो जलदोपमाः ।
यौवनं जलरेखेव सर्वमेतदशाश्वतम् ॥ १५१ ॥
समानवयसो दृष्ट्वा मृत्युना स्ववशीकृताः ।
कथं चेतः समो नास्ति मनागपि हितात्मनः ॥ १५२ ॥
सर्वाशुचिमये काये नश्वरे व्याधिपीडिते ।
को हि विद्वान् रतिं गच्छेद्यस्यास्ति श्रुतसंगमः ॥१५३॥
चिरं सुपोषितः कायो भोजनाच्छादनादिभिः ।
विकारं याति सोऽप्यन्ते कास्था बाह्येषु वस्तुषु ॥१५४॥
नायातो बन्धुभिः सार्धं न गतो बन्धुभिः समं ।
वृथैव स्वजने स्नेहो नराणां मूढचेतसाम् ॥ १५५ ॥
ज्ञातनातस्य मर्त्यस्य प्राणिना प्राणधारिणा ।
अतः कुरुत मा शोकं मृतं च सुजने बुधाः ॥ १५६ ॥
आत्मकार्यं परित्यज्य परकार्येषु यो रतः ।
ममत्वरतचेतस्कः स्वहितं भ्रंशमेष्यति ॥ १५७ ॥
स्वहितं तु भवेज्ज्ञानं चारित्रं दर्शनं तथा ।
तपःसंरक्षणं चैव सर्वविद्भिस्तदुच्यते ॥ १५८ ॥

१ वयसा क. । २ सर्वाशुचिमयेन कायेन क. । आत्मकार्यं पुस्तकद्वये । ४ मैरवा पुस्तकद्वये । ५ चेतस्य क—ख । ६ स्वहितार्थध्वनेप्यति ग. ।

सुखसंभोगसंमूढा विषयास्वादलम्पटा ।
स्वहिताद्भ्रंशमागत्य गृहवासं सिषेविरे ॥ १५९ ॥
वियोगा बहवो दृष्टा द्रव्याणां च परिक्षयात् ।
तथापि निर्घृण चेत सुखास्वादनलम्पट ॥ १६० ॥
यथा च जायते चेतः सम्यक्छुद्धिं सुनिर्मलाम् ।
तथा ज्ञानविदा कार्यं प्रयत्नेनापि भूरिणा ॥ १६१ ॥
विशुद्धं मानसं यस्य रागादिमलवर्जितम् ।
संसाराग्र्यं फलं तस्य सकलं समुपस्थितम् ॥ १६२ ॥
संसारध्वंसने हीष्टं धृतिमिन्द्रियनिग्रहे ।
कषायविजये यत्नं नाभव्यो लब्धुमर्हति ॥ १६३ ॥
एतदेव परं ब्रह्म न विन्दन्तीह मोहिनः ।
यदेतच्चित्तनैर्मल्यं रागद्वेषादिवर्जितम् ॥ १६४ ॥
तथानुष्ठेयमेतद्धि पंडितेन हितैषिणा ।
यथा न विक्रियां याति मनोऽत्यर्थं विपत्स्वपि ॥१६५॥
धन्यास्ते मानवा लोके ये च प्राप्यापदां पराम् ।
विकृतिं नैव गच्छन्ति यतस्ते साधुमानसाः ॥ १६६ ॥
संक्लेशो न हि कर्तव्यः संक्लेशो बन्धकारणं ।
संक्लेशपरिणामेन जीवो दुःखस्य भाजनं ॥ १६७ ॥
संक्लेशपरिणामेन जीवः प्राप्नोति भूरिशः ।
सुमहत्कर्मसम्बन्धं भवकोटिषु दुःखदम् ॥ १६८ ॥
चित्तरत्नमसंक्लिष्टं महतामुत्तमं धनम् ।
येन सम्प्राप्यते स्थानं जरामरणवर्जितम् ॥ १६९ ॥
सम्पत्तौ विस्मिता नैव विपत्तौ नैव दुःखिताः ।
महतां लक्षणं ह्येतन्न तु द्रव्यसमागमः ॥१७०॥

आपत्सु सम्पदन्तीषु पूर्वकर्मनियोगतः ।
धैर्यमेव परं त्राणं न युक्तमनुशोचनम् ॥ १७१ ॥
विशुद्धपरिणामेन शान्तिर्भवति सर्वतः ।
संक्लिष्टेन तु चित्तेन नास्ति शान्तिर्भवेष्वपि ॥ १७२ ॥
संक्लिष्टचेतसां पुंसां माया संसारवर्धिनी ।
विशुद्धचेतसो वृत्तिः सम्पत्तिविचदायिनी ॥ १७३ ॥
यदा चित्तविशुद्धः स्यादापदः सम्पदस्तथा ।
समस्तस्वविदां पुंसां सर्वे हि महतां महत् ॥ १७४ ॥
परोऽप्युत्पथमापन्नो निषेद्धुं युक्त एव सः ।
किं पुनः स्वमनोऽत्यर्थं विषयोत्पथयायिवत् ॥ १७५ ॥
अज्ञानाद्यदि मोहाद्यत्कृतं कर्म सुकुत्सितम् ।
व्यावर्तयेन्मनस्तस्मात् पुनस्तन्न समाचरेत् ॥ १७६ ॥
अचिरेणैव कालेन फलं प्राप्स्यसि दुर्मते ! ।
विपाकेऽतीव तिक्तस्य कर्मणो यत्त्वया कृतम् ॥१७७॥
वर्धमानं हित कर्म संज्ञानाद्यो न शोषयेत् ।
दुःखभूतार्णवसंग्रस्तः स पश्चात्परितप्यते ॥१७८॥
सुखमार्थकृते मूढा किं न कुर्वन्ति मानवाः ।
येन सन्तापमायान्ति जन्मकोटिशतेष्वपि ॥१७९॥
परं च वंचयामीति यो हि मायां प्रयुज्यते ।

---

१ विशुद्धि क । २ तथा ख । ३ तत्त्वविदा पुसा ख । ४ महत्वं क.
५ स्वमनस्तु कथैव ख । ६ अस्याग्रे ख-पुस्तके श्लोकोऽयं
स्वल्पेनैव कालेन फलं प्राप्स्यसि यत्कृतं ।
पापबन्धस्य कर्मैष्या गोपयन्तुमनागपि ॥१॥
७ दुःखभूतभूतसंग्रस्त ख । ८ कृता क. ।

इहामुत्र च लोके वै तैरात्मा वंचितः सदा ॥१८०॥
पंचतासन्नतां प्राप्तं न कृतं सुकृतार्जनं ।
स मानुषेऽपि संप्राप्ते हा! गतं जन्म निष्फलम् ? ॥१८१॥
कर्मपाशविमोक्षाय यत्नं यस्य न देहिनः ।
संसारे च महागुप्तौ बद्धः संतिष्ठते सदा ॥१८२॥
गृहाचारकवासेऽस्मिन् विषयामिषलोभिनः ।
सीदंति नरशार्दूला बद्धा बान्धवबन्धनैः ॥१८३॥
गर्भवासेऽपि यद्दुःखं प्राप्तमत्रैव जन्मनि ।
अधुना विस्मृतं केन येनात्मानं न बुध्यसे ॥१८४॥
चतुरशीतिलक्षेषु योनीनां भ्रमता त्वया ।
प्राप्तानि दुःखशल्यानि नानाकाराणि मोहिना ॥१८५॥
कथं नोद्विजसे मूढ ! दुःखात् संसृतिसंभवात् ।
येन त्वं विषयासक्तो लोभेनास्मिन् वशीकृतः ॥१८६॥
यत्त्वयोपार्जितं कर्म भवकोटिषु पुष्कलं ।
तच्छेत्तुं चेन्न शक्तोऽसि गतं ते जन्म निष्फलम् ॥१८७॥
अज्ञानी क्षिपयेत्कर्म यज्जन्मशतकोटिभिः ।
तज्ज्ञानी तु त्रिगुप्तात्मा निहन्त्यन्तर्मुहूर्ततः ॥१८८॥
जीवितेनापि किं तेन कृता न निर्जरा तदा ।
कर्मणां संवरो वापि संसारासारकारिणाम् ॥१८९॥
स जातो येन[3] जातेन स्वकृता पक्वपाचना ।
कर्मणां पाकघोराणां विविधेन[4] महात्मनाम् ॥१९०॥
रोषे रोषं परं कृत्वा माने मानं विधाय च ।
सङ्गे सङ्गं परित्यज्य स्वात्माधीनसुखं कुरु ॥१९१॥

१ अधुना किं विस्मृत तेन ख । २ कर्मणां क । ३ तेन ख । ४ निवुद्धेन ख ।

परिग्रहे महाद्वेषो मुक्तौ च रतिरुत्तमा।
सद्ध्याने चित्तमेकाग्रं रौद्रार्ते नैव सुस्थितम् ॥ १९२ ॥
धर्मस्य संचये यत्नं कर्मणां च परिक्षये।
साधूनां चेष्टितं चित्तं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१९३॥
मानस्तम्भं दृढं भक्त्वा लोभाद्रिं च विदार्य वै।
मायावल्लीं समुत्पाट्य क्रोधशत्रुं निहत्य च ॥ १९४ ॥
यथाख्यातं हितं प्राप्य चारित्रं ध्यानतत्पर ।
कर्मणां प्रक्षयं कृत्वा प्राप्नोति परमं पदम् ॥ १९५ ॥
संगादिरहिता धीरा रागादिमलवर्जिता ।
शान्ता दान्तास्तपोभूषा मुक्तिकांक्षणतत्पराः ॥१९६॥
मनोवाक्काययोगेषु प्रणिधानपरायणाः।
वृत्ताढ्या ध्यानसम्पन्नास्ते पात्रं करुणापराः ॥ १९७ ॥
धृतिभावनया युक्ता शुभभावनयान्विताः ।
तत्त्वार्थाहितचेतस्कास्ते पात्रं दातुरुत्तमाः ॥ १९८ ॥
धृतिभावनया दुःखं सत्त्वभावनया भवम्।
ज्ञानभावनया कर्म नाशयन्ति न संशय ॥ १९९ ॥
अग्रहो हि शमे येषां विग्रहं कर्मशत्रुभि ।
विषयेषु निरासक्तास्ते पात्रं यतिसत्तमाः ॥२००॥
नि संगिनोऽपि वृत्ताढ्या निस्नेहाः सुश्रुतिप्रिया ।
अभूषा पि तपोभूषास्त पात्रं योगिनः सदा ॥२०१॥
मैत्रेमत्त्व सदा त्यक्त स्वकायेऽपि मनीषिभिः।
त पात्रं संयतात्मान सर्वसत्त्वहिते रता ॥ २०२ ॥

---

१ अग्रहो हि शमे च ।

परीषहजये शक्तं शक्तं कर्मपरिक्षये ।
ज्ञानध्यानतपोभूषं शुद्धाचारपरायणं ॥ २०३ ॥
प्रशान्तमानसं सौख्यं प्रशान्तकरणं शुभं ।
प्रशान्तारिमहामोहकामक्रोधनिसूदनम् ॥ २०४ ॥
निन्दास्तुतिसमं धीरं शरीरेऽपि च निस्पृहं ।
जितेन्द्रियं जितक्रोधं जितलोभमहाभटं ॥ २०५॥
रागद्वेषविनिर्मुक्तं सिद्धिसंगमनोत्सुकम् ।
ज्ञानभ्यासरतं[1] नित्यं नित्यं च प्रशमे स्थितम् ॥२०६॥
एवं विधं हि यो दृष्ट्वा स्वगृहाङ्गणमागतम् ।
मात्सर्यं कुरुते मोहात् क्रिया तस्य न विद्यते ॥ २०७ ॥

चतुर्भि कुलकम् ।

मायां निरासिकां कृत्वा तृष्णां च परमौजसः ।
रागद्वेषौ समुत्सार्य प्रयाता पदमक्षयम् ॥ २०८ ॥
धीराणामपि ते धीरा ये निराकुलचेतसः ।
कर्मशत्रुमहासैन्यं ये जयन्ति तपोबलात् ॥ २०९ ॥
परीषहजये शूराः शूराश्चेन्द्रियनिग्रहे ।
कषायविजये शूरास्ते शूरा गदिता बुधैः ॥ २१० ॥
नादत्तेऽभिनवं कर्म सच्चारित्रनिविष्टधीः ।
पुराणं निर्जयेद्गाढं विशुद्धध्यानसंगतः ॥ २११ ॥
संसारावासनिर्वृत्ताः शिवसौख्यसमुत्सुकाः ।
सद्भिस्ते गदिताः प्राज्ञाः शेषाः शास्त्रस्य[2] वंचकाः॥२१२॥
समता सर्वभूतेषु यः करोति सुमानसः ।
समत्वभावनिर्मुक्तो यात्यसौ पदमव्ययम् ॥ २१३ ॥

---

१ ज्ञानभ्यासरतो क। २ स्वार्थस्य ख ।

इन्द्रियाणां जये शूराः कर्मबन्धे च कातराः ।
तत्त्वार्थाहितचेतस्का स्वशरीरेऽपि निस्पृहा ॥ २१४ ॥
परीषहमहारातिवननिर्दलनक्षमाः ।
कषायविजये शूराः स शूर इति कथ्यते ॥२१५॥
संसारध्वंसिनीं चर्यां ये कुर्वंति सदा नराः ।
रागद्वेषहतिं कृत्वा ते यान्ति परमं पदम् ॥ २१६ ॥
मलैस्तु रहिता धीरा मलदग्धाङ्गयष्टय ।
ब्रह्मचारिणो नित्यं ज्ञानाभ्यासं सिषेविर ॥ २१७ ॥
ज्ञानभावनया शक्तो निभृतेनान्तरात्मनः ।
अप्रमत्तं गुणं प्राप्य लभन्ते हितमात्मन ॥ २१८ ॥
संसारवासभीरूणां त्यक्तान्तर्बाह्यसंगिनाम् ।
विषयेभ्यो निवृत्तानां श्लाघ्यं तेषां हि जीवितम्॥२१९॥
सम शत्रौ च मित्रे च समो मानापमानयो ।
लाभालाभे समो नित्यं लोष्ठकांचनयोस्तथा ॥ २२० ॥
सम्यक्त्वभावनाशुद्धं ज्ञानसेवापरायण ।
चारित्राचरणासक्तमक्षीणसुखकांक्षिणम् ॥२२१॥
ईदृशं श्रमणं दृष्ट्वा यो न मन्येत दुर्मधी ।
नृजन्मनिष्फलं सारं संहारयति सर्वथा ॥२२२॥
रागादिवर्जेनं सङ्ग परित्यज्य दृढव्रता ।
धीरा निर्मलचेतस्का तपस्यन्ति महाधियः ॥२२३॥
ससारोद्विग्नचित्तानां नि श्रेयससुखैषिणाम् ।
सर्वसंगनिवृत्तानां धन्यं तेषां हि जीवितम् ॥२२४॥

१ परमां गतिं ग । २ शिष्या ग । ३ शिक्षा ग. । ४ निभृतेरन्तरा भव ग. । ५ परिसक्त क. । ६ मताभाशित क. । ७ महाधिया क ।

सप्तभीस्थानमुक्तानां यत्रास्तमितशायिनाम् ।
त्रिकालयोगयुक्तानां जीवितं सफलं भवेत् ॥२२५॥
आर्त्तरौद्रपरित्यागाद् धर्मशुक्लसमाश्रयात् ।
जीवः प्राप्नोति निर्वाणमनन्तसुखमच्युतं ॥२२६॥
आत्मानं विनयाम्[1]याशु विषयेषु पराङ्मुखः ।
साधयेत्स्वहितं प्राज्ञो ज्ञानाभ्यासरतो यतिः ॥२२७॥
यथा संगपरित्यागस्तथा कर्मविमोचनम् ।
यथा च कर्मणां छेदस्तथासन्नं परं पदम् ॥२२८॥
यत्परित्यज्य गन्तव्यं तत्स्वकीयं कथं भवेत् ।
इत्यालोच्य शरीरेऽपि विद्वां[2]न् तां च परित्यजेत् ॥२२९॥
नूनं नात्मा प्रियस्तेषां ये रता संगसंग्रहे ।
समासीनाः प्रकृतिस्थाः स्वीकर्तुं नैवशक्यते ॥२३०॥
शरीरमात्रसंगेन भवेदारंभवर्धनम् ।
तदशाश्वतमत्रा[3]णं तस्मिन् विद्वान् रतिं त्यजेत् ॥२३१॥
संगात्संजायते गृद्धिर्गृद्धौ वाञ्छति संचयम् ।
संचयाद्वर्धते लोभो लोभाद् दुःखपरंपरा ॥२३२॥
ममत्वाज्जायते लोभो लोभाद्रागश्च जायते ।
रागाच्च जायते द्वेषो द्वेषाद् दुःखपरंपरा ॥२३३॥
निर्ममत्वं परं तत्वं निर्ममत्वं परं सुखं ।
निर्ममत्वं परं बीजं मोक्षस्य कथितं बुधैः ॥२३४॥
निर्ममत्वे सदा सौख्यं संसारस्थितिच्छेद[4]नम् ।
जायते परमोत्कृष्टमात्मन संस्थिते सति ॥२३५॥

१ विनयाभ्यासे ख । २ विद्वानाशा परित्यजेत् ख । ३ मत्राणा क, मात्राणां ख। ४ भेदन क ।

अर्थो मूलमनर्थानामर्थो निर्वृतिनाशनम् ।
कषायोत्पादकश्चार्थो दु:खानां च विधायकः ॥ २३६ ॥
प्राप्तोज्झितानि वित्तानि त्वया सर्वाणि संसृतौ ।
पुनस्तेषु रतिं कर्तुं युक्तवान्न इहोदने ॥ २३७ ॥
को वा वित्तं समादाय परलोकं गतः पुमान् ।
येन तृष्णाग्निसंतप्तः कर्म बध्नाति दारुणम् ॥ २३८ ॥
तृष्णान्धा नैव पश्यन्ति हितं वा यदि वाहितम् ।
सन्तोषाञ्जनमासाद्य पश्यन्ति सुधियो जनाः ॥ २३९ ॥
सन्तोषसाररसद्रत्नं समादाय विचक्षणाः ।
भवन्ति सुखिनो नित्यं मोक्षसन्मार्गवर्तिनः ॥ २४० ॥
तृष्णानलप्रदीप्तानां सुसौख्यं तु कुतो नृणाम् ।
दु:खमेव सदा तेषां ये रता धनसंचये ॥ २४१ ॥
सन्तुष्टाः सुखिनो नित्यमसन्तुष्टाः सुदु:खिताः ।
उभयोरन्तरं ज्ञात्वा सन्तोषे क्रियतां रतिः ॥ २४२ ॥
द्रव्याशां दूरतस्त्यक्त्वा सन्तोषं कुरु सन्मते ! ।
मा पुनर्दीर्घसंसारे पर्यटिष्यसि निश्चितम् ॥ २४३ ॥
ईश्वरो नाम सन्तोषी यो प्रार्थयते परम् ।
प्रार्थना महतामत्र परं दारिद्र्यकारणम् ॥ २४४ ॥
हृदयं दह्यतेऽत्यर्थं तृष्णाग्निपरितापितं ।
न शक्यं शमनं कर्तुं विना सन्तोषवारिणा ॥ २४५ ॥
यैः सन्तोषामृतं पीतं निर्ममत्वेन वासितं ।
त्यक्तं तैर्मानसं दु:खं दुर्जनेनेव सौहृदं ॥ २४६ ॥

१ कर्तुं क. । २ क्रियते क । ३ सन्तोषोदकं ख । ४ दुर्जनैरिव क ।

यैः सन्तोषामृतं पीतं तृष्णातृट्प्रणाशनं ।
तैश्च निर्वाणसौख्यस्य कारणं समुपार्जितम् ॥ २४७॥
स[1]न्तोषं लोभनाशाय र[2]तिं च सुखशान्तये ।
ज्ञानं च तपसां वृद्धौ धारयन्ति दिगम्बराः ॥ २४८ ॥
ज्ञानदर्शनसम्पन्न आत्मा चैको ध्रुवो मम ।
शेषा भावाश्च मे बाह्या सर्वे संयोगलक्षणाः ॥ २४९ ॥
सयोगमूलजीवेन प्राप्ता दुःखपरपरा ।
तस्मात्संयोगसम्बन्धं त्रिविधेन परित्यजेत् ॥ २५०॥
ये हि जीवादयो भावाः सर्वज्ञैर्भाषिताः पुराः ।
अन्यथा च क्रियास्तेषां चिंतता[3]र्थनिरर्थकाः ॥ २५१ ॥
यथा च कुरुते जन्तुर्ममत्वं विपरीतधीः ।
तथा हि बन्धमायाति कर्मणस्तु समन्ततः ॥ २५२ ॥
अज्ञानावृतचित्तानां रागद्वेषरतात्मनाम् ।
आरंभेषु प्रवृत्तानां हितं तस्य न भीतवत् ॥ २५३ ॥
परिग्रहपरिष्वङ्गाद्रागद्वेषश्च जायते ।
रागद्वेषौ महाबन्धः कर्मणां भवकारणम् ॥ २५४ ॥
सर्वसङ्गान् पशून् [4] कृत्वा ध्यानाग्निनाहुतिं क्षिपेत् ।
कर्माणि समिधश्चैव योगोऽयं सुमहाफलम् ॥ २५५ ॥
राजसूयसहस्राणि अश्वमेधशतानि च ।
अनन्तभागतुल्यानि न स्युस्तेन कदाचन ॥२५६॥
सा प्रज्ञा या शमे याति विनियोगपुराहिता ।
शेषा च निर्दया प्रज्ञा कर्मोपार्जनकारिणी ॥२५७॥

१ सतोषो क। २ धृति ख । ३ चिन्तात्र निरर्थका ख । ४ सर्वसगात् पसून् कृत्वा ख

प्रज्ञाङ्गना सदा सेव्या पुरुषेण सुखावहा ।
हेयोपादेयतत्त्वज्ञा या रता सर्वकर्मणि ॥ २५८ ॥
दयाङ्गना सदा सेव्या सर्वकालफलप्रदा ।
सेवितासौ करोत्याशु मानसं करुणात्मनम् ॥ २५९ ॥
मैत्र्यङ्गना सदोपास्या हृदयानन्दकारिणी ।
या विधत्ते कृतोपास्तिश्चित्तं विक्षेपवर्जितं ॥ २६० ॥
सर्वसत्त्वे दया मैत्री यः करोति सुमानसः ।
जयत्यसावरीन् सर्वान् बाह्याभ्यन्तरसंस्थितान् ॥२६१॥
शमं नयन्ति भूतानि ये शक्ता देशनाविधौ ।
कालादिलब्धियुक्तानि प्रत्यहं तस्य निर्जरा ॥ २६२ ॥
शमो हि न भवेद्येषां ते नराः पशुसन्निभाः ।
समृद्धा अपि तच्छास्त्रे कामार्थरतिसङ्गिनः ॥ २६३ ॥
विश्व (श्वे) नरकतिर्यक्षु भ्रमतोऽपि निरन्तरं ।
यतोऽस्यौ विद्यते नैव समो दुरितघातिनं ॥२६४॥
मनसाल्हादिनी सेव्या सर्वकालसुखप्रदा ।
उपसेव्या त्वया भद्र ! क्षमा नाम कुलाङ्गना ॥ २६५ ॥
क्षमया क्षीयते कर्म दु खदं पूर्वसंचितं ।
चित्तं च जायते शुद्धिं विक्षेपभयवर्जितम् ॥२६६॥
प्रज्ञा तथा च मैत्री च समता करुणा क्षमा ।
सम्यक्त्वसहिता सेव्या सिद्धिसौख्यसुखप्रदा ॥२६७॥

---

१ क्षमं ख. २ कारुण्यरमणी क; करुणारमणी ख । ३ सुपस्य ख । ४ सम्यक्त्वे ख । ५ मन्ता सुमिपदं ख. । ६ असमान् लोकान्पूर्वमवलोक्य ख—पुस्तके ।
कर्मणां ध्वंसने चित्तं वार्गं मोक्षादिसाधने ।
द्वेषं कषायवर्गं च नायोम्यो सम्पुमर्हति ॥ १ ॥
७ कर्म क. । ८ प्रज्ञासुखा ख. ।

भयं याहि भवाब्धीमात् प्रीतिं च जिनशासने ।
शोकं पूर्वकृतात्पापाद्यदीच्छेद्धितमात्मनः ॥२६८॥
कुसंसर्गः सदा त्याज्यो दोषाणां प्रविधायकः ।
सगुणोऽपि जनस्तेन लघुतां याति तत्क्षणात् ॥२६९॥
सत्सङ्गो हि बुधैः कार्यः सर्वकालसुखप्रदः ।
तेनैव गुरुतां याति गुणहीनोऽपि मानवः ॥२७०॥
साधूनां खलसंगेन चेष्टितं मलिनं भवेत् ।
सैंहिकेय[1]समाशक्या भाव्यं भावोरपि क्षयः ? ॥२७१॥
रागादयो महादोषाः खलास्ते गदिता बुधैः ।
तेषां समाश्रयस्ताज्यस्तत्वविद्भिः सदा नरैः ॥२७२॥
गुणाः सुपूजिता लोके गुणाः कल्याणकारकाः ।
गुणहीना हि लोकेऽस्मिन् महान्तोऽपि मलीमसा ॥२७३॥
सद्गुणै गुरुतां याति कुलहीनोऽपि मानव ।
निर्गुणः सकुलाढ्योऽपि लघुतां याति तत्क्षणात् ॥२७४॥
सद्वृत्तः पूज्यते देवैराखण्डलपुरःसरैः ।
असद्वृत्तस्तु लोकेऽस्मिन्निन्द्यतेऽसौ सुरैरपि ॥२७५॥
चारित्रं तु समादाय ये पुनर्भोगमागताः ।
ते साम्राज्यं परित्यज्य दास्यभावं प्रपेदिरे ॥२७६॥
शीलसंधारिणां पुसां मनुष्येषु सुरेषु च ।
आत्मा गौरवमायाति परत्रेह च संततं ॥२७७॥
आपदो हि महाघोराः सत्वसाधनसंगतैः ।
निस्[2]तीर्याग्रं महोत्साहैः शीलरक्षणतत्परैः ॥२७८॥

१ सैंहिकेयात्समासत्या भत्याभागोऽपि क्षया ख । २ निस्तीर्यते ख. ।

वरं तत्क्षणतो मृत्युः शीलसंयमधारिणाम् ।
न तु सच्छीलभंगेन साम्राज्यमपि जीवितम् ॥२७९॥
धनहीनोऽपि शीलाढ्यः पूज्यः सर्वत्र विष्टपे ।
शीलहीनो धनाढ्योऽपि न पूज्यः स्वजनेष्वपि ॥२८०॥
वरं श्वशुरगृहे भिक्षा याचना शीलधारिणां ।
न तु सच्छीलभंगेन साम्राज्यमपि जीवितम् ॥ २८१ ॥
वरं सदैव दारिद्र्यं शीलैश्वर्यसमन्वितम् ।
न तु शीलविहीनानां विभवाश्चक्रवर्तिनः ॥२८२॥
धनहीनोऽपि सद्वृत्तो याति निर्वाणनायतां ।
चक्रवर्त्यप्यसद्वृत्तो याति दु खपरम्पराम् ॥२८३॥
सुखराशिर्भवेत्तेषां येषां शीलं सुनिर्मलम् ।
न सच्छीलविहीनानां दिवसोऽपि सुखावहः ॥२८४॥
देहं दहति कायाग्निस्तत्क्षणं समुदीरितम् ।
वर्धमानं समानम्य चिरकालसमार्जितम् ॥२८५॥
क्रोधेन बध्यते कर्म दारुणं भववर्धनम् ।
शिक्षा च क्षीयते सद्यस्तपसा समुपार्जितम् ॥२८६॥
सुदुष्टमनसा पूर्व यत्कर्मसमुपार्जितम् ।
तस्मिन् फलप्रदे यास्ते कोऽन्येषां क्रोधमुद्वहेत् ॥२८७॥
विद्यमानं ग्यं यद्वधेतमो जायते धृति ।
कर्मणा बाध्यमानेन किं विमुक्तिर्न जायते ॥२८८॥
स्वदिन स परित्यज्य सयत्नं पापमाहरत् ।
धर्मो न सत्करागम्यस्य स कृतघ्नो न विद्यते ॥२८९॥

१ सम्यान्तमपि ग । आढ्योऽप ग-पुस्तके नास्ति । २ दिवसो न च पसप्रदयास्ति ग । व ग ।

शत्रुभावस्थितान् यस्तु करोति वशवर्तिनः ।
प्रज्ञाप्रयोगसामर्थ्यात् स शूरः स च पंडितः ॥२९०॥
विवादो हि मनुष्याणां धर्मकामार्थनाशकृत् ।
वैरान् वन्धुजनो नित्यं वाहितुं कर्मणा जनाः॥२९१॥
धन्यास्ते मानवा नित्यं ये सदा क्षमया युताः ।
वंचमाना स १ वै लुब्धा विवादं नैवकुर्वते ॥२९२॥
वादेन बहवो नष्टा येऽपि द्रव्यमहोत्कटाः ।
वरमर्थपरित्यागो न विवादः खलैः सह ॥२९३॥
अहंकारो हि लोकाना विनाशाय न वृद्धये ।
यथा विनाशकाले स्यात् प्रदीपस्य शिखोज्वला ॥२९४॥
हीनयोनिषु वंभ्रम्य चिरकालमनेकधा ।
उच्चगोत्रे सकृत्प्राप्ते कोऽन्यो मान समुद्वहेत् ॥ २९५॥
रागद्वेषौ महाशत्रू मोक्षमार्गमलिम्लुचौ ।
ज्ञानध्यानतपोरत्नं हरतः सुचिरार्जितम् ॥ २९६ ॥
चिरं गतस्य संसारे वहुयोनिसमाकुले।
प्राप्ता सुदुर्लभा बोधिः शासने जिनभापिते ॥ २९७॥
अधुना तां समासाद्य संसारच्छेदकारिणीम् ।
प्रमादो नोचितः कर्तुं निमेषमपि धीमता ॥ २९८॥
प्रमादं ये तु कुर्वन्ति मूढा विपयलालसाः ।
नरकादिपु तिर्यक्षु ते भवन्ति चिर नराः ॥ २९९ ॥
आत्मा यस्य वशे नास्ति कुतस्तस्य परे जनाः ।
आत्माधीनस्य शान्तस्य त्रैलोक्यं वशवर्तिनः ॥ ३०० ॥

१ वन्धजन नोपि नित्य माहितकर्मणा ख । २ वर्तिन ख ।

आत्माधीनं तु यत्सौख्यं तत्सौख्यं वर्णितं बुधैः ।
पराधीनं तु यत्सौख्यं दुःखमेव न तत्सुखं ॥ २०१ ॥
पराधीनं सुखं कष्टं राज्ञामपि महौजसां ।
तस्मादेतत् समालोच्य आत्मायत्तं सुखं कुरु ॥ २ २ ॥
आत्मायत्तं सुखं लोके परायत्तं न तत्सुखं ।
एतत् सम्यग्विजानन्तो मुंचन्ते मानुषा कथम् ॥२०३॥
नो संगाज्जायते सौख्यं मोक्षसाधनमुत्तमम् ।
संगाच्च जायते दुःखं संसारस्य निबन्धनम् ॥ २०४ ॥
पूर्वकर्मविपाकेन बाधायां यच्च शोचनम् ।
तदिदं तु म्वदष्टस्य अरत्रेर्वाहिताडनम् ॥ २०५ ॥
अन्यो हि बाधते दुःखं मानसं न विचक्षणे ।
पवनैर्नीयते तूलं मेरोः शृङ्गं न जातुचित् ॥ २०६॥
परज्ञानफलं वृत्तं न विभूतिर्गरीयसी ।
तथा हि पचते कर्म सद्धृत्तेन विमुच्यते ॥२ ७॥
संवेग परमे कार्यं श्रुतस्य गदितं बुधैः ।
तस्माद्ये धनमिच्छन्ति ते त्विच्छंत्यमृताद्विषम् ॥ २०८॥
श्रुतं वृत्तं शमो येषां धनं परमदुर्लभम् ।
त नरा धनिनः प्रोक्ताः शेषा निर्धनिनः सदा ॥२ ९॥
को वा हरिः समायातो योगैर्दुरितपञ्जनैः ।
दन्तो वा दवगजो वा चक्रांको वा नराधिपः ॥ २१० ॥
आत्मा वै सुमहत्तीर्थं यदासौ प्रशमे स्थितः ।
यदासौ प्रशमो नास्ति ततस्तीर्थनिरर्थकम् ॥२११॥

---

१ मुच्यन्ते क । २ अरत् मैत्र्याहिताडनं ख । ३ तथा क ।

शीलव्रतजले स्नातुं शुद्धिरस्य शरीरिणः ।
न तु स्नातस्य तीर्थेषु सर्वेष्वपि महीतले ॥३१२॥
रागादिवर्जितं स्नानं ये कुर्वन्ति दयापराः ।
तेषां निर्मलता योगैर्न च स्नातस्य वारिणा ॥३१३॥
आत्मानं स्नापयेन्नित्यं ज्ञाननीरेण चारुणा ।
येन निर्मलतां याति जीवो जन्मान्तरेष्वपि ॥३१४॥
सर्वाशुचिमये काये शुक्रशोणितसंभवे ।
शुचित्वं येऽभिवाञ्छन्ति नष्टास्ते जडचेतसः ॥३१५॥
औदारिकशरीरेऽस्मिन् सप्तधातुमयेऽशुचौ ।
शुचित्वं येऽभिमन्यन्ते पशवस्तेन मानव· ॥३१६॥
सत्येन शुद्धयते वाणी मनो ज्ञानेन शुद्धयति ।
गुरुशुश्रूषया काय शुद्धिरेष सनातन ॥३१७॥
स्वर्गमोक्षोचितं नृत्व मूढैर्विषयलालसै· ।
कृतं स्वल्पसुखस्यार्थं तिर्यङ्नरकभाजनम् ॥३१८॥
सामग्रीं प्राप्य सम्पूर्णां यो विजेतुं निरुद्यम ।
विषयारिमहासैन्यं तस्य जन्मनिरर्थकम् ॥३१०॥
निरवद्यं वदेद्वाक्यं मधुरं हितमर्थवत् ।
प्राणिना चेतसोऽल्हादि मिथ्यावादैर्बहिष्कृतम् ॥३२०॥
प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तव ।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं किं वाक्येऽपि दरिद्रता ॥३२१॥
व्रतं शीलतपोदानं संयमोऽर्हत्पूजनम् ।
दु खविच्छित्तये सर्वं प्रोक्तमेतन्न संशय ॥३२२॥

१ योगे क योग्ये ख । २ वादि क ख ।

तृणतुल्यं परद्रव्यं परं[1] च स्वशरीरवत् ।
पररामा समा मातुः पश्यन् याति परं पदम् ॥२२३॥
सम्यक्त्वसमतायोगे नैःसंग्ये[2] क्षमता[3] तथा ।
कषायविषयासंगः कर्मणां निर्जरा परा ॥२२४॥
अथ तु कुलभद्रेण भवविच्छित्तिकारणम् ।
दृब्धो बालस्वभावेन ग्रन्थः सारसमुच्चयः ॥२२५॥
ये भक्त्या भावयिष्यन्ति भवकारणनाशनम् ।
तेऽचिरेणैव कालेन प्राप्स्यं १ प्राप्स्यंति शाश्वतम् ॥२२६
सारसमुच्चयमेतद्ये पठन्ति समाहिताः ।
ते स्वल्पेनैव कालेन पदं यास्यन्त्यनामयं ॥२२७॥
नमः परमसद्ध्यानविघ्ननाशनहेतवे ।
महाकल्याणसम्पत्तिकारिणेऽरिष्टनेमये ॥२२८॥

इति *श्रीकुलभद्रविरचितं *सारसमुच्चयचरितं
समाप्तम् ।

---

१ परं संच शरीरवत् क. । २ नैःसंग्यं क. । ३ समता क. ।
पुष्पिकागत पाठ पुस्तकद्वयेऽपि नास्ति । इति सारसमुच्चयग्रन्थसमाप्तं
इति ग-पुस्तके पाठः ।

सिरिसुहचंदाइरियविरइया

अंगपण्णत्ती ।



द्वादशाङ्गप्रज्ञप्तिः ।

सिद्धं बुद्धं णिच्चं णाणाभूसं णमीय सुहयंदं ।
वोच्छे पुव्वपमाणमेगारहअंगसंजुत्तं ॥ १ ॥

सिद्धं बुद्धं नित्यं ज्ञानभूषणं नत्वा शुभचन्द्रम् ।
वक्ष्ये पूर्वप्रमाणमेकादशाङ्गसंयुक्तम् ॥

तिविहं पयं जिणेहिमत्थपयं खलु पमाणपयमुत्तं ।
तदियं मज्झपयं हु तत्थत्थपयं परूवेमो ॥ २ ॥

त्रिविधं पदं जिनैरर्थपदं खलु प्रमाणपदमुक्तम् ।
तृतीयं मध्यमपदं हि तत्रार्थपदं प्ररूपयामः ॥

जाणदि अत्थं सत्थं अक्खरबूहेण जेत्तियेणेव ।
अत्थपयं तं जाणह घडमाणय सिग्घमिच्चादि ॥ ३ ॥

जानाति अर्थं सार्थं अक्षरव्यूहेन यावतैव ।
अर्थपदं तज्जानीहि घटमानय शीघ्रमित्यादि ॥

छंदपमाणपबद्धं पमाणपयमेत्थ मुणह जं तं खु ।
मज्झपयं जं आगमभणियं तं सुणह भवियजणा ॥ ४ ॥

छन्दःप्रमाणप्रबद्धं प्रमाणपदमत्र जानीहि यत्तत् खलु ।
मध्यमपदं यदागमभणितं तच्छृणुत भव्यजनाः ! ॥

सोलससयचोत्तीसा कोडी तियसीदिलक्खयं जत्थ ।
सत्तसहस्सट्ठसयाऽडसीदऽपुणरुत्तपदवण्णा ॥ ५ ॥

पोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोट्यः त्र्यशीतिलक्षाणि चैव ।
सप्तसहस्राणि अष्टशतान्यष्टाशीतिःपुनरेकपदवर्णाः
१६३४, ८३, ७, ८, ८८ मध्यमपदाक्षरसंख्या ।
सत्तसहस्सपयेहिं संघावसुदं णिरूविय जाण ।
इगिदरगदीण रम्मं तं संखेज्जेहिं पडिवत्ती ॥ ६ ॥
संख्यातसहस्रपदैः संघातश्रुतं निरूपितं जानीहि ।
एकतरगतीनां रम्यं तत्संख्यातैः प्रतिपत्तिः ॥
चउगइसरूवरूवयपडिवत्तिदहिं अणियोगं ।
चोद्दसमग्गणसण्णाभेयविसेसेहि संजुत्तं ॥ ७ ॥
चतुर्गतिस्वरूपरूपकप्रतिपत्तिसंख्यातैरनुयोगम् ।
चतुर्दशमार्गणासंज्ञाभेदविशेषैः संयुक्तं ॥
चउरादीअणियोगे पाहुडपाहुडसुदं सया होदि ।
चउवीसे तम्हि हवे पाहुडय वत्थुअहियारे ॥ ८ ॥
चतुराद्यनुयोगे प्राभृतप्राभृतश्रुतं सदा भवति ।
चतुर्विंशतौ तस्मिन् भवेत् प्राभृतं वस्त्वधिकारे ॥
वीसं वीसं पाहुडअहियारे एकवत्थु अहियारो ।
तहिं दस चोद्दस अट्ठट्ठारसयं बार बारं च ॥ ९ ॥
विंशतौ विंशतौ प्राभृताधिकारे एकवस्त्वधिकारः ।
तत्र दश चतुर्दश अष्ट अष्टादश द्वादश द्वादश च ।
सोलं च वीसं तीसं पण्णारसयं च चउसु दस वत्थु ।
एदहि वत्थुएहिं चउदसपुव्वा हवंति पुणो ॥ १० ॥
षोडश च विंशतिः त्रिंशत् पंचदश च चतुर्षु दश वस्तूनि ।
एतैः वस्तुभिः चतुर्दशपूर्वाणि भवन्ति पुनः ॥

पणणउदिसया वत्थू णवयसया तिसहस्सपाहुडया ।
चउदस पुव्वे सव्वे हवंति मिलिदा य ते तम्हि ॥ ११ ॥

पचनवतिशतानि वस्तूनि नवकशतानि त्रिसहस्रप्राभृतानि ।
चतुर्दश पूर्वाणि सर्वाणि भवन्ति मिलितानि च तानि तत्र ॥

वत्थू १९५ वत्थू एकं प्रति पाहुड २० । पाहुडसख्या ३९००, पाहुड एकं प्रति पाहुड, (पाहुड) २४ जात अनुयोगसख्या २२, ४६, ४०० अनुयोगे पाहुडसख्या ।

सयकोडी बारुत्तर तेसीदीलक्खमंगगंथाणं ।
अट्ठावण्णसहस्सा पयाणि पंचेव जिणदिट्ठं ॥ १२ ॥

शतकोटि द्वादशोत्तरा त्र्यशीतिलक्षाण्यङ्गग्रंथाना ।
अष्टापचाशत्सहस्राणि पदानि पचैव जिनदृष्टानि ॥

द्वादशाङ्गश्रुतपदाना सख्या ११२, ८३, ५८,००,५ ।

पण्णत्तरि वण्णाणं सयं सहस्साणि होदि अट्ठेव ।
इगिलक्खमट्ठकोडि पइण्णयाणं पमाणं हु ॥ १३ ॥

पंचसप्तति वर्णानां शत सहस्राणि भवति अष्टैव ।
एकलक्ष अष्टकोट्य प्रकीर्णकाना प्रमाण हि ॥

अङ्गबाह्यश्रुताक्षरसख्या ८, ०१, ०१, १७५ ।

पणदस सोलस पण पण णव णभ सग तिण्णि[1] चेव सगं[2] ।
सुण्णं[3] चउचउसगछचउचउअट्ठेकसव्व[4]सुदवण्णा ॥१४॥

पचदश षोडश पच पच नव नभ सप्त त्रीणि चैव सप्त ।
शून्य चतु चतु.सप्तषट्चतु चतुरष्टैकसर्वश्रुतवर्णाः ॥

---

१ तिणि पुस्तके पाठ । २ सग इति पाठ पुस्तके । ३ सुण पुस्तके पाठ । ४ सव इति पाठ पुस्तके ।

सर्वयुताक्षराणि—

१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ ।

आयार पढमंग तत्थट्ठारससहस्सपयमेव ।
यत्थायरंति भव्वा मोक्खपहं तेण त णाम ॥ १५ ॥

आचारं प्रथमाङ्गं तत्राष्टादशसहस्रपदमात्रं ।
यत्राचरन्ति भव्या मोक्षपथं तेन तन्नाम ।

कहं चरे कहं चिट्ठे कहमासे कहं सये ।
कहं भासे कहं भुंजे कहं पावं ण बंधइ ॥ १६ ॥

कथं चरेत् कथं तिष्ठत् कथमासीत कथं शयीत ।
कथं भाषेत कथं भुञ्जीत कथं पापं न बध्यते ।

जदं चरे जदं चिट्ठे जदमासे जदं सये ।
जदं भासे जदं भुंजे एवं पावं ण बंधइ ॥ १७ ॥

यतं चरेत् यतं तिष्ठेत् यतं आसीत यतं शयीत ।
यतं भाषेत यतं भुञ्जीत एवं पापं न बध्यते ॥

महव्वयाणि पंचेव समिदीओक्खरोहण ।
लोओ आवसयाछक्कमचेलण्हाणमूसया ॥ १८ ॥

महाव्रतानि पञ्चैव समितयोऽक्षरोधनं ।
लोच आवश्यकषट्क अचेलस्नानमूशयनानि ॥

अदंतवणमेगभत्ती ठिदिभोयणमेव हि ।
यदीणं च समायारं वित्थरेण परूवए ॥ १९ ॥

अदन्तमनैकभक्ते स्थितिभोजनमेव हि ।
यतीनां च समाचारं विस्तारेणैव प्ररूपयेत् ॥

आचाराङ्गस्य पदानि १८००० । आचाराङ्गस्य श्लोकसख्या, ९१९-५९२३११८७००० । आचाराङ्गस्य अक्षरसख्या २९९२६९५४-१९८४००० इति ।

आयाराग गद-इत्याचाराङ्ग गत ।

सूदयडं विदियंगं छत्तीससहस्सपयप्पमाणं खु ।
सूचयदि सुत्तत्थं संखेवा तस्स[1] करणं तं ॥ २० ॥

सूत्रकृत् द्वितीयाङ्ग षट्त्रिंशत्सहस्रपदप्रमाण खलु ।
सूचयति सूत्रार्थ सक्षेपेण तस्य करण तत् ॥

णाणविणयादिविग्घातीदाज्झयणादिसव्वसक्किरिया ।
पण्णायणा (य) सुकथा कप्पं ववहारविसकिरिया ॥ २१ ॥

ज्ञानविनयादिविघ्नातीतस्वाध्यायादिसर्वसत्क्रिया ।
प्रज्ञापना च सुकथा कल्प्य व्यवहारवृपक्रिया ॥

छेदोवट्ठावणं जइण समयं[2] यं परूवदि ।
परस्स समयं जत्थ किरियाभेया अणेयसे ॥ २२ ॥

छेदोपस्थापन यतीना समय यत् प्ररूपयति ।
परस्य समय यत्र क्रियाभेदान् अनेकशः ॥

पयपमाण ३६००० । श्लोकप्रमाणं १८३९१८४६ ३७४०००
अक्षरप्रमाण ५८८५३९०८३९६८००० ।

इदि सूदयड विदियग गद—इति सूत्रकृद् द्वितीयाङ्ग गत ।

बादालसहस्सपदं ठाणंगं ठाणभेयसंजुत्तं ।
चिट्ठंति ठाणभेया एयादी जत्थ जिणदिट्ठा ॥ २३ ॥

---

१ तस्य सूत्रस्य कृत करण । २ स्वसमय जैनसमय ।

द्वाचत्वारिंशत्सहस्रपदं स्थानाङ्गं स्थानभेदसंयुक्तं ।
तिष्ठन्ति स्थानभेदा एकादयो यत्र जिनदृष्टा ॥

संगहणयेण जीवो एक्को ववहारदो दु संसारिओ मुत्तो ।
सो तिविहो पुणुप्पादव्वयधोव्वसजुत्तो ॥ २४ ॥

संग्रहनयेन जीव एको व्यवहारतस्तु संसारी मुक्तः ।
स त्रिविधः पुनरुत्पादव्ययध्रौव्यसंयुक्तः ॥

चउगइसंकमणजुदो पचविहो पंचभावभेएण ।
पुव्वपरदक्खिणुत्तरउड्ढाघोगमणदो छद्धा ॥ २५ ॥

चतुर्गतिसंक्रमणयुक्तः पंचविधः पंचभावभेदेन ।
पूर्वापरदक्षिणोत्तरोर्ध्वाधोगमनतः षोढा ॥

सिय अत्थि णत्थि उहयं सिय वत्तव्वं च अत्थिवत्तव्वं ।
सिय वत्तव्वं णत्थि उभहो वत्तव्वमिदि सत्त ॥ २६ ॥

स्यादस्ति, नास्ति उभयं, स्यादवक्तव्य., अस्त्यवक्तव्य., ।
स्यादवक्तव्यो नास्ति, उभयोऽवक्तव्य इति सप्त ॥

अट्ठविहकम्मजुत्तो अत्थि णवच्छ णवत्थगो जीवो ।
पुढविजलतेउवाउपत्तेयणिगोयविति चपणा ॥ २७ ॥

अष्टविधकर्मयुक्तः अस्ति नवधा नवार्थको जीवः ।
पृथ्वीजलतेजोवायुप्रत्येकनिगोदद्वित्रिचतुःपंचेन्द्रियाः ॥

दहभया पुण जीवा एवमजीवं तु पुग्गलो एक्को ।
अणुखंधादो दुविहो एवं सव्वत्थ णायव्वं ॥ २८ ॥

दशभेदाः पुनः जीवा एकोऽजीवः तु पुद्गलः एकः ।
अणुस्कन्धतो द्विविधः एवं सर्वत्र ज्ञातव्यं ॥

ठाणंगस्स पयप्पमाण ४२००० । श्लोक२१४५७१५४१०३०००
अक्षरप्रमाण ६८६६२८९३१२९६००० ।

इदि ठाणाग तिदिय गद–इति स्थानाङ्ग तृतीय गतम् ।

समवायंगं अडकदिसहस्समिगिलक्खमाणुपयमेत्तं ।
संगहणयेण दव्वं खेत्तं कालं पडुच्च भवं ॥ २९ ॥

समवायाङ्ग अष्टकृतिसहस्र एकलक्षमानपदमात्र ।
सग्रहनयेन द्रव्य क्षेत्र काल प्रतीत्य भाव ॥

दीवादी अवियंति अत्था णज्जंति सरित्थसामण्णा ।
दव्वा धम्माधम्माजीवपदेसा तिलोयसमा ॥ ३० ॥

द्वीपादयो अवेयन्ते अर्था ज्ञायन्ते सदृशसामान्येन ।
द्रव्येण धर्माधर्मजीवप्रदेशा[1] त्रिलोकसमाः ॥

सीमंतणरय माणुसखेत्तं उडुइंदयं च सिद्धिसिलं ।
सिद्धट्ठाणं सरिसं खेत्तासयदो मुणेयव्वं ॥ ३१ ॥

सीमन्तनरक मानुषक्षेत्र ऋत्विन्द्रक च सिद्धिशिला ।
सिद्धस्थान सदृश क्षेत्राश्रयतो मतव्य ॥

ओहिट्ठाणं जंबूदीवं सव्वत्थसिद्धि सम्माणं ।
णंदीसरवावीओ वाणिंदपुराणि सरिसाणि ॥ ३२ ॥

अवधिस्थान जम्बूद्वीप सर्वार्थसिद्धि[3] समान ।
नन्दीश्वरवाप्य[4] वीनेन्द्रपुराणि सदृशानि[5] ॥

समओ समएण समो आवलिएणं समा हु आवलिया ।
कालेण पढमपुढवीणारय भोमाण वी (वा) णाणं ॥ ३३ ॥

---

१ स्थानाङ्गस्य पदप्रमाण । २ द्रव्यापेक्षया इत्यर्थ । ३ एते पच पचचत्वारिंशल्लक्षप्रमिता । ४ व्यन्तरेन्द्राणा पुराणि । ५ एतानि सर्वाणि स्थानानि एकलक्षयोजनप्रमितानि ।

समय समयेन सम आवलिकया समा हि आवलिका।
कालेन प्रथमपृथ्वीनारकाणां भौमानां वानानां ॥

सरिसं जहण्णआऊ सत्तमखिदिणारयाण उक्कस्सं ।
सव्वट्ठाणं आऊ सरिसं उस्सप्पिणीपमुहं ॥ २४ ॥

सदृशं जघन्यायु: सप्तमक्षितिनारकाणामुत्कृष्टं ।
सर्वार्थस्थानां आयु: सदृशं उत्सर्पिणीप्रमुखं ॥

भावे केवलणाणं केवलदंसणसमाणयं दिट्ठं ।
एवं जत्थ सरित्थं वेंति जिणा सव्वअत्थाणं ॥ २५ ॥

भावेन केवलज्ञानं केवलदर्शनसमानं दिष्टं ।
एवं यत्र सदृशं जानन्ति जिना सर्वार्थान् ॥

समवायांगपदं १६४००० । श्लोक ८६७८५०७७९२६० ० ।
अक्षर २६८११२२४९३६४२००० ।

इति समवायांगं चतुर्थं अंगं—इति समवायाङ्गं चतुर्थं अङ्गं ।

दुगदुगअडतियसुण्णं विवायपण्णत्तिअंगपरिमाणं ।
णाणाविसेसकहणं वेंति जिणा जत्थ गणिपण्हा ॥ २६ ॥

द्विकद्विकत्रिकशून्यं विपाकप्रज्ञप्त्यङ्गपरिमाणं ।
नानाविशेषकथनं ब्रुवन्ति जिना यत्र गणिप्रश्नान् ॥

किं अत्थि णत्थि जीवो णिच्चोऽणिच्चोऽहवाइ किं एगो ।
वत्तव्वो किमवत्तव्वो हि किं भिण्णो ॥ २७ ॥

किमस्ति नास्ति जीवो नित्योऽनित्योऽथवापि किमेक: ।
वक्तव्य: किमवक्तव्यो हि किं भिन्न: ॥

गुणपज्जयाहिभिण्णो सट्ठिसहस्सा गणिस्स पण्हेयं ।
जत्थत्थि तं वियाणयपण्णत्तिमंगं खु ॥ २८ ॥

गुणपर्यायाभ्यामभिन्न. षष्टिसहस्त्राणि गणिनः प्रश्ना. ।
यत्र सन्ति तद्विपाकप्रज्ञप्त्यग खलु ॥

विवायपण्णतिअगपद २२८० । श्लोक ११६४८१६९३७०२०-००। वर्ण ३७२७४१४१९८४६४००० ।

इदि विवागपण्णत्तिअग गद–इति विपाकप्रज्ञप्त्यङ्ग गत ।

णाणकहाछट्टंगं पयाइं पंचेव जत्थत्थि ।
छप्पण्णं च सहस्सा णाहकहाकहणसंजुत्तं ॥ ३९ ॥

ज्ञातृकथाषष्ठाङ्ग पदानि पचैव यत्र सन्ति ।
षट्पचाशच्च सहस्राणि नाथकथाकथनसयुक्त ॥

णाहो तिलोयसामी धम्मकहा तस्स तच्चसंकहणं ।
घाइकम्मक्खयादो केवलणाणेण रम्मस्स ॥ ४० ॥

नाथ त्रिलोकस्वामी धर्मकथा तस्य तत्वसकथन ।
घातिकर्मक्षयात् केवलज्ञानेन रम्यस्य ॥

तित्थयरस्स तिसंज्झे णाहस्स सुमज्झिमाय रत्तीए ।
बारहसहासु मज्झे छग्घडियादिव्वझुणीकालो ॥ ४१ ॥

तीर्थकरस्य त्रिसध्याया नाथस्य सुमध्यमाया रात्रौ ।
द्वादशसभासु मध्ये षड्घटिका दिव्यध्वनिकाल' ॥

होदि गणिचक्किमहवपण्हादो अण्णदावि दिव्वझुणि ।
सो दहलक्खणधम्मं कहेदि खलु भवियवरजीवे ॥ ४२ ॥

भवति गणिचक्रिमघवप्रश्नत अन्यदापि दिव्यध्वनि ।
स दशलक्षणधर्मे कथयति खलु भव्यवरजीवे ॥

णादारस्स य पण्हा गणहरदेवस्स णायमाणस्स ।
उत्तरवयणं तस्स वि जीवादी वत्थुकहणे सा ॥ ४३ ॥

---

१ जीवादिवस्तुस्वभावकथन ।

ज्ञातुश्च प्रश्ना गणधरदेवस्य जिज्ञासमानस्य ।
उत्तरवचनं तस्यापि जीवादिवस्तुकथनं सा ॥

अहवा णादाराणं धम्माणुकहादिकहणमेवं सा ।
तित्थयरगणिचक्कहरवरसक्काईण च णाहकहा ॥ ४४ ॥

अथवा ज्ञातॄणां धर्मानुकथादिकथनमेवं सा ।
तीर्थंकरगणिचक्रिनरवरशक्रादीनां च नाथकथा ॥

ज्ञातृधर्मकथांगस्य पदानि ५५६००० । श्लोक २८४०५१८४९५-५४००० । वर्ण ९८२९५९१८५७२८००० ।

इति णाणधम्मकहाणाम छट्ठमं अंगं–इति ज्ञातृधर्मकथानाम षष्ठम् अंगं ।

सत्तरिसहस्स लक्खा एयारह उवासयज्झयणे ।
उत्तं पयप्पमाणं जिणेण तं णमह भवियजणा ॥४५॥

सप्ततिसहस्राणि लक्षाणि एकादश यत्रोपासकाध्ययने ।
उक्तं पदप्रमाणं जिनेन तं नमत भव्यजना ! ॥

दंसणवयसामाइयपोसहसचित्तरायभत्ते य ।
बंभारंभपरिग्गहअणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदेदे ॥४६॥

दर्शनव्रतसामायिकप्रोषधसचित्तरात्रिभक्ताश्च ।
ब्रह्मारम्भपरिग्रहानुमनोद्दिष्ट देशविरता एते ॥

जत्थे यारहसड्ढा दाणं पूयं च संघसेवं च ।
वयगुणसील किरिया तासिं मंता वि वुच्चंति ॥४७॥

यत्रैकादशश्राद्धा दाने पूजा च संघसेवा च ।
व्रतगुणशीलानि क्रिया तेषां मंत्रा अपि उच्यन्ते ॥

उपासकाध्ययनस्य पदानि ११७० ०० । श्लोकाः ५०७७३५००-७१ । अक्षराणि २७१२०२२८९६०००० ।

इति उवासयज्झयणं सत्तमं अंगं गदं । इति उपासकाध्ययनं सप्तमं गतम् ।

अंतयडं वरमंगं पयाणि तेवीसलक्ख सुमहस्सा ।
अट्ठावीसं जत्थ हि वण्णिज्जइ अंतकयणाहो ॥४८॥

अन्तकृद्वरमङ्ग पदानि त्रयोविंशतिलक्षाणि सहस्राणि ।
अष्टाविंशति यत्र हि वर्ण्यते अन्तकृन्नाथः ॥

पडितित्थं वरमुणिणो दह दह सहिऊण तिव्वमुवसग्गं ।
इंदादिरइयपूयं लद्धा मुंचंति संसारं ॥४९॥

प्रतितीर्थं वरमुनयो दश दश सोढ्वा तीव्रमुपसर्गं ।
इन्द्रादिरचितपूजा लब्ध्वा मुञ्चन्ति ससार ॥

माहप्पं वरचरणं तेसिं वण्णिज्जए सया रम्मं ।
जह वड्ढमाणतित्थे दहावि अंतयडकेवलिओ ॥५०॥

माहात्म्य वरचरण तेषा वर्ण्यते सदा रम्य ।
यथा वर्धमानतीर्थे दशापि अन्तकृत्केवलिनः ॥

मायंग रामपुत्तो सोमिल जमलीकणाम किक्कंवी ।
सुदंसणो वलीको य णमी अलंबद्ध पुत्तलया ॥५१॥

मतगो रामपुत्र सोमिल यमलीकनाम किष्कविल ।
सुदर्शन वलिकश्च नमि पालवष्ट' पुत्रा ॥

अन्तकृद्दशाङ्गस्य पदानि २३२८००० । श्लोका' ११८९३३९३-९८८५२००० । अक्षराणि ३८०५८८६०७६३२३४००० ।

इदि अतयड दसागमट्ठम गद—इत्यन्तकृद्दशाङ्गमष्टम गतम् ।

तिणहंचउचउदुगणवपयाणि चाणुत्तरोववाददसे ।
विजयादिसु पंचसु य उववायिका विमाणेसु ॥५२॥

त्रिनभश्चतुश्चतुर्द्विकनवपदानि चानुत्तरोपपाददशके ।
विजयादिषु पचसु च औपपादिका विमानेषु ॥

पडितित्थं सहिऊण दु दारुणसग्गोपलद्धमाहप्पा ।
दह दह मुणिणो विहिणा पाणे मोत्तूण झाणमया ॥५३॥
प्रतितीर्थं सोढ्वा हि दारुणोपसर्गं उपलब्धमाहात्म्याः ।
दश दश मुनयो विधिना प्राणान् मुक्त्वा ध्यानमयाः ॥

विजयादिसु उववण्णा वण्णिज्जंते सुहावसुहबहुला ।
ते णमह वीरतित्थे उजुदासो सालिभद्दक्खो ॥५४॥
विजयादिषूपपन्ना वर्ण्यन्ते स्वभावसुखबहुलाः ।
तान् नमत वीरतीर्थे ऋजुदास शालिभद्राख्य ॥

सुणक्खत्तो अभयो वि य धण्णो वरवारिसेणणंदणया ।
णंदो चिलायपुत्तो कत्तइयो जह तह अण्णे ॥५५॥
सुनक्षत्रोऽभयोऽपि च धन्य वरवारिषेणनन्दनौ ।
नन्द चिलातपुत्र कार्तिकेयो यथा तथा अन्येषु ॥

अनुत्तरोपपादाङ्गस्य पदानि ९२४४००० । श्लोकाः ४७२२६१ ७४४१४६ ०० । अक्षराणि १५११२३७५८१६६७००० ।

इति अनुत्तरोपपादं नवमं अंगं गदं—इत्यनुत्तरोपपादं नवमं अङ्गं गतं ।

पण्हाणं वायरणं अंगं पयाणि तियसुण्णसोलसियं ।
तिणवदिलक्खसंखा जत्थ जिणा बेंति सुणह जणा ॥५६॥
प्रश्नानां व्याकरणमङ्गं पदानि त्रिशून्यषोडश ।
त्रिनवतिलक्षसंख्या यत्र जिना ब्रुवन्ति शृणुत जनाः ! ॥

पण्हस्स दूदवयणणट्ठपमुट्ठिमणुत्थयपमरूवस्स ।
धादुणरमूलजम्म वि अत्था तियकालगोयरयो ॥ ५७ ॥
प्रश्नस्य दूतवचननष्टप्रमुष्टिमनःस्थस्वरूपस्य ।
धातुनरमूलजन्मापि अर्थाः त्रिकालगोचराः ॥

---

१ यथा वर्धमानतीर्थे एते तथान्येषु तीर्थेषु अन्ये दश ।

धणधण्णजयपराजयलाहालाहादिसुहदुहं णेयं ।
जीवियमरणत्थो वि य जत्थ कहिज्जइ सहावेण ॥ ५८ ॥
धन्यधान्यजयपराजयलाभालाभादिसुखदुःख ।
जीवितमरणार्थोऽपि च यत्र कथ्यते स्वभावेन ॥

आक्खेवणी कहाए कहिज्जइ पण्हदो सुभव्वस्स ।
परमदसंकाररहिदं तित्थयरपुराणवत्तंतं ॥ ५९ ॥
अवक्षेपणी कथा कथ्यते प्रश्नत सुभव्यस्य ।
परमतशंकारहित तीर्थंकरपुराणवृत्तान्त ॥

पढमाणुयोगकरणाणुयोगवरचरणदव्वअणुयोगं ।
संठाणं लोयस्स य यदिसावयधम्मवित्थारं ॥ ६० ॥
प्रथमानुयोगकरणानुयोगवरचरणद्रव्यानुयोगानि ।
सस्थान लोकस्य च यतिश्रावकधर्मविस्तार ॥

पंचत्थिकायकहणं वक्खाणिज्जइ सहावदो जत्थ ।
विक्खेवणी वि य कहा कहिज्जइ जत्थ भव्वाणं ॥ ६१ ॥
पचास्तिकायकथन व्याख्यायते स्वभावतो यत्र ।
विक्षेपणी अपि च कथा कथ्यते यत्र भव्याना ॥

पच्चक्खं च परोक्खं माणं दुविहं णया परे दुविहा ।
परसमयवादखेवो करिज्जई वित्थरा जत्थ ॥ ६२ ॥
प्रत्यक्ष च परोक्ष मान द्विविध नया परे द्विविधा ।
परसमयवादक्षेप क्रियते विस्तारेण यत्र ॥

दंसणणाणचरित्तं धम्मो तित्थयरदेवदेवस्स ।
तम्हा पभावतेओवीरियवम(र)णाणसुहआदि ॥ ६३ ॥
दर्शनज्ञानचरित्राणि धर्मः तीर्थंकरदेवदेवस्य ।
तस्मात् प्रभावतेजोवीर्यवरज्ञानसुखादय ॥

संवेयणीकहाए भणिज्जइ सयलभव्वबोहत्थं ।
णिव्वेअणीकहाए भणिज्जइ परम वेरग्गं ॥ ६४ ॥
संवेजनीकथया भण्यते सकलभव्यबोधनार्थं ।
निर्वेजनीकथया भण्यते परमवैराग्यं ॥

संसारदेहभोगा रागो जीवस्स जायदे तम्हा ।
असुहाण कम्माणं बंधो तत्तो हवे दुक्खं ॥६५॥
संसारदेहभोगा रागो जीवस्य जायते तस्मात् ।
अशुभानां कर्मणां बन्धः ततो भवेदु र्ख ॥

असुहकुले उप्पत्ती विरूवदालिद्दरोयबाहुल्लं ।
भवमाणं णरलोए परकम्मकरो महापावो ॥६६॥
अशुभकुले उत्पत्तिः विरूपदारिद्र्यरोगबाहुल्यं ।
अपमानं नरलोके परकर्मकरो महापाप ॥

एवविहं कहाणं वायरणं वेव्व पण्हवायरणे ।
दहमे अंग णिच्च करिज्जमाणं सया सुणह ॥६७॥
एवंविधं कथानां व्याकरणं वेद प्रश्नव्याकरणं ।
[illegible]मऽग निम्यं क्रियमाणं सदा शृणुत ॥

प्रश्नव्याकरणाङ्गस्य पदानि ९३१६००० । श्लोकाः ४७५९४०
११३२८ [illegible] । अक्षराणि १४१३००८३६२८४१०८०००।
इति पण्हवायरण दसम अंग गदं इति प्रश्नव्याकरणं दशमं अंगं गतम् ।

गुलसीदि[illegible]लक्खा कोडी पयाणि णिच्चं विवागसुत्ते य ।
कम्माण बंधणाणं सुहासुहाणं हु मज्झिमपया ॥६८॥
चतुर[illegible]णि [illegible] पदानि नित्यं विपाकसूत्रे च ।
[illegible]मणा च [illegible] शुभाशुभानां हि मध्यमपदा ॥

तिव्वमंदाणुभावा दव्वे खेत्तेसु काल भावे य ।
उदयो विवायरूवो भणिज्जइ जत्थ वित्थारा ॥६९॥
तीव्रमन्दानुभावा द्रव्ये क्षेत्रे काले भावे च ।
उदयो विपाकरूपो भण्यते यत्र विस्तारेण ॥

विपाकसूत्रांगस्य पदानि १८४००००० । श्लोका ९४००२७७०३५६००००० । वर्णा: ३००८०८८६५१३९२००००० ।

इदि विवागसुत्तंग एकादस गद—इति विपाकसूत्रांग एकादशं गत ।

एयारंगपयाणि य कोडीचउपंचदहसुलक्खाइं ।
वि सहस्सादो वोच्छे पुव्वपमाणं समासेण ॥ ७० ॥
एकादशाङ्गपदानि च कोटिचतुष्कपचदशलक्षाणि ।
अपि सहस्रे द्वे वक्ष्ये पूर्वप्रमाण समासेण ॥

एकादशानामङ्गना पदानि ४१५०२००० । श्लोका. २१२०२७-३३५६१४९३००० । अक्षराणि ६७८४८७४७३९६७७७६०००

इदि एकादसांगानि गदानि—इत्येकादशाङ्गानि गतानि ।

दिट्ठिप्पवादमंगं परियम्मं सुत्त पुव्वगं चेव ।
पढमाणुओग चूलिय पंचपयारं णमंसामि ॥ ७१ ॥
दृष्टिप्रवादमङ्ग परिकर्म सूत्र पूर्वाङ्ग चैव ।
प्रथमानुयोग चूलिका पचप्रकार नमामि ॥

तत्थ पयाणि पंच य णभ णभ छ पंच अट्ठ छड सुण्णं ।
अंक कमेण य णेयाणि जिणागमे णिच्चं ॥ ७२ ॥
तत्र पदानि पच नभो नभ षट् पच अष्ट षट् अष्ट शून्य ।
अक क्रमेण च ज्ञेयानि जिनागमे नित्य ॥

दृष्टिवादाङ्गपदसंख्या १०८६८५६००५। श्लोकाः ५५५२५८०१८७३९१२७१०७। वर्णसंख्या १७७६८२५६५९९६६१६६७४४०।

दिट्ठीणं तिण्णि सया तेसट्ठीण वि मिच्छवादाणं।
जत्थ णिराकरणं खलु तण्णाम दिट्ठिवादंगं ॥ ७१ ॥

दृष्टीनां त्रिशतानि त्रिषष्टे मिथ्यावादानां।
यत्र निराकरणं खलु तन्नाम दृष्टिवादाङ्गम् ॥

तं जहा—तद्यथा—

किरियावायदिट्ठीणं कोक्कल-कंठेविद्धि-कोसिय-हरिमंसु-मंधाविय-रोमस-मुंड-अस्सलायणादीणं असीदिसदं (१८०)

क्रियावादिनां कौत्कल-कंठेविद्धि-कौशिक-हरिश्मश्रु-मांधपिक-रोमश-मुंड-आश्वलायनादीनां अशीतिशतं (१८०)।

अकिरियावायदिट्ठीणं मरीचि-कविल-उलूय-गग्ग-वग्घभूइ-वद्धलि-माठर-मोग्गलायणादीणं चउरासीदि (८४)

अक्रियावाददृष्टीनां मरीचि-कपिल-उलूक-गार्ग्य-व्याघ्रभूति-वाद्वलि-माठर-मौद्गल्यायनादीनां चतुरशीति (८४)।

अण्णाणदिट्ठीणं साकल्ल-वक्कल-कुथुमि-सच्चमुगि-णारायण-कठ-मज्झंदिण-मोय-पिप्पलायण-बादरायण-सिट्ठिक्क-देविकायण-वसु-जइमणिपमुहाणं सगसट्ठी (६७)।

अज्ञानदृष्टीनां शाकल्य-वल्कल-कुथुमि-सात्यमुग्रि-नारायण-कठ-माध्यन्दिन-मोद-पिप्पलायन-बादरायण-स्विष्टिक-दैत्यकायन-वसु-जैमिनिप्रमुखानां सप्तषष्टिः (६७)।

वेणइयदिट्ठीणं वसिट्ठ-पारासर-जउकण्ण-वम्मीक-रोमहरिसणि-सच्चदत्त-वास-एलापुत्त-उवमण्णव-इंददत्त-अयत्थिउपमुहाणं बत्तीसा (३२)

वैनयिकदृष्टीना वशिष्ठ–पाराशर–जतुकर्ण–वाल्मीकि–रोमहर्षणि–
त्यदत्त–व्यास–एलापुत्र–औपमन्यव–ऐन्द्रदत्त–आगस्त्यादीना द्वात्रि-
शत् (३२) ।

इदि मिलिदूण तिसट्ठिउत्तरतिसदीकुवायनिरायरण परूवय ।
इति मिलित्वा त्रिषष्ट्युत्तरत्रिशतकुवादनिराकरण प्ररूपित ।

इदि बारहअंगाणं समरणमिह भावदो मया णिच्चं ।
सुभचंदेण हु रइयं जो भावइ सो सुहं पावइ ॥७४॥

इति द्वादशाङ्गाना स्मरणमिह भावतो मया नित्यं ।
शुभचन्द्रेण हि रचित यो भावयति स सुख प्राप्नोति ॥

एयारसुदसमुद्दे जो दिव्वदि दिव्वभावेण ।
सो संसारदवाणलजालालीणो ण संपज्जइ ॥७५॥

एकादशश्रुतसमुद्रे यो दीव्यति[1] दिव्यभावेन ।
स ससारदावानलज्वालालीनो न सम्पद्यते ॥

दंसणणाणचरित्तं तवे य पावंति सासणे भणियं ।
जो भाविऊण मोक्खं तं जाणह सुदह माहप्पं ॥७६॥

दर्शनज्ञानचारित्रेण तपसा च प्राप्नुवन्ति शासने भणित ।
यो भावयित्वा मोक्ष तज्जानीहि श्रुतस्य माहात्म्य ॥

एयारसंगपयकयपरूवणं मए पमाददोसेण ।
भणियं किं पि विरुद्धं सोहंतु सुयोगिणो णिच्चं ॥७७॥

एकादशाङ्गपदकृतप्ररूपण मया प्रमाददोषेण ।
भणित किमपि विरुद्ध शोधयन्तु सुयोगिनो नित्यं ॥

इदि सिद्धतसमुच्चये बारहअगसमरणावराभिहाणे अगपण्णत्तीए
अगणिरूवणाणाम पढमो अहियारो सम्मत्तो ॥ १ ॥

---

१ क्रीडति ।

चतुर्दशपूर्वाङ्गप्रज्ञप्ति ।

परियम्मं पंचविह परिये कम्माणि गणिदसुत्ताणि ।
तत्थ वदो सं भणिय सुणह पयारे हु तस्सावि ॥ १ ॥

परिकर्म पंचविधं परित कर्माणि गणितसूत्राणि ।
यत्र ततस्तद्भणितं शृणुत प्रकारान् हि तस्यापि ॥

चंदस्साउ विमाणे परिया रिद्धी च अयण गमण च ।
सयलद्धपायगहणं वण्णेदि वि चंदपण्णत्ती ॥ २ ॥

चन्द्रस्यायु विमानानि परिवारमृद्धिं च अयनं गमनं च ।
सकलार्धपादग्रहणं वर्णयत्यपि चन्द्रप्रज्ञप्ति ॥

[illegible]मलपरसपंचमहस्सपयवाण चंदपण्णत्ती ।
[illegible] पंचमहस्रपदानां चंद्रप्रज्ञप्ति ।

[illegible] । क्षेपा १८४१७३००६०५०७५०० ।
[illegible] ३६[illegible] ००० ।

[illegible]लिय पणल्लक्खा पयाणि पण्णसियारम्म ॥ ३ ॥
[illegible] पदानि प्रज्ञाप्तय[illegible] ॥

सूरस्साउ विमाण परिया रिद्धी य अयणपरिमाणं ।
[illegible] सूरपण्णत्ती ॥ ४ ॥
[illegible] अयनपरिमाणं ।
[illegible] प्रज्ञप्ति ॥
[illegible] ०७४०६४६१६५०० ।
[illegible] ० ।

जंबूदीवे मेरू एक्को कुलसेलछक्क वणसंडा ।
छव्वीसं वीसं च दहा वि य वीसं वक्खारणग वस्सा ? ॥५॥

जम्बूद्वीपे मेरुरेक कुलशैलषट्क वनखडा· ।
षड्विंशति· विंशतिश्च द्रहा अपि च विंशतिः वक्षारनगा वर्षा. ॥

चोत्तीसं भोगधरा छक्कं वेंतरसुराणमावासा ।
जंबूसालमलिरुक्खा विदेउ चारि णाहिगिरी ॥ ६ ॥

चतुस्त्रिंशत् भोगधराः षट्क वेंतरसुराणमावासाः ।
जबूशाल्मलिवृक्षा विदेहा चत्वारो नाभिगिरयः ॥

सुण्णणवसुण्णदुगणवसत्तरअंककमेण णईसंखा। १७९२०९० ।
वण्णेदि जंवुदीवापण्णत्ती पयाणि जत्थत्थि ॥ ७ ॥

शून्यनवशून्यद्विकनवसप्तदशाङ्कक्रमेण नदीसख्या· ।
वर्ण्यन्ते जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तौ पदानि यत्र सन्ति ॥

तियसुणपणवग्गतियलक्खा, दीवजलहिपण्णत्ती ।
अढाइ (जा) उधारसायरमिद दीवजलहिस्स ॥८॥

त्रिकशून्यपञ्चवर्गात्रिकलक्षाणि, द्वीपजलधिप्रज्ञप्तौ ।
सार्धद्वयोद्धारसागरमित द्विपजलधीना ॥

पदानि ३२५०००। श्लोक १६६०३७५०१९-८७५००।
वर्ण ५३१३२०००६३६००००० ।

वित्थारं सट्ठाणं तत्थठियजोइसाण ठाणाणं ।
भोमाणं . तत्थाऽकिट्टिमजिणाणं च ॥९॥

विस्तार संस्थान तत्रस्थितज्योतिषा स्थानाना ।
भोमाना तत्राकृत्रिमजिनाना च ॥

पासादवाससतोरणमंडवमुहमंडवादिमालाणं ।
दिवसायरपरियम्मे करेदि वित्थार वण्णणयं ॥१०॥
प्रासादव्यासतोरणमंडपमुखमंडपादिमालानां ।
द्वीपसागरपरिकर्मणि क्रियते विस्तारेण वर्णनं ॥
बावण्णं छत्तीसं लक्खसहस्सं पयस्स परिमाणं ।५२३६०००।
द्विपंचाशत् षट्त्रिंशल्लक्षसहस्रं पदानां परिमाणं ।
वक्खापण्णत्तीए तियसुण्णछक्किचउअट्ठ ॥११॥ ८४३६०००।
व्याख्याप्रज्ञप्तौ त्रिकशून्यषट्कचतुरष्टा ॥
जो रूवित्तरूविजीवाजीवाईण च दव्वणिवहाणं ।
भव्वाभव्वाणं पि य भेयं परिमाण लक्खणयं ॥१२॥
या रूपिरूपिजीवाजीवानां च द्रव्यनिवहानां ।
भव्याभव्यानामपि च भेदं परिमाणं लक्षणं ॥
सिद्धाणं खलु अणंतरपरंपरासिद्धिठाणपत्ताणं ।
अण्णाणं वच्छण्णं वित्थारं करेदि पण्णत्ती ॥१३॥
सिद्धानां खलु अनन्तरपरंपरासिद्धिस्थानप्राप्तानां ।
अन्येषां विस्तीर्णं विस्तारं करोति प्रज्ञप्ति ॥
पणपण्णसियपयाणि य णहाणि तिय पंचसुण्णइगिअट्ठ—
इगिकोडिजुदाणि पुणो एव परियम्म सम्मत्तं ॥१४॥
पंचपञ्चाशत्पदानि च नभांसि त्रीणि पंचशून्यैकाष्टैक—
कोटियुतानि पुनरेवं परिकर्म समाप्तं ॥
पयाणि १८१० ०।

अडसीदिलक्खपयं सुत्त सूचेदि मिच्छदिट्ठीणं ।
याए इदि खलु जीवो अबंधओ बंधओ वावि ॥ १५ ॥

अष्टाशीतिलक्षपद सूत्र सूचयति मिथ्यादृष्टीना ।
वादे इति खलु जीवोऽबन्धको बन्धको वापि ॥

पयाणि ८८०००००।

णिक्कत्ता णिग्गुणओ अभोजओ सप्पयासओ णिच्चो ।
परप्पयासकरणो जीवो अत्थेव वा णत्थि ॥ १६ ॥

निष्कर्ता निर्गुणोऽभोजक' स्वप्रकाशको नित्यः ।
परप्रकाशकरणो जीवोऽस्त्येव वा नास्ति ।

एवं किरियाणाणादिविणयकुदिट्ठिवायाणं ।
वित्थारं जं वोच्छदि तस्स पयारं णिसामेह ॥ १७ ॥

एव क्रियाज्ञानादिविनयकुदृष्टिवादाना ।
विस्तार यद्ब्रुवति तस्य प्रकार निशाम्यत ॥

अत्थि सदो परदो वि य णिच्चाणिच्चत्तणेण णवअट्ठा ।
कालीसरप्पणियदि सहावदो होंति तब्भेया ॥ १८ ॥

अस्ति स्वत. परतोऽपि च नित्यानित्यत्वेन नवार्थाः ।
कालेश्वरात्मनियतिस्वभावत भवन्ति तद्भेदाः ॥

सव्वं कालो जणयदि भूदं सव्वं विणासदे कालो ।
जागत्ति हि सुत्तेसु वि ण सक्कदे वंचिदुं कालो ॥ १९ ॥

सर्वं कालो जनयति भूत सर्व विनाशयति काल' ।
जागर्ति हि सुप्तेष्वपि न शक्यते वचितु कालः ॥

इदि कालवादो—इति कालवाद ।

जीवो अण्णाणी खलु असमत्थो तस्स जं सुहं दुक्खं ।
सग्गं णिरयं गमणं सव्वं ईसरकयं होदि ॥ २० ॥[1]

---

[1] 'णाय गमण सव्व ईसरकय होदि' पाठ पुस्तके । [illegible]ति ।

जीवोऽज्ञानी ह्यत्र असमर्थस्तस्य यत्सुखं दुःखं ।
स्वर्गे नरके गमनं सर्वं ईश्वरकृतं भवति ॥

ईसरवादो—ईश्वरवादः ।

देवो पुरिसो एक्को सव्वव्वावी परो महप्पा य ।
सव्वंगणिगूढो वि य सचेयणो णिग्गुणोऽकत्ता ॥ २१ ॥

देवः पुरुष एकः सर्वव्यापी परो महात्मा च ।
सर्वाङ्गनिगूढोऽपि च सचेतनो निर्गुणोऽकर्ता ॥

अप्पवादो—आत्मवादः ।

जेण जदा जं तु जहा णियमेण य जस्स होइ तंतु तदा ।
तस्स तहा तेण हवे इदि वादो णियदिवादो दु ॥२२॥

येन यदा यत्तु यथा नियमेन च यस्य भवति तत्तु तदा ।
तस्य तथा तेन भवेदिति वादो नियतिवादस्तु ॥

णियदिवादो—नियतिवादः ।

सव्वं सहावदो खलु तिक्खत्तं कंटयाण को करई ।
विविहत्तं णरमियपसुविहंगमाणं सहावो य ॥२३॥

सर्वं स्वभावतः खलु तीक्ष्णत्वं कण्टकानां कः करोति ।
विविधत्वं नरमृगपशुविहंगानां स्वभावश्च ॥

सहाववादो—स्वभाववादः ।

एवं चउणवपणयाणं रयणं काऊणं असीदिसदकिरियावादाणं भंगा । तं जहा । कालादो जीवो सदो अत्थि १ कालादो जीवो परदो अत्थि २ कालादो जीवा णिच्चा अत्थि ३ कालादो जीवा अणिच्चो अत्थि ४ इदि अजीवादिसु अट्ठसु भंगा णादव्वा मासिकूण भंगा असीदिसदं १८ हवंति ।

एव चतुर्नवपचाना रचना कृत्वा अशीतिशतक्रियावादाना भगा. । तद्यथा—कालतो जीव स्वतोऽस्ति १ कालतो जीव परतोऽस्ति २ कालतो जीवो नित्योऽस्ति ३ कालतो जीवोऽनित्योऽस्ति ४ इति अजीवादिषु अष्टसु भगा ज्ञातव्या आश्रित्य भगा अशीतिशतं १८० भवन्ति ।

[1]

काल	ईश्वर	आत्मा	नियति	स्वभाव				
जीव	अजीव	पुण्य	पाप	आस्रव	सवर	निर्जरा	घन्ध	मोक्ष
स्वत	परत	नित्य	अनित्य					
अस्ति								

अह अकिरियावाईणो वियप्पा—अथ अक्रियावादिना विकल्पा.—

सत्तपयत्था वि सदो परदो णत्थित्ति पंतिचदुजादा ।
कालादिया वि भंगा सत्तरि अक्किरियवाईणं ॥ २४ ॥

सप्तपदार्था अपि स्वत परतो नास्तीति पक्तिचतुष्कजाता. ।
कालादिका अपि भगा सप्तति· अक्रियावादिना ॥

णियडीदो कालादो सत्तपदत्थाण पंतितियजादा ।
चउदसभंगा होंति हु एवं चुलसीदि विण्णेया ॥२५॥

१ कालभेद ३६ ईश्वरभेद ३६ आत्मभेद ३६ नियतिभेद ३६ स्वभाभेद ३६ एव १८० ।

नियतितः कालतः सप्तपदार्थानां पंक्तिनिजाधाः ।
चतुर्दशभंगा भवन्ति हि एवं चतुरशीतिर्विशेषा ॥

कालाओ जीवो सओ णत्थि १ कालाओ जीवो परओ णत्थि २ एवं सत्तरिः भंगा । णियइओ जीवो णत्थि १ कालाओ जीवो णत्थि २ एवं चोद्दसभंगा सव्वे मिलिया चुलसीदी ८४ ।

कालतो जीव स्वतो नास्ति १ कालतो जीव परतो नास्ति २ एवं सप्तति भंगा । नियतितो जीवो नास्ति १ कालतो जीवो नास्ति २ एवं चतुर्दशभंगा । सर्वे मिलिता चतुरशीति ८४ ।

काल	ईश्वर	आत्मा	नियति	स्वभाव		
जीव	अजीव	आस्रव	संवर	निर्जरा	[illegible]	मोक्ष
स्वतः	परतः					
नास्ति						

नियति	काल					
जीव	अजीव	आस्रव	बन्ध	संवर	निर्जरा	मोक्ष
नास्ति						

को नाणइ णव अत्थे सत्तमसत्तुभयमवच्चमेव इदि ।
अवयणजुद सत्ततयं इदि भगा होंति तेसट्ठी ॥२६॥

को जानाति नवार्थान् सत्वमसत्वमुभयमवक्तव्यमेवेति ।
अवचनयुत सप्ततय इति भगा भवति त्रिपष्टि ॥

अस्ति	नास्ति	उभय	अवक्तव्य	अ० अ०	ना० अ०	अ० ना० अ०		
जीव	अजीव	पुण्य	पाप	आस्रव	बन्ध	सवर	नि०	मोक्ष

अण्णाणवाइभेया जीवादण्णाणभावसजुत्ता ।
तेसट्ठी जिणभणिया मिच्छाभावेण सतत्ता ॥२७॥

अज्ञानवादिभेदा जीवादज्ञानभावसयुक्ता [2] ।
त्रिषष्टि. जिनभणिता मिथ्यात्वभावेन सतता ॥

मणवयणदेहदाणगविणओ णिवदेवणाणिजदिउड्ढे ।
बाले मादरपियरे कायव्वो चेदि अट्ट चदु ॥२८॥

मनोवचनदेहदानगविनयो नृपदेवज्ञानियतिवृद्धेषु ।
बाले मातापित्रोः कर्तव्यश्चेति अष्ट चतु ॥

एवं विणयवादो बत्तीसा ३२–एव वैनयिकवाद द्वात्रिंशत् ३२ ।

एव सच्छंददिट्ठीणं वादाउलकारण [1] ।
तिसट्ठितिसया णेया सव्वससारकारण ॥२९॥

एव स्वच्छदद्दष्टीना ... ।
त्रिषष्टि त्रिशतानि ज्ञेयानि सर्वससारकारणानि ॥

---

१ को जाणइ सत्तचऊ भावं सुद्धं खु दोणिपंत्तिभवा ।
चत्तारि होंति एवं अण्णाणीणं तु सत्तट्ठी ॥ १ ॥
को जानाति सत्वचतुष्क भाव शुद्ध खलु द्विपक्तिभवा ।
चत्वारो भवन्त्येव अज्ञानिनां तु सप्तषष्टि. ॥

पउरसेण विणा णत्थि थणक्खीराइसेवणं ।
आलसड्ढो णिरुस्साहो फलं किंचि ण भुंजई ॥३०॥
पौरुषेण विना नास्ति स्तनक्षीरादिसेवनं ।
आलस्याढ्यो निरुत्साहः फलं किंचिन्न भुंक्ते ॥
पुरिसवादो—पौरुषवादः ।

दइवा सिज्झदि अत्थो पोरिसं णिप्फलं हवे ।
एसो सालसमुत्तुंगो कण्णो हम्मइ संगरे ॥ ३१ ॥
दैवात् सिद्ध्यति अर्थः पौरुषं निष्फलं भवेत् ।
एष सालसमुत्तुङ्गः कर्णो हन्यते संगरे ॥
दइववादो—दैववादः ।

एक्केण चक्केण रहो ण यादि संजोगमेवेति वदंति तण्णा ।
अंधो य पंगू य वणं पविट्ठा ते संपजुत्ता णयरं पविट्ठा ॥३२॥
एकेन चक्रेण रथो न याति संयोगमेवेति वदन्ति तज्ज्ञाः ।
अन्धश्च पंगुश्च वने प्रविष्टौ तौ सम्प्रयुक्तौ नगरे प्रविष्टौ ॥
संजोगवादो—संयोगवादः ।

लोयपसिद्धी सच्चा पंचाली पंचपंडवत्थी ही ।
मइउट्ठिया ण रुज्झइ मिलिदहिं सुरहिं दुव्वारा ॥ ३३ ॥
लोकप्रसिद्धिः सत्या पंचाली पंचपाण्डवस्त्री हि ।
मत्युत्थिता न रुध्यते मिलितैः सुरैः दुर्वारा ॥
लोयवादो लोकवादः ।

वयणवहा जावदिया णयवादा होंति चेव तावदिया ।
णयवादा जावदिया तावदिया होंति परसमया ॥ ३४ ॥

वचनपथा यावन्तो नयवादा भवन्ति चैव तावन्तः ।
नयवादा यावन्तो तावन्तो भवन्ति परसमयाः ॥

इदि सुत्त गद—इति सूत्र गतं ।

पढम मिच्छादिट्ठिं अव्वादिक आसिदूण पडिवज्ज
अणुयोगो अहियारो वुत्तो पढमाणुयोगो सो ॥ ३५ ॥

प्रथम मिथ्यादृष्टिं अव्युत्पन्न आश्रित्य प्रतिपाद्य ।
अनुयोगोऽधिकार उक्त प्रथमानुयोग स ॥

चउवीस तित्थयरा वइणो ? बारह छखंडभरहस्स ।
णवबलदेवा किण्हा णव पडिसत्तू पुराणाइ ॥ ३६ ॥

चतुर्विंशतिस्तीर्थकरान् जयिनो द्वादश षट्खडभरतस्य ।
नव बलदेवान् कृष्णान् नव प्रतिशत्रून् पुराणानि ॥

तेसिं वण्णति पिया माई णयराणि चिण्ह पुव्वभवे ।
पचसहस्सपयाणि य जत्थ हु सो होदि अहियारो ॥३७॥

तेषा वर्णयन्ति पितॄन् मातॄ नगराणि चिह्नानि पूर्वभवान् ।
पचसहस्रपदानि च यत्र हि स भवति अधिकारः ॥

पयाणि ५००० ।

कोडिपय उप्पाद पुव्व जीवादिदव्वणियरस्स ।
उप्पादव्वयधुव्वादणेयधम्माण पूरणय ॥३८॥

कोटिपद उत्पाद पूर्व जीवादिद्रव्यनिकरस्य ।
उत्पादव्ययध्रौव्याद्यनेकधर्माणा पूरणक ॥

पयाणि १०००००००। तं जहा—

दव्वाणं णाणाणयुवण्णयगोयरकमजोगवज्जसंभाविउप्पादव्वयधुव्वाणि तियालगोयरा णव धम्मा हवंति। तप्परिणयं दव्वमवि णवहा। उप्पण्णमुप्पज्जमाणमुप्पस्समाणं, णट्ठ णस्समाणं, णंसमाणं, ठियं चिट्ठमाणं चिस्सतमिदि णवाणं तं धम्माणमुप्पण्णादीण पत्तेयं णवविहत्तणसंभवादो णवासीदिवियप्पधम्मपरिणयदव्ववण्णणं जं करेदि तमुप्पादपुव्वं।

द्रव्याणां नानानयोपनयगोचरक्रमयौगपद्यसंभवितोत्पादव्ययध्रौव्याणि त्रिकालगोचरा नवधर्मा भवन्ति। तत्परिणतं द्रव्यमपि नवधा। उत्पन्नं उत्पद्यमानं उत्पत्स्यमानं नष्टं नश्यत् नंक्ष्यत्, स्थितं तिष्ठत् स्थास्यत् इति नवानां तेषां धर्माणां उत्पादादीनां प्रत्येकं नवविधत्वसंभवात् एकाशीतिविकल्पधर्मपरिणतद्रव्यवर्णनं यत्करोति तदुत्पादपूर्वम् ॥

अग्गस्स वत्थुणो वि हि पहाणभूदस्स णाणमगमणं।
सुअग्गायणीयपुव्वं अग्गायणसंभवं विदियं ॥३९॥

अग्रस्य वस्तुनोऽपि हि प्रधानभूतस्य ज्ञानं अयनं।
स्वग्रायणीयपूर्वं अग्रायणसंभवं द्वितीयं ॥

सत्तम(म)यसुणयदुणयपंचत्थियसुकायछक्कदव्वाणं।
तच्चाण मत्तण्हं वण्णदि तं अत्थणियराणं ॥४०॥

सप्तशतसुनयदुर्णयपंचास्तिकायषड्द्रव्याणां।
तत्त्वानां सप्तानां वर्णयति तदर्थनिकराणां ॥

सए लक्खपणिभरं छण्णवदीलक्खपयपमाणमिणं।
वेंति जिणा सत्थं णमह णरा सुभावेण ॥ ४१ ॥

भगात् क्षणनिकरान् षण्णवतिलक्षपदप्रमाणमिदं।
जानन्ति जिना शास्त्रं नमस्यत नराः सुभावेन ॥

पुव्वंतं अवरंतं धुवाधुवच्चवणलद्धिणामाणि ।
अद्धुव संपण हि च अत्थ भोमावयज्ज च ॥ ४२ ॥

पूर्वान्त अवरात ध्रुवाध्रुवच्यवन लब्धिनामानि ।
.. ॥

सव्वत्थकप्पणीयं णाणमदीदं अणागदं कालं ।
सिद्धिमुवज्जं वंदे चउदहवत्थूणि विदियस्स ॥ ४३ ॥

सर्वार्थकल्पनीय ज्ञानमतीत मनागत कालः ।
सिद्धिं प्राप्त वन्दे चतुर्दश वस्तूनि द्वितियस्य ॥

पचमवत्थुचउत्थपाहुडयस्साणुयोगणामाणि ।
कियवेयणो तहेव फसण कम्मपयडिक तह ॥ ४४ ॥

पचमवस्तुचतुर्थप्राभृतस्यानुयोगनामानि ।
तथैव स्पर्शन कर्म प्रकृतिक तथा ॥

बधणणिबधणपाक्कमाणुक्कममहब्भुदयमोक्खा ।
सकम लेस्सा च तहा लेस्साए कम्म परिणामा ॥ ४५ ॥

बधननिबधनोपक्रमानुपक्रमाभ्युदय मोक्षा ।
सक्रम लेश्या च तथा लेश्याया कर्म परिणामाः ॥

सादमसाद दि (वि) ग्घ हस्स भव धारणीयसण्ण च ।
पुरुपोग्गलप्पणाम णिहत्तअहिहत्तणामाणि ॥ ४६ ॥

सातमसात विघ्न हास्य भय धारणीयसज्ञ च ।
पुरुपुद्गलप्रमाण निधत्यनिधत्यनामानि ॥

सणकाचिदमणकाचिदमहकम्मट्ठिदिपच्छिमखधा ।
अप्पबहुत्तं च तहा तद्दाराणं च चउवीसं ॥ ४७ ॥

सकाञ्चितानकाचितमथकर्मस्थितिपश्चिमस्कन्धा ।
अल्पबहुत्व च तथा तद्द्वाराणा च चतुर्विंशति. ॥

अण्णेसिं वत्थूण पाहुडयस्साणुयोगयाण च ।
णामाण उवएसो कालविसेसेण णट्ठो हु ॥४८॥
अन्येषां वस्तूनां प्राभृतस्यानुयोगानां च ।
नाम्नामुपदेशः कालविशेषेण नष्टो हि ॥
पयाणि ९६००००० ।
अग्गायणीयपुव्वं गयं–अग्रायणीयपूर्वं गतं ।

विज्जाणुवादपुव्वं वज्जं जीवादिवत्थुसामत्थं ।
अणुवादो अणुवण्णणमिह तस्स हवेत्ति णायमह ॥४९॥
वीर्यानुवादपूर्वं वीर्यं जीवादिवस्तुसामर्थ्यं ।
अनुवादोऽनुवर्णनमिह तस्य भवेदिति नमस्यत ॥
त वण्णदि अप्पबलं परविज्जं उहयविज्जमवि णिच्चं ।
खेत्तबलं कालबलं भावबलं तवबलं पुण्णं ॥५०॥
तद्वर्णयति आत्मबलं परवीर्यं उभयवीर्यमपि नित्यं ।
क्षेत्रबलं कालबलं भावबलं तपोबलं पूर्णं ॥
दव्वबलं गुणपज्जयविज्जं विज्जाबलं च सव्वबलं ।
सयरिलक्खपयहिं पुण्णं पुव्वं तदीयं खु ॥५१॥
द्रव्यबलं गुणपर्ययवीर्यं विद्याबलं च सर्वबलं ।
सप्ततिलक्षप[illegible]र्णं पूर्वं तृतीयं खलु ॥
पयाणि ७ ० ।
इदि विज्जाणुवादपुव्वं गयं–इति वीर्यानुवादपूर्वं गतं ।

सियअत्थिणत्थिपमुहा तम्मि इह रूवणं पवादोत्ति ।
अत्थि यदो सो धम्मो अत्थिणत्थिपवादपुव्वं च ॥५२॥

स्यादस्तिनास्तिप्रमुखास्तेषा इह रूपण प्रवाद इति ।
अस्ति अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वं च ॥

णियदव्वखेत्तकालभावे सिय अत्थि वत्थुणिवहं च ।
परदव्वखेत्तकाले भावे सिय णत्थि आसित्ता ॥५३॥

निजद्रव्यक्षेत्रकालभावान् स्यादस्ति वस्तुनिवह च ।
परद्रव्यक्षेत्रकालभावान् स्यान्नास्ति आश्रित्य ॥

सियअत्थिणत्थि कमसो सपरदव्वादिचउजुदं जुगवं ।
सियऽवत्तव्वं सेयरदव्वं खेत्तं च भावे च ॥५४॥

स्यादस्तिनास्ति क्रमशः स्वपरद्रव्यादिचतुर्युत युगपत् ।
स्यादवक्तव्य स्वपरदव्य क्षेत्र च भाव च ॥

सिय आसिदूण अत्थि चावत्तव्वं सदव्वदो जुगवं ।
सपरदव्वादीदो सिय णत्थि अव्वच्चमिदि जाणे ॥५५॥

स्यादाश्रित्य अस्ति चावक्तव्य स्वद्रव्यतो युगपत् ।
स्वपरद्रव्यादित, स्यान्नास्ति अवक्तव्यमिति जानीहि ॥

परदव्वखेत्तकालं भावं पडिवज्ज जुगव दव्वादो ।
सिय अत्थि णत्थि अवरं कमेण णेयं च सपरं च ॥ ५६ ॥

परद्रव्यक्षेत्रकालान् भाव प्रतिपद्य युगपत् द्रव्यतः ।
स्यादस्ति नास्ति अपर क्रमेण ज्ञेय च स्वपर च ॥

दव्वं खेत्तं कालं भावं जुगवं समासिदूणा व ।
एवं णिच्चादीणं धम्माणं सत्तभंगविही ॥ ५७ ॥

द्रव्य क्षेत्र काल भाव युगपत् समाश्रित्य च ।
एव नित्यादीना धर्माणा सप्तभगाविधि ॥

१ अग्रेण सह सबन्ध ।

विहिणिसेहावत्तव्वभंगाणं पत्तेयदुसंजोयतिसंजोयजादाणं तिण्णि तिण्णि एगसंजोयाणं मेलणं सत्तभंगी पण्हवसादु एकम्मि वत्थुम्मि अविरोहेण सहदि णाणाणयमुक्खगोणभावेण जं परूवदि ।

विधिनिषेधावक्तव्यभंगानां प्रत्येकद्विसंयोगत्रिसंयोगजातानां त्रिस्त्र्येकसंयोगानां मेलनं सप्तभंगी प्रश्नवशात् एकस्मिन् वस्तुनि अविरोधेन संभवती नानानयमुख्यगौणभावेन यत्प्ररूपयति ।

तत्थपदाणि बुहेण य घत्तंते सट्ठिलक्खमाणाणि ।
णाणाणयणिरूवणपराणि सत्तस्स भंगस्स ॥ ५७ ॥

तत्र पदानि बुधैश्च ज्ञायन्ते षष्टिलक्षमानानि ।
नानानयनिरूपणपराणि सप्तानां भंगानां ॥

पदाणि ६०००००० ।

इति अत्थिणत्थिपवादपुव्वं अट्ठं—इत्यस्तिनास्तिप्रवादपूर्वं षष्ठं ।

णाणप्पवादपुव्वं मदिसुदओही सुणाणअण्णाणयं ।
मणपज्जयस्स भेयं केवलणाणस्स रूवं च ॥ ५९ ॥

ज्ञानप्रवादपूर्वं मतिश्रुतावधिसुज्ञानाज्ञानानां ।
मनःपर्ययस्य भेदान् केवलज्ञानस्य रूपं च ॥

कहदि दु पयप्पमाणं कोडी रूऊणगा हि मदिणाणं ।
अवगहईहावायाधारणगा होंति तब्भेया ॥ ६० ॥

कथयति पदप्रमाणं कोटिः रूपोना हि मतिज्ञानं ।
अवग्रहेहावायधारणा भवन्ति तद्भेदा ॥

विसयाण विसईणं संजोगे दंसणं वियप्पवदं ।
अवगहणाणं तत्तो विसेसकंखा हवे ईहा ॥ ६१ ॥

विषयाणा विषयिणा सयोगे दर्शन, विकल्पवत् ।
अवग्रहज्ञान ततो विशेषाकाक्षा भवेदीहा ॥

तत्तो सुणिण्णओ खलु होदि अवाओ दु वत्थुजादस्स ।
कालंतरे वि णिण्णिदसमरणहेऊ तुरीयं तु ॥ ६२ ॥

ततः सुनिर्णय· खलु भवति अवायस्तु वस्तुजातस्य ।
कालान्तरेऽपि निर्णीतस्मरणहेतुस्तुर्यं तु ॥

इंदियअणिंदियुत्थं वेंजणअत्थादवग्गहो दुविहो ।
चक्खुस्स माणसस्स य पढमो ण वऽवग्गहो कमसो ॥ ६३ ॥

इन्द्रियानिन्द्रियोत्थ व्यञ्जनार्थाभ्यामवग्रहो द्विविधः ।
चक्षुष· मनसश्च प्रथमो न चावग्रह· क्रमश· ॥

बहु बहुविहं च खिप्पाणिस्सिदणुत्तं धुवं च इदरं च ।
पडि एक्केक्के जादे तिसयं छत्तीसभेयं च ॥ ६४ ॥

बहु बहुविध च क्षिप्र अनिसृत अनुक्त ध्रुवं इतरच्च ।
प्रति एकैकस्मिन् जाते त्रिशतं षट्त्रिंशद्भेद च ॥

मदिणाण—मतिज्ञानम् ।

सुदणाणं अत्थादो अत्थंतरगहणमेव मदिपुव्वं ।
दव्वसुदं भावसुदं णियमेणिह सद्दजं पमुहं ॥ ६५ ॥

श्रुतज्ञानमर्थात् अर्थान्तरग्रहणमेव मतिपूर्वं ।
द्रव्यश्रुत भावश्रुतं नियमेनेह शब्दज प्रमुख ॥

पज्जायक्खरपदसंघायं पडिवत्तियाणियोगं च ।
पाहुड पाहुडपाहुड वत्थू पुव्वं समासेहिं ॥ ६६ ॥

पर्यायाक्षरपदसघात प्रतिपत्ति अनुयोग च ।
प्राभृत प्राभृतप्राभृत वस्तु पूर्वं समासै ॥

विहिणिसेहावत्तव्वभंगाणं पत्तेयदुसंजोयतिसंजोयजादाणं तिण्णि तिण्णि एगसंजोयाणं मेळणं सत्तभंगी पण्हवसादु एकम्मि वत्थुम्मि अविरोहेण सव्वंपादि णाणाणयमुक्खगोणभावेण जं परूवदि ।

विधिनिषेधावक्तव्यभंगानां प्रत्येकद्विसंयोगत्रिसंयोगजातानां त्रिप्रत्येकसं-ख्यानां मेलनं सप्तभंगी प्रश्नवशात् एकस्मिन् वस्तुनि अविरोधेन संभवति नानानयमुख्यगौणभावेन यत्प्ररूपयति ।

तस्स पयाणि बुहेण य पढंते सट्ठिलक्खमाणाणि ।
णाणाणयणिरूवणपराणि सत्तस्स भंगस्स ॥ ५७ ॥

तत्र पदानि बुधैश्च पठ्यन्ते षष्टिलक्षमानानि ।
नानानयनिरूपणपराणि सप्तानां भंगानां ॥

पयाणि ६०००००० ।

इदि अत्थिणत्थिपवादपुव्वं गदं—इत्यस्तिनास्तिप्रवादपूर्वं गतं ।

णाणप्पवादपुव्वे मदिसुदओही सुणाणणाणाणं ।
मणपज्जयस्स भेयं केवलणाणस्स रूवं च ॥ ५९ ॥

ज्ञानप्रवादपूर्वे मतिश्रुतावधिसुज्ञानाज्ञानानां ।
मनःपर्ययस्य भेदान् केवलज्ञानस्य रूपं च ॥

कहदि हु पयप्पमाणं कोडी एऊणगा हि मदिणाणं ।
अवगहईहावायाधारणगा होंति तब्भेया ॥ ६० ॥

कथयति पदप्रमाणं कोटिः एकोना हि मतिज्ञानं ।
अवग्रहेहावायधारणा भवन्ति तद्भेदाः ॥

विसयाणं विसईणं संजोगे दंसणं वियप्पवदं ।
अवगहणाणं गहिदो विसेसकंखा हवे ईहा ॥ ६१ ॥

विषयाणा विषयिणा सयोगे दर्शनं, विकल्पवत् ।
अवग्रहज्ञानं ततो विशेषाकाक्षा भवेदीहा ॥

तत्तो सुणिण्णओ खलु होदि अवाओ दु वत्थुजादस्स ।
कालंतरे वि णिण्णिदसमरणहेऊ तुरीयं तु ॥ ६२ ॥

ततः सुनिर्णय· खलु भवति अवायस्तु वस्तुजातस्य ।
कालान्तरेऽपि निर्णीतस्मरणहेतुस्तुर्यं तु ॥

इंदियअणिंदियुत्थं वेंजणअत्थादवग्गहो दुविहो ।
चक्खुस्स माणसस्स य पढमो ण वऽवग्गहो कमसो ॥ ६३ ॥

इन्द्रियानिन्द्रियोत्थ व्यञ्जनार्थाभ्यामवग्रहो द्विविधः ।
चक्षुष· मनसश्च प्रथमो न चावग्रहः क्रमशः ॥

बहु बहुविहं च खिप्पाणिस्सिदणुत्तं धुवं च इदरं च ।
पडि एक्केक्के जादे तिसयं छत्तीसभेयं च ॥ ६४ ॥

बहु बहुविध च क्षिप्र अनिसृत अनुक्त ध्रुव इतरच्च ।
प्रति एकैकस्मिन् जाते त्रिशतं षट्त्रिंशद्भेद च ॥

मदिणाण—मतिज्ञानम् ।

सुदणाणं अत्थादो अत्थंतरगहणमेव मदिपुव्वं ।
दव्वसुदं भावसुदं णियमेणिह सद्दजं पमुहं ॥ ६५ ॥

श्रुतज्ञानमर्थात् अर्थान्तरग्रहणमेव मतिपूर्वं ।
द्रव्यश्रुत भावश्रुत नियमेनेह शब्दज प्रमुख ॥

पज्जायक्खरपदसंघायं पडिवत्तियाणियोगं च ।
पाहुड पाहुडपाहुड वत्थू पुव्वं समासेहिं ॥ ६६ ॥

पर्यायाक्षरपदसघात प्रतिपत्ति अनुयोग च ।
प्राभृत प्राभृतप्राभृत वस्तु पूर्वं समासै ॥

वीसविहं तं तेसिं आवरणविभेयदो हि णियमेण ।
सुहुमणिगोदस्स हवे अपुण्णस्स पढमसमयम्हि ॥ ६७ ॥

विंशतिविधं तत्तेषां आवरणविभेदतो हि नियमेन ।
सूक्ष्मनिगोदस्य भवेत् अपूर्णस्य प्रथमसमये ॥

लद्धक्खरपज्जायं णिच्चुग्घाडं लहुं णिरावरणं ।
उवरुवरिवड्ढिजुदं वीसवियप्पं हु सुदणाणं ॥६८॥

लब्ध्यक्षरपर्यायं नित्योद्घाटं लघु निरावरणं ।
उपर्युपरिवृद्धियुक्तं विंशतिविकल्पं हि श्रुतज्ञानं ॥

इति सुदणाणं—इति श्रुतज्ञानं ।

भवगुणपच्चयविहियं ओहीणाणं हु अवहिगं समये ।
सीमाणाणं रूवीपदत्थसंघादपच्चक्खं ॥६९॥

भवगुणप्रत्ययविहितं अवधिज्ञानं तु अवधिगं समये ।
सीमाज्ञानं रूपिपदार्थसंघातप्रत्यक्षं ॥

देसोही परमोही सव्वोही होदि तस्स तिविहं हु ।
गुणपच्चयगो णियमा देसोही णरतिरक्खाणं ॥७०॥

देशावधि परमावधि सर्वावधिर्भवति तत्र त्रिविधस्तु ।
गुणप्रत्ययको नियमात् देशावधि नरतिरश्चां ॥

अवरं देसोहिस्स य णरतिरिए हवदि संजदम्हि वरं ।
भवपच्चयगो ओही सुरणिरयाणं च तित्थाणं ॥७१॥

अवरं देशावधेश्च नरतिर्यक्षु भवति संयते परं ।
भवप्रत्ययकोऽवधि सुरनारकाणां च तीर्थकराणां ॥

णाणामेय पढमं एयवियप्पं हु विद्धियमोही खु ।
परमोही सव्वोही चरमसरीरिस्स विरदस्स ॥७२॥

नानाभेद प्रथम एकविकल्पस्तु द्वितीयोऽवधिः खलु १।
परमावधि· सर्वावधिः चरमशरीरिण. विरतस्य ॥

अणुगामी देसादिसु तमणणुगामी य हीयमाणो वि ।
वड्ढंतो वि अवत्थिद अणवत्थिद होंति छब्भेया ॥७३॥

अनुगामी देशादिषु तेष्वननुगामी च हीयमानोऽपि ।
वर्धमानोऽपि अवस्थितोऽनवस्थितो भवन्ति षड्भेदाः ॥

इदि ओहिणाणं—इत्यवधिज्ञान ।

मणपज्जयं तु दुविहं रिजुमदि पढमं तु तत्थ विउलमदी ।
संजमजुत्तस्स हवे ज जाणइ तं खु णरलोए ॥७४॥

मन पर्ययस्तु द्विविध ऋजुमति. प्रथमस्तु तत्र विपुलमतिः ।
सयमयुक्तस्य भवेत् यज्जानाति तत् खलु नरलोके ॥

इदि मणपज्जय—इति मन पर्यय ।

सव्वावरणविमुक्कं लोयालोयप्पयासगं णिच्चं ।
इंदियकमपरिमुक्कं केवलणाण णिरावाहं ॥ ७५ ॥

सर्वावरणविमुक्त लोकालोकप्रकाशक नित्य ।
इन्द्रियक्रमपरिमुक्त केवलज्ञान निराबाध ॥

इदि केवलणाण—इति केवलज्ञान ।

कुमदि कुसुदं विभंगं अण्णाणतिय वि मिच्छअणपुव्वं ।
सच्चादिभावमुक्कं भवहेदुं सम्मभावचुदं ॥ ७६ ॥

कुमतिः कुश्रुत विभग अज्ञानत्रयमपि मिथ्यानपूर्वं ।
सत्यादिभावविमुक्त भवहेतु सम्यक्त्वभावच्युत ॥

रूउणकोडिपयं णाणपवादं अणेयणाणाणं।
णाणाभेयपरूवणपरं णमंसामि भावजुदो ॥ ७७ ॥
रूपोनकोटिपदं ज्ञानप्रवादं अनेकज्ञानानां।
नानाभेदप्ररूपणपरं नमामि भावयुक्तः ॥
पयाणि ९९९९९९९।

इदि णाणपवादं गदं—इति ज्ञानप्रवादं गतं।

सच्चपवादं छट्ठं वागुत्ति चावि वयणसक्कारो।
वयणपओगं बारहभासा खलु वत्थुबहुभेये ॥ ७८ ॥
सत्यप्रवादे षष्ठे वाग्गुप्तिश्चापि वचनसंस्कार।
वचनप्रयोगो द्वादशभाषा खलु वस्तुबहुभेदा ॥
बहुविहमिसाभिहाणं दसविहसच्चं मया परूवेदि।
जीवाण बोहणत्थं पयाणि छसुत्तरा कोडी ॥७९॥
बहुविधमृषाभिधानं दशविधसत्यं मया प्ररूप्यते।
जीवानां बोधनार्थं पदानि षडुत्तरा कोटिः ॥

तं जहा। असच्चणिवित्ती मोणं वा वागुत्ती वयणसक्कारकारणाई उरकंठसिरजिब्भामूलदंतणासिकाताळुओट्ठणामाणि अट्ठठाणाणि पुट्ठदारिमिपुट्ठदाविविवडारिसिविविवडासंविविदरूवा पंचपयत्ता वयणसक्कारकारणाणि सिट्ठदुट्ठरूवो वयणपओगो तदुभयपसत्थं सक्कायादसायरण। बारह भासा—अणमब्भेण कियमिदि भणइक्कं अब्भक्खाणं णाम १ परोप्परविरोहहेदु कलहवाया २ पिट्ठदो दोसपयणं पेसुण्णवाया ३ धम्मत्थकाममोक्खासंबद्धवयणमसंबद्धवाया ४ इंदियविसयेसु रइउप्पाइया वाया रदिवाया ५ तेसु अरदिउप्पादिया वाया अरदिवाया ६ परिग्गहाज्जणसंरक्खणाइआसत्तिहेदु वयणमुवाहिवयणं ७ ववहारे वंचणाहेदु वयणं णियदिवयणं ८ तवणाणादिसु अहियवयणमप्पणिवयणं ९ थेयहेदुवयणं मूसा-

चयणं १० सम्मग्गोवदेसकं वयणं सम्मदंसणवयणं ११ मिच्छाम-ग्गोवदेसकं वयण मिच्छादंसणवयणमिदि १२।

तद्यथा। असत्यनिवृत्तिर्मौनं वा वाग्गुप्ति । वचनसस्कारकारणानि उरःकठशिरोजिव्हामूलदन्तनासिकाताल्वोष्ठनामानि अष्टस्थानानि, स्पृष्टते-परस्पृष्टताविवृततेपद्विवृततासविवृततारूपाः पचप्रयत्ना वचनसस्कारणानि। शिष्टदुष्टरूपो वचनप्रयोग तल्लक्षणशास्त्र सस्कृतादिव्याकरण । द्वादश-भाषा इदमनेनकृतमिति अनिष्टकथनमभ्याख्यान नाम १ परस्परविरोध-हेतु. कलहवाक् २ पृष्ठतो दोपमूचन पैशून्यवाक् ३ धर्मार्थकाममोक्षास-म्बद्धवचनमसबद्धालाप· ४ इन्द्रियविपयेषु रत्युत्पादिका या वाक् रतिवाक् ५ तेष्वरत्युत्पादिका या वाक् अरतीवाक् ६ परिग्रहार्जनसरक्षणाद्यासक्ति-हेतु वचन उपाधिवचन ७ व्यवहारे वचनाहेतु निकृतिवचन ८ तपो-ज्ञानादिषु अविनयवचन अप्रणतिवचन ९ स्तेयहेतु वचन मृपावचनं १० सन्मार्गोपदशक वचन सम्यग्दर्शनवचन ! ११ मिथ्यामार्गोपदेशकं वचन मिथ्यादर्शनवचनमिति १२ ॥

वत्तारा बहुभेया बींदियपमुहा हवंति मूसवयो ।
बहुविहमसच्चवयणं दव्वादिसमासियं णेयं ॥८०॥

वक्तारो बहुभेदा द्वीन्द्रियप्रमुखा भवन्ति मृषावाक् ।
बहुविधमसत्यवचन द्रव्यादिसमाश्रित ज्ञेय ॥

दसविहसच्चं जणवद सम्मिदि ठवणा य णाम रूवे य।
संभावणे य भावे पडुच्च ववहार.उवमाए ॥८१॥

दशविधसत्य जनपद सम्मतिः स्थापना च नाम रूप ।
संभावना च भावः प्रतीत्य व्यवहारं उपमा ॥

भत्तं राया सम्मदि पडिमा तह होदि एस सुरदत्तो ।
किण्हो जंबूदीवं पल्लट्टदि पाववज्जवयो ॥८२॥

मर्क राजा सम्मति प्रतिमा तथा भवत्येव सुरदत्त ।
कृष्ण जम्बूद्वीपं परिवर्तयति पापवर्ज्यवचनं ॥

हस्सो रक्खदि कूरो पल्लोवममेवमादिया सच्चा ।
आमंतणि आणवणी पुच्छणि आचणी य पणवण्णी ॥८३॥

ह्रस्व रक्ष्यति कूर पल्योपममेवमादिकानि सत्यानि ।
आमंत्रणी आज्ञापनी पृच्छनी याचनी प्रज्ञापनी ॥

पच्चक्खाणी संसयवयणी इच्छाणुलोमिया तच ।
णवमी अणक्खरगुदा एवं भासा परूवेदि ॥८४॥

प्रत्याख्यानी संशयवचनी इच्छानुलोमिका तथ ।
नवमी अनक्षरगता एवं भाषा प्ररूपयति ॥

पयाणि १०००० ०६ ।

इति सच्चपवादपुव्वं गदं—इति सत्यप्रवादपूर्वं गतं ।

अप्पपवाद भणियं अप्पसरूवप्परूवयं पुव्वं ।
छव्वीसकोडिपयगयमेवं जाणंति सुपसत्था ॥८५॥

आत्मप्रवादं भणितं आत्मस्वरूपप्ररूपकं पूर्वं ।
षड्विंशतिकोटिपदगतमेवं जानन्ति सुप्रशस्ता ॥

जीवो कत्ता य वत्ता य पाणी भोत्ता य पोग्गलो ।
वेदी विण्हू सयंभू सरीरी तह माणओ ॥८६॥

सत्तो जंतू य माणी य माई जोगी य संकुडो ।
असंकुडो य खेत्तण्हू अंतरप्पा तहेव य ॥८७॥

जीव कर्ता च वक्ता च प्राणी भोक्ता च पुद्गल ।
वेद विष्णु स्वयंभू शरीरी तथा मानव ॥

सत्ता जन्तुश्च मानी च मायी योगी च सकुचित ।
असङ्कुचित क्षेत्रज्ञ अन्तरात्मा तथैव च ॥

ववहारेण जीवदि दसपाणेहिं, णिच्छयणएण य केवलणाणदंसणसम्मत्तरूपपाणेहि, जीविहिदि जीविदपुव्वो जीवदित्ति जीवो। ववहारेण सुहासुहं कम्मं णिच्छयणयेण चिप्पज्जयं च करेदित्ति कत्ता। नो कंमिवि करेदि इदि अकत्ता। सच्चमसच्चं च वत्तित्ति वत्ता। णिच्छयदो अवत्ता। णयदुगुत्तपाणा अस्स अत्थि इदि पाणी। कम्मफलं सस्सरूव च भुंजदि इदि भोत्ता। कम्मपोग्गलं पूरेदि गालेदि य पोग्गलो। णिच्छयदो अपोग्गलो। सव्व वेइ इदि वेदो। वावणसीलो विण्हू। सयभुवणसीलो सयंभू। सरीरमस्सत्थित्ति सरीरी। णिच्छयदो असरीरी। माणवादिपज्जयजुत्तो माणवो। णिच्छएण अमाणवो। एवं सुरो असुरो तिरिच्छो अतिरिच्छो णारयो अणारयो च इदि णादव्वं। परिग्गहेसु सजदित्ति सत्ता। णिच्छयदो असत्ता। णाणाजोणिसु जायइत्ति जंतू। णिच्छयेण अजतू। माणो अहकारो अस्सत्थित्ति माणी। णिच्छयदो अमाणी। मायास्सत्थित्ति मायी। णिच्छयदो अमायी। जोगो मणवयणकायलक्खणो अस्सत्थित्ति जोगी। णिच्छयदो अजोगी। जहण्णेण संकुइदपदेसो संकुडो। समुग्घादे लोय वाप्पइत्ति असंकुडो। खेत्तं लोयालोयं सस्सरूवं च जाणदित्ति खेत्तण्हू। अट्ठकम्माब्भंतरवत्तीसभावदो चेदणाब्भंतरवत्तीसभावदो च अंतरप्पा। एवं मुत्तो अमुत्तो। एवमादि वण्णेदि सत्तमपुव्वं।

व्यवहारेण जीवति दशप्राणै, निश्चयनयेन च केवलज्ञानदर्शनसम्यक्त्वरूपप्राणै । जीविष्यति जीवितपूर्वो जीवतीति जीव । व्यवहारेण शुभाशुभ कर्म निश्चयनयेन चित्पर्याय च करोतीति कर्ता । न किमपि करोतीत्यकर्ता । सत्यमसत्य च वक्तीति वक्ता । निश्चयतोऽवक्ता । नयद्विकोक्तप्राणा यस्य सन्तीति प्राणी । कर्मफल स्वस्वरूप च भुक्ते इति

मोक्षा । कर्मपुद्गलान् पूरयति गालयति च पुद्गलः । निश्चयतोऽपुद्गलः । सर्वं वेत्तीति वेदः । व्यापनशीलो विष्णुः । स्वयंभवनशीलो स्वयंभूः । शरीरमस्यास्तीति शरीरी । निश्चयतोऽशरीरी । मानवादिपर्याययुक्तो मानवः । निश्चयेनामानवः । एवं सुरोऽसुर, तिर्यंचोऽतिर्यंच, नारकोऽनारकश्च इति ज्ञातव्यः । परिग्रहेषु सजतीति सक्ता । निश्चयतोऽसक्ता । नानायोनिषु जायते इति जन्तुः । निश्चयेनाजन्तुः । मानोऽहंकारोऽस्यास्तीति मानी । निश्चयतोऽमानी । मायास्यास्तीति मायी । निश्चयतोऽमायी । योगो मनवचनकायलक्षणोऽस्यास्तीति योगः निश्चयतोऽयोगी । जघन्येन संकुचितप्रदेशः संकुचितः । समुद्घाते लोकं व्याप्नोतीत्यसंकुचितः । क्षेत्रं लोकालोकं स्वस्वरूपं च जानातीति क्षेत्रज्ञः । अष्टकर्माभ्यन्तरवर्तित्वभावचेतनाभ्यन्तरवर्तित्वभावत्वाच्चान्तरात्मा । एवं मूर्तोऽमूर्तः । एवमादिकं वर्णयति सप्तमं पूर्वं ।

पयाणि २६ ०००००० ।

इति आत्मप्रवादं पदं–दशात्मप्रवादं पदं ।

कम्मपवादपरूवण कम्मपवादं सया णमंसामि ।
इगिकोडीअडसीदीलक्खपयं अट्ठमं पुव्वं ॥ ८८ ॥

कर्मप्रवादप्ररूपणं कर्मप्रवादं सदा नमामि ।
एककोट्यष्टाशीतिलक्षपदं अष्टमं पूर्वं ॥

आवरणम्म विमय वेयणीयं मोहणायु णामं च ।
गोत्तं च अंतराय अट्ठवियप्पं च कम्ममिणं ॥ ८९ ॥

आवरणद्वय विभवं वेदनीयं मोहनीयमायुः नाम च ।
गोत्रं चान्तरायं अष्टविकल्पं च कर्मेदं ॥

अडदालसयं उत्तरपयडीदो असंखलोयभेयं च ।
बंधुदयुदीरणावि य सत्तं तेसिं परूवेदि ॥ ९० ॥

अष्टचत्वारिंशच्छत उत्तरप्रकृतित. असख्यलोकभेद च ।
बंधोदयोदीरणा अपि च सत्व तेषा प्ररूपयति ॥

पयडि:ट्ठिदि अणुभागो पदेसबंधो हु चउविहो बंधो ।
तेसिं च ठिदि णेया जहण्णइदरप्पभेयेण ॥९१॥

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबन्धो हि चतुर्विधो बन्ध· ।
तेषा च स्थितिः ज्ञेया जघन्येतरप्रभेदेन ॥

अणुभागो पयडीणं सुहासुहाणं च चउविहो होदि ।
गुडखंडसक्करामिदसरिसो य रसो सुहाणं पि ॥९२॥

अनुभाग· प्रकृतीना शुभाशुभाना च चतुर्विधो भवति ।
गुडखडशर्करामृतसदृशश्च रस. शुभानामपि ॥

णिंबकंजीरविसरहालाहलसरिसचउविहो णेयो ।
अणुभायो असुहाणं·पदेसबंधो वि बहुभेयो ॥९३॥

निंबकजीरविषहालाहलसदृशश्चतुर्विधो ज्ञेयः ।
अनुभागोऽशुभाना प्रदेशबन्धोऽपि बहुभेद· ॥

लयदारट्ठसिलासमभेया ते विल्लिदारणं तस्स ।
इगिभागो बहुभागाट्ठिसिला देसघादिघादीणं ॥९४॥

लतादार्वस्थिशिलासमभेदास्ते वल्लीदार्वनन्तस्य ।
एकभागो बहुभागा अस्थिशिला देशघातिघातिना ॥

पयाणि १८०००००० ।

इदि कम्मपवादपुव्व गद—इति कर्मप्रवादपूर्व गत ।

पच्चक्खाण णवमं चउसीदिलक्खपयप्पमाणं तु ।
तत्थ वि पुरिसविसेसा परिमिदकाले च इदरे च ॥९५॥

प्रत्याख्याने नवमं चतुरशीतिलक्षपदप्रमाणं तु ।
तत्रापि पुरुषविशेषात् परिमितकाले च इतरच ॥

णाम ट्ठवणा दव्वं खेत्तं कालं पडुच्च भावं च ।
पच्चक्खाणं किज्जइ सावज्जाणं च बहुलाणं ॥ ९६ ॥

नाम स्थापना द्रव्यं क्षेत्रं कालं प्रतीत्य भावं च ।
प्रत्याख्यानं क्रियते सावद्यानां च बहुलानां ॥

उववासविहिं तस्स वि भावणभेयं च पंचसमिदिं च ।
गुत्तितियं तह वण्णदि उववासफलं विसुद्धस्स ॥९७॥

उपवासविधिं तस्यापि भावनाभेदं च पंचसमितिं च ।
गुप्तित्रयं तथा वर्णयति उपवासफलं विशुद्धस्य ॥

अणागदमदिक्कंतं कोडिजुदमखंडिदं ।
सायारं च णिरायारं परिमाणं तहेदरं ॥९८॥

अनागतमतिक्रान्तं कोटियुतमखंडितं ।
साकारं च निराकारं परिमाणं तथेतरत् ॥

तहा च वत्तणीयाणं मोहद्धगमिदि ठिदं ।
पच्चक्खाणं जिणिंदेहिं दहभेयं पकित्तिदं ॥ ९९ ॥

तथा च [illegible] मार्गमिति स्थितं ।
प्रत्याख्यानं जिनेन्द्रैः [illegible]प्रकीर्तितं ॥

सद्दहिदं ण हि विणयसुद्धं अणुभासदसुद्धमिदि आमे ।
अणुपालणसुद्धं चिय भावविसुद्धं गहीदव्वं ॥ १०० ॥

चतुर्विधं तद्धि विनयशुद्धं अनुवादशुद्धमिति जानीहि ।
अनुपालनशुद्धं चैव भावविशुद्धं गृहीतव्यं ॥

पयाणि ८४००००० ।

इदि पच्चक्खाणपुव्वं गदं—इति प्रत्याख्यानपूर्वं गतं ।

विज्जाणुवादपुव्वं पयाणि इगिकोडि होंति दसलक्खा ।
अंगुट्ठपसेणादी लहुविज्जा सत्तसयमेत्थ ॥१०१॥

विद्यानुवादपूर्वं पदानि एककोटिः भवन्ति दशलक्षाणि ।
अंगुष्ठप्रसेनादी लघुविद्या सप्तशतान्यत्र ॥

पंचसया महविज्जा रोहिणिपमुहा पकासये चावि ।
तेसिं सरूवसत्तिं साहणपूयं च मंतादिं ॥१०२॥

पंचशतानि महाविद्या रोहिणीप्रमुखा प्रकाशयति चापि ।
तासां स्वरूपशक्तिं साधनपूजां च मन्त्रादिकं ॥

सिद्धाणं फललाहे भोमंगयणंगसद्दछिण्णाणि ।
सुमिणंलक्खणविंजणअट्ठणिमित्ताणि जं कहइ ॥१०३॥

सिद्धानां फललाभान् भौमगगनाङ्गशब्दच्छिन्नानि ।
स्वप्नलक्षणव्यंजनानि अष्टौ निमित्तानि यत्कथयति ॥

पयाणि ११००००००० ।

इदि विज्जाणुवादपुव्वं—इति विद्यानुवादपूर्वं ।

कल्लाणवादपुव्वं छव्वीससुकोडिपयप्पमाणं तु ।
तित्थहरचक्कवट्टीबलदेउसमद्धचक्कीणं ॥ १०४ ॥

कल्याणवादपूर्वं षड्विंशतिसुकोटिपदप्रमाणं तु ।
तीर्थंकरचक्रवर्तिबलदेवसमर्द्धचक्रिणां ॥

गब्भावदरणउच्छव तित्थयरादीसु पुण्णहेदू य ।
सोळहभावणकिरिया तवाणि वण्णेदि (स)विसेसं ॥१०५॥

गर्भावतरोत्सवानि तीर्थकरादिषु पुण्यहेतूंश्च ।
षोडशभावनाक्रिया तपांसि वर्णयति सविशेषं ॥

वरचंदसूरगहणगहणक्खत्तादिचारसउणाई ।
* तेसिं च फलाइं पुणो * वण्णेदि सुहासुहं जत्थ ॥१०६॥

वरचन्द्रसूर्यग्रहणग्रहनक्षत्रादिचारशकुनादि ।
तेषां च फलानि पुन वर्णयति शुभाशुभं यत्र ॥

पयाई २६००००००० ।

इति कल्याणवादपूर्वं–इति कल्याणवादपूर्वं ।

पाणावायं पुव्वं तेरहकोडीपयं णमंसामि ।
जत्थ वि कायचिकिच्छापमुहट्ठंगायुवेयं च ॥१०७॥

प्राणावायं पूर्वं त्रयोदशकोटिपदं नमामि ।
यत्रापि कायचिकित्साप्रमुखाष्टांगं आयुर्वेदं च ॥

भूदीकम्मंजंगुलिपक्कमणामाहया परे भेया ।
ईडापिंगलादिपाणा पुढवीआउग्गिवायूण ॥ १०८ ॥

भूतिकर्मजांगुलिप्रक्रमणानामका परे भेदा ।
इडापिंगलादिप्राणा पृथिव्यप्तेजोवायूनां ॥

तत्ताणं बहुभेय दहपाणपरूवणं च दव्वाणि ।
उवयारयावयारयरूवाणि य तेसिमेवं खु ॥ १०९ ॥

तत्त्वानां बहुभेदं दशप्राणप्ररूपणं च द्रव्याणि ।
उपकारापकाररूपाणि च तेषामेव खलु ॥

वण्णिज्जइ गइभेया जिणवरदेवेहि सव्वभासाहिं ।
वर्ण्यते गतिभेदैः जिनवरदेवैः सर्वभाषाभि ।
पयाणि १३०००००००।

पाणावाय गद—प्राणावायं गत ।

किरियाविसालपुव्वं णवकोडिपयेहिं संजुत्तं ॥ ११० ॥
क्रियाविशालपूर्वं नवकोटिपदै सयुक्त ॥

संगीदसत्थछेदालंकारादी कला बहत्तरी य ।
चउसट्ठी इच्छिगुणा चउसीदी जत्थ सिल्लाणं ॥१११॥
संगीतशास्त्रच्छदोलङ्कारादि यः कला द्वासप्तति ।
चतुःषष्टिः स्त्रीगुणाः चतुरशीति यत्र शिल्पाना ॥

विण्णाणाणि सुगब्भाधाणादी अडसय च पणवग्गं ।
सम्मद्दंसणकिरिया वण्णिज्जंते जिणिंदेहिं ॥११२॥
विज्ञानानि सुगर्भाधानादय अष्टशत च पचवर्ग ।
सम्यग्दर्शनक्रिया वर्ण्यते जिनेन्द्रै ॥

णिच्चणिमित्ताकिरिया वंदणसम्मादिया मुणिंदाणं ।
लोगिगलोगुत्तरभवकिरिया णेया सहावेण ॥११३॥
नित्यनिमित्तक्रिया वदनासाम्यादिका मुनीन्द्राणा ।
लौकिकलोकोत्तरभवक्रिया ज्ञेया स्वभावेन ॥
पयाणि ९००००००० ।

इदि किरियाविसाल—इति क्रियाविशाल ।

तिल्लोयविंदसारं कोडीबारह दसग्घपणलक्खं ।
जत्थ पयाणि तिलोयं छत्तीसं गुणिदपरियम्मं ॥११४॥

त्रिलोकबिन्दुसारं कोट्यो द्वादश दशाग्रपंचलक्षाणि ।
यत्र पदानि त्रिलोक षड्विंशत् गणितपरिकर्म ॥

अट्ठववहारात्थि पुणो अंकवियासादि चारि बीजाइं ।
मोक्खसरूवगमणकारणसुहधम्मकिरियाओ ॥११५॥

अष्टव्यवहारान् पुन अंकविपासादीनि चत्वारि बीजानि ।
मोक्षस्वरूपगमनकारणसुखधर्मक्रिया ॥

लोयस्स बिंदवयवा वण्णिज्जंते च एत्थ सारं च ।
तं लोयबिंदुसारं चोद्दसपुव्वं णमसामि ॥११६॥

लोकस्य बिन्दवोऽवयवा वर्ण्यंते यत्र सारं च ।
तल्लोकबिन्दुसारं चतुर्दशपूर्वं नमामि ॥

पयाणि १२५०००००० ।

तिलोयबिंदुसारं पव्वं—त्रिलोकबिन्दुसारं पूर्वं ।

इदि णाणभूसणपट्टे सूरिं सिरिविजयकित्तिणामगुरुं ।
णमिऊण सूरिमुक्खो कहइ इणं सुक्खसुहचंदो ॥ ११७ ॥

इति ज्ञानभूषणपट्टे सूरिं श्रीविजयकीर्तिनामगुरुं ।
नत्वा सूरिमुख्यः कथयति इमां सुखशुभचंद्र ॥

इदि अंगपण्णत्तीए सिद्धंतसमुच्चये णाणंगसमरूवणावयमि-
हाणे बिदिया अहियारो ॥ २ ॥

चूलिकाप्रकीर्णकप्रज्ञप्तिः ।



तच्चूलियासुभेया पंच वि तह जलगया हवे पढमा ।
जलथभण जलगमणं वण्णादि विण्हिस्स भक्खं जं ॥१॥

तच्चूलिकासु भेदाः पचापि तथा जलगता भवेत्प्रथमा ।
जलस्थभन जलगमन वर्णयति वन्हे भक्षण यत् ॥

वेसणसेवणमंतंतंतंतवचरणपमुहविहिभेए ।
णहणहदुगणवअडणवणहदुण्णि पयाणि अंककमे ॥२॥

प्रवेशानसेवनमत्रतत्रतपश्चरणप्रमुखविविभेदान् ।
नभोनभोद्विकनवाष्टनवनभोद्विकानि पदानि अकक्रमेण ॥

पयाणि २०९८९२००।

जलगदचूलिया–जलगतचूलिका ।

मेरुकुलसेलभूमीपमुहेसु पवेससिग्घगमणादि– ।
कारणमंतंतंतंतवचरणणिरूवया रम्मा ॥३॥

मेरुकुलशैलभूमिप्रमुखेषु प्रवेशशीघ्रगमनादि– ।
कारणमत्रतत्रतपश्चरणनिरूपिका रम्या ॥

तित्तियपयमेत्ता हु थलगयसण्णामचूलिया भणिया ।
मायागया च तेत्तियपयमेत्ता चूलिया णेया ॥४॥

तावतपदमात्रा हि स्थलगतसन्नामचूलिका भणिता ।
मायागता च तावत्पदमात्रा चूलिका ज्ञेया ॥

मायारूवमहेंदजालविकिरियादिकारणगणस्स ।
मंततवतंतयस्स य णिरूवग्ग कोदुयाकलिदा ॥५॥

मायारूपेन्द्रजालविक्रियादिकारणगणानां ।
मंत्रतपस्तंत्राणां च निरूपिका [illegible]कथिता ॥

रूवगया पुण हरिकरितुरंगरुरुणरतरुमियवसहाणं ।
ससवग्घादीणं पि य रूवपरावत्तहेदुस्स ॥६॥

रूपगता पुन हरिकरितुरगरुरुनरतरुमृगवृषभाणां ।
शशव्याघ्रादीनामपि च रूपपरावर्तनहेतूनां ॥

तवचरणमंततंतयंतस्स परूवगा य घयपसिला–।
चितकट्ठलेप्पुक्खणणादिसु लक्खणं कहदि ॥७॥

तपश्चरणमंत्रतंत्रयंत्राणां प्ररूपका च [illegible]शिला–।
चित्रकाष्ठलेप्योत्खननादिसुलक्षणं कथ्यते ॥

पारदपरियट्टणय रसवायं धादुवायक्खणं च ।
जा चूलिया कहेदि णाणाजीवाण सुहहेदू ॥८॥

पारदपरिवर्तने रसवादं धातुवादाख्यानं च ।
या चूलिका कथयते नानाजीवानां सुखहेतो ॥

आयासगया पुण गयणे गमणस्स सुमंततंतयंताइं ।
हेदूणि कहदि तवमपि तेत्तियपयमत्तसंघडा ॥९॥

आकाशगता पुन गगने गमनस्य सुमंत्रतंत्रयंत्राणि ।
हेतूनि कथयति तपोऽपि तावत्पदमात्रसम्बद्धा ॥

इदि पंचपयारचूलिया परिसमत्ता गदा–इति पंचप्रकारचूलिका समाप्ता गता ।

—

चउदस पइण्णया खलु सामइयपमुहा हि अंगबाहिरिया ।
त [illegible] अ[illegible]गियाइ [illegible] हि सुभव्वजीवस्स ॥१०॥

च[illegible] प[illegible]णाका खलु सामायिकप्रमुखा हि अंगबाह्या ।
[illegible] हेतु हि सुभव्यजीवस्य ॥

एयत्तणेण अप्पे गमणं परदव्वदो दु णिव्वत्ती ।
उवयोगस्स पइत्ती स समायोऽदो उच्चदे समये ॥११॥

एकत्वेन आत्मनि गमन परद्रव्यतस्तु निवृत्तिः ।
उपयोगस्य प्रवृत्ति· स समायै आत्मोच्यते समये ॥

णादा चेदा दिट्ठाहमेव इदि अप्पगोचरं झाणं ।
अह सं मज्झत्थे गदि अप्पे आयो दु सो भणिओ ॥१२॥

ज्ञाता चेतयिता दृष्टाहमेव इत्यात्मगोचर ध्यान ।
अथ स सध्यस्थे गतिरात्मनि आयस्तु स भणितः ॥

तत्थ भवं सामइयं सत्थं अवि तप्परूवगं छविहं ।
णाम ट्ठवणा दव्वं खेत्तं कालं च भाव तं ॥१३॥

तत्र भवं सामायिकं शास्त्रमपि तत्प्ररूपक षड्विध ।
नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र कालश्च भावस्तत् ॥

तत्थ इट्ठाणिट्ठणामेसु रायदोषणिव्वात्ति सामाइयमिदि अहिहाणं वा णाम सामाइय ॥ १ ॥

तत्रेष्टानिष्टनामसु रागद्वेषनिवृत्ति सामायिकमिति अभिधान वा नाम सामायिकम् ॥१॥

मणुण्णमणुण्णासु इत्थिपुरिसाइआयारठावणासु कट्ठलेवचित्तादिपडिमासु रायदोसणियट्टी इणं सामाइयमिदि वा इज्जमाणयं किंचि वत्थू वा ठावणा सामाइयं ॥ २ ॥

मनोज्ञामनोज्ञासु स्त्रीपुरुषाद्याकारस्थापनासु काष्ठलेपचित्रादिप्रतिमासु रागद्वेषानिवृत्ति· इद सामायिकमिति वा स्थाप्यमान किंचिद्वस्तु वा स्थापना सामायिक ॥ २ ॥

इट्ठाणिट्ठेसु चेदणाचेदणदव्वेसु रायदोसणियट्टी सामाइयसत्थाणुवज्जुत्तणायगो तस्सरीरादि वा दव्वसामाइयं ॥ ३ ॥

इष्टानिष्टेषु चेतनाचेतनद्रव्येषु रागद्वेषनिवृत्तिः सामायिकशास्त्रानुपयुक्तज्ञायकः तच्छरीरादि वा द्रव्यसामायिकं ॥ ३ ॥

णामगामणयरवणादिखेत्तेसु इट्ठाणिट्ठेसु रायदोसणियत्ती खेत्त सामाइयं ॥ ४ ॥

नामग्रामनगरवनादिक्षेत्रेषु इष्टानिष्टेषु रागद्वेषनिवृत्तिः क्षेत्रसामायिकं ॥ ४ ॥

वसंतादिसु उदुसु सुक्ककिण्हाणं पक्खाणं दिणवारणक्खत्तादिसु च तेसु कालविसेसेसु तं णियत्ती कालसामाइयं ॥ ५ ॥

वसंतादिषु ऋतुषु शुक्लकृष्णयोः पक्षयोः दिनवारनक्षत्रादिषु च तेषु कालविशेषेषु तन्निवृत्तिः कालसामायिकं ॥ ५ ॥

णामभावस्स जीवादितच्चविसयुवयोगरूवस्स पज्जायस्स मिच्छादंसणकसायादिसंकिलेसणियत्ती सामाइयसत्थुवजुत्तणायगो तप्पज्जायपरिणदं सामाइयं वा भावसामाइयं ॥ ६ ॥

नामभावस्य जीवादितत्त्वविषयोपयोगरूपस्य पर्यायस्य मिथ्यादर्शनकषायादिसंक्लेशनिवृत्तिः सामायिकशास्त्रोपयुक्तज्ञायकः तत्पर्यायपरिणतं सामायिकं वा भावसामायिकं ॥६॥

सामाइयं गदं—सामायिकं गतं ।

चउवीसजिणाणं णामठवणदव्वखेत्तकालभावेहिं ।
कल्लाणचउत्तीसातिसयपाडिहेराणं ॥ १४ ॥

चतुर्विंशतिजिनानां नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावैः ।
कल्याणचतुस्त्रिंशदतिशयाष्टप्रातिहार्याणां ॥

परमोरालियदेहसमोसरणाण धम्मदेसस्स ।
णमणमिह तु थवणं तप्पडिमाणं च सत्थं च ॥ १५ ॥

परमौदारिकदेहसमवशरणाना वर्मदेशस्य ।
वर्णनमिह तत्स्तवन तत्प्रतिबद्ध च शास्त्र च ॥
थव गद–स्तव गत ।

मा वंदणा जिणुत्ता वंदिज्जइ जिणवराणमिण एक्क ।
चेत्तचेत्तालयादिथई च दव्वादिबहुभेया ॥ १६ ॥
सा वन्दना जिनोक्ता वन्द्यते जिनवराणा एक' ।
चैत्यचैत्यालयादिस्तुतिश्च द्रव्यादिवहुभेदा ॥
एव वदणा–एव वदना ।

पडिकमणं कयदोसणिरायरणं होदि तं च सत्तविहं ।
देवसियराइक्खियचउमासियमेववच्छरियं ॥ १७ ॥
प्रतिक्रमण कृतदोषनिराकरण भवति तच्च सप्तविध ।
दैवसिकरात्रिकपाक्षिकचातुर्मासिकसावत्सरिक ॥
इज्जावहियं उत्तमअत्थं इदि भरहखेत्तादि ।
दुस्समकालं च तहा छहसंहणणऽड्ढपुरिसमासिज्ज ॥१८॥
ईर्यापथिक उत्तमार्थमिति भरतक्षेत्रादि ।
दु.षमकाल च तथा षट्संहननाढ्यपुरुषमाश्रित्य ॥
दव्वादिभेदभिण्णं सत्थं अवि तप्परूवयं तं (तु) ।
यदिवग्गेहि सदावि य णादव्वं दोसपरिहरणं ॥ १९ ॥
द्रव्यादिभेदाभिन्न शास्त्रमपि तत्प्ररूपक तत्तु ।
यतिवर्गै. सदापि च ज्ञातव्य दोषपरिहरण ॥
इदि पडिक्कमण–इति प्रतिक्रमण ।

वेणइयं णाणक्खं पंचविहो णाणदंसणाणं च ।
चारित्ततवुवचारह विणओ अत्थ परूविज्जइ ॥ २० ॥

वैनयिकं ज्ञानाख्यं पंचविधं ज्ञानदर्शनयोश्च ।
चारित्रतपउपचाराणां विनयः यत्र प्ररूप्यते ॥

विणयो सासणधम्मो विणओ संसारतारओ विणओ ।
मोक्खपहो वि य विणओ कायव्वो सम्मदिट्ठीणं ॥ २१ ॥

विनय शासनधर्म विनय संसारतारक विनय ।
मोक्षपथोऽपि च विनय कर्तव्य सम्यग्दृष्टिभि ॥

विणओ गओ—विनयो गतः ।

किदिकम्मं जिणवयणधम्मजिणालयाण चेयस्स ।
पंचगुरूण णवहा वंदणहेदुं परूवेदि ॥ २२ ॥

कृतिकर्म जिनवचनधर्मजिनालयानां चैत्यस्य ।
पंचगुरूणां नवधा वन्दनाहेतुं प्ररूपयति ॥

साधीणतियपदिक्खणतियणदिचउसरसुवारसावत्ते ।
णिच्चणिमित्ताकिरियाविहिं च बत्तीस दोसहरं ॥ २३ ॥

स्वाधीनत्रिकप्रादक्षिण्यत्रिनतिचतुः शिरोद्वादशावर्ताः ।
नित्यनैमित्तिकक्रियाविधिं च द्वात्रिंशद्दोषहरं ॥

इदि किदिकम्मं—इति कृतिकर्म ।

उदिगोयारस्स विहिं पिंडविसुद्धिं च जं परूवेदि ।
दसवयालियसुत्तं दह काला जत्थ संवुत्ता ॥ २४ ॥

यतिगोचरस्य विधिं पिंडविशुद्धिं च यत् प्ररूपयति ।

दशवैकालिकसूत्रं दश काला यत्र समुक्ता· ॥

इदि दहवेकालिय–इति दशवैकालिक ।

उत्तराणि अहिज्जंति उत्तरऽज्झयणं मदं जिणिंदेहिं ।

बावीसपरीसहाणं उवसग्गाणं च सहणविहिं ॥ २५ ॥

उत्तराणि अधीयन्ते उत्तराध्ययन मत जिनेन्द्रैः ।

द्वाविंशतिपरीषहाना उपसर्गाणा च सहनविधिं ॥

वण्णेदि तप्फलमवि एवं पण्हे च उत्तरं एवं ।

कहदि गुरु सीसयाणं पइण्णिय अट्ठम तं खु ॥ २६ ॥

वर्णयति तत्फलमपि एव प्रश्ने च उत्तर एव ।

कथयति गुरुः शिष्येभ्य प्रकीर्णक अष्टम तत्खलु ॥

इदि उत्तरज्झयण–इत्युत्तराध्ययन ।

कप्पव्ववहारो जहिं ववहिज्जइ जोग कप्पमाजोगा ।

सत्थं अवि इसिजोग्गं आयरणं कहदि सव्वत्थ ॥ २७ ॥

कल्पव्यवहार· यत्र व्यवह्रियते योग्य कल्प्य अयोग्य ।

शास्त्रमपि ऋषियोग्य आचरणं कथयति सर्वत्र ॥

एव कप्पववहारो गदो–एव कल्पव्यवहारो गत ।

कप्पाकप्पं तं चिय साहूणं जत्थ कप्पमाकप्पं ।

वण्णिज्जइ आसिच्चा दव्वं खेत्तं भवं कालं ॥ २८ ॥

कल्प्याकल्प्यं तदेव साधूनां यत्र कल्प्यमकल्प्यं ।
वर्ण्यते आश्रित्य द्रव्यं क्षेत्रं भवं कालं ॥
इति कप्पाकप्पं—इति कल्प्याकल्प्यं ।

महकप्पं णायव्वं जिणकप्पाणं च सव्वसाहूणं ।
उत्तमसंहणणाणं दव्वक्खेत्तादिवत्तीणं ॥ २९ ॥
महाकल्प्यं ज्ञातव्यं जिनकल्पानां च सर्वसाधूनां ।
उत्तमसंहननानां द्रव्यक्षेत्रादिवर्तिनां ॥
तियकालयोगकप्पं थविरकप्पाण जत्थ वण्णिज्जइ ।
दिक्खासिक्खापोसणसल्लेहणअप्पसक्कारं ॥ ३० ॥
त्रिकालयोगकल्प्यं स्थविरकल्पानां यत्र वर्ण्यते ।
दीक्षाशिक्षापोषणसल्लेखनात्मसंस्काराणि ॥
उत्तमठाणगदाणं उक्किट्ठाराहणाविसेसं च ।
उत्तमस्थानगतानां उत्कृष्टाराधनाविशेषं च ।
इति महाकप्पं गदं—इति महाकल्प्यं गतं ।

पुंडरियणामसत्थं णमामि णिच्चं सुभावेण ॥ ३१ ॥
पुंडरीकनामशास्त्रं नमामि नित्यं सुभावेन ।
भावणवितरजोइसकप्पविमाणेसु जत्थ वण्णिज्जइ ।
उप्पत्तीकारण खलु दाण पूय च तवयरणं ॥ ३२ ॥
भावनव्यन्तरज्योतिष्ककल्पविमानेषु यत्र वर्ण्यते ।
उत्पत्तिकारणं खलु दानं पूजा च तपश्चरणं ॥
सम्मत्तसंजमादिं अकामणिज्जरणमेव जत्थ पुणो ।
तदुपादठाणवेहवसुहसंपत्ती च णीमाणं ॥ ३३ ॥

सम्यक्त्वसयमादि अकामनिर्जरा एव यत्र पुन' ।
तदुत्पादस्थानवैभवसुखसपत्तिश्च जीवाना ॥
इदि महंपुडरीय–इति महापुडरीक ।

णीसेहियं हि सत्थं पमाददोसस्स दूरपरिहरण ।
पायच्छित्तविहाण कहेदि कालादिभावेण ॥ ३४ ॥
निपेधिका हि शास्त्र प्रमाददोपस्य दूरपरिहरणं ।
प्रायश्चितविधान कथयति कालादिभावेन ॥
आलोयण पडिकमणं उभयं च विवेयमेव वोसग्ग ।
तव छेय परिहारो उवठावण मूलमिदि णेया ॥ ३५ ॥
अलोचन प्रतिक्रमणं उभय च विवेक एव व्युत्सर्गः ।
तपश्छेद' परिहार' उपस्थापना मूलमिति ज्ञेय ॥
दहभेया वि य छेदे दोसा आकंपियं दस एदे ।
अणुमाणिय जं दिट्ठं वादर सुहमं च छिण्ण च ॥ ३६ ॥
दशभेदा अपि च छेदे दोषा आकपित दश एते ।
अनुमानित यदृष्ट वादर सूक्ष्म च छिन्न च ॥
सद्दाबुलियं बहुजणमव्वत्तं चावि होदि तस्सेवी ।
दोसणिसेयविमुत्तं इदि पायच्छित्तं गहीदव्वं ॥ ३७ ॥

---

१ महपुडरीय अस्य स्थाने पुडरीय इत्येव भाव्य । महापुडरीकस्य लक्ष[illegible] पुस्तकाच्च्युत अस्मदृष्टिदोषाद्वा गतमिति न जानीम । लिखितपुस्तक त्वधुन[illegible] अस्मत्समीपे नास्ति। २१–७–२२। तल्लक्षण हि–महच्च तत्पुडरीक च महापुडरीव[illegible] शास्त्र तच्च महर्धिकेषु इन्द्रप्रतीन्द्रादिषु उत्पत्तिकारणतपोविशेषाद्याचरण वर्णयति

महपुडरिय सत्थ वण्णिज्जइ जत्थ महड्ढिदेवेसु ।

[illegible]

शब्दाकुलितं बहुजनमध्यक्षं चापि भवति तत्सेवी ।
दोषानिपेक्षयविमुक्तं इति प्रायश्चित्तं गृहीतव्यं ॥

एवं दसछेया वि य तद्दोसा तहविहा वि तब्भेया ।
वण्णिज्जंते स अत्थ वि णिसीदिकाएसु वित्थारा ॥ ३८ ॥

एवं दशच्छेदा अपि च तद्दोषा तथाविधा अपि च तद्भेदा ।
वर्ण्यन्ते तत्रापि निसीतिकासु विस्तारेण ॥

इति णिसीहियपइण्णयं—इति निषेधिकाप्रकीर्णकं ।

एवं पइण्णयाणि य चोद्दस पविदाणि एत्थ संखेवा ।
सद्दहदि जो वि जीवो सो पावइ परमणिव्वाणं ॥ ३९ ॥

एवं प्रकीर्णकानि च चतुर्दश प्रतीतानि अत्र संक्षेपात् ।
श्रद्दधाति यापि जीव स प्राप्नोति परमनिर्वाणं ॥

एवं चोद्दसपइण्णया—एवं चतुर्दशप्रकीर्णकानि ।

सुदणाण केवलमवि दोण्णि वि सरिसाणि होंति बोहादो ।
पच्चक्खं केवलमवि सुदं परोक्खं सया जाणे ॥ ४० ॥

श्रुतज्ञानं केवलमपि द्वे अपि सदृशे भवतो बोधतः ।
प्रत्यक्षं केवलमपि श्रुतं परोक्षं सदा जानीहि ॥

इदि उसहेण वि भणियं पण्हादो उसहसेणजोइस्स ।
सेसा वि जिणवरिंदा सगणिं पडि तह समक्खंति ॥ ४१ ॥

इति वृषभेणापि भणितं प्रश्नतः वृषभसेनयोगिनः ।
शेषा अपि जिनवरेन्द्रा स्वगणिनं प्रति तथा समाख्यान्ति ॥

सिरिवड्ढमाणमुहकयणिग्गमियं बारहंगसुदणाणं ।
सिरिगोयमेण रइयं अवियक्खं सुणह भवियजणा ॥ ४२ ॥

श्रीवर्धमानमुखकञ्जविनिर्गत द्वादशाङ्गश्रुतज्ञान ।
श्रीगौतमेन रचित अविरुद्ध शृणुत भव्यजना ! ॥

सिरिगोदमेण दिण्णं सुहम्मणाहस्स तेण जंबुस्स ।
विण्हू णंदीमित्तो तत्तो य पराजिदो य(त)त्तो ॥ ४३ ॥

श्रीगौतमेन दत्त सुधर्मनाथस्य तेन जम्बूनाम्न ।
विष्णु नन्दिमित्र ततश्चऽपराजित: तत ॥

गोवद्धणो य तत्तो भद्दबुओ अंतकेवली कहिओ ।
बारहअंगविदण्हू पचेदे कलियुगे जादा ॥ ४४ ॥

गोवर्धनश्च तत भद्रबाहु अन्तकेवली कथित ।
द्वादशाङ्गविद पञ्चैते कलियुगे जाता ॥

दसपुव्वाणं वेदा विसाहसिरिपोढिलो तदो सूरी ।
खत्तिय जयसो विजयो बुद्धिल्लसुगंगदेवा य ॥ ४५ ॥

दशपूर्वाणा वेत्तारौ विशाखश्रीप्रौष्ठिलौ तत: सूरी ।
क्षत्रिय जयस विजय बुद्धिल्लसुगगदेवौ च ॥

सिरिधम्मसेणसुगणी तत्तो एगादसंगवेत्तारा ।
णक्खत्तो जयपालो पंडू धुयसेण कंसगणी ॥ ४६ ॥

श्रीधर्मसेनसुगणी तत एकादशाङ्गवेत्तार: ।
नक्षत्र जयपाल पाडु ध्रुवसेन कशगणी ॥

अग्गमअंगि सुभद्दो जसभद्दो भद्दबाहु परमगणी ।
आइरियपरंपराइ एवं सुदणाणमावहदि ॥ ४७ ॥

अग्रिमाङ्गी सुभद्र यशोभद्र भद्रबाहु परमगणी ।
आचार्यपरपरया एव श्रुतज्ञान आवहति ॥

---

१ नागसेनसिद्धार्थधृतिषेणेति त्रीणि नामानि पुस्तकाद्गुतानीत्यवभाति । २ प्रथमाङ्गवेत्तार । ३ लोहार्यश्चेति ।

कालविसेसा णट्ठं सुदणाणं अप्पबुद्धिपरमादो ।
तं अंसं संवहदि धम्मुवदेसस्स सद्धें दु ॥ ४८ ॥

कालविशेषात नष्टं श्रुतज्ञानं अल्पबुद्धिपरणतः ।
तदंशं संवहति धर्मोपदेशस्य श्रद्धानेन तु ॥

आइरियपरंपराए आगदअंगोवदेसणं पढइ ।
सो पढइ मोक्खसउहं भव्वो बोहप्पहावेण ॥ ४९ ॥

आचार्यपरंपरया आगताङ्गोपदेशनं पठति ।
स पठति मोक्षसौधं भव्यो बोधप्रभावेन ॥

सिरिसयलकित्तिपट्टे आसेसी भुवणकित्तिपरमगुरु ।
तप्पट्टकमलभाणू भट्टारओ बोहभूसणओ ॥ ५० ॥

श्रीसकलकीर्तिपट्टे आसीत् भुवनकीर्तिपरमगुरु ।
तत्पट्टकमलभानु भट्टारक बोधभूषण ॥

सिरिविजयकित्तिदेओ णाणासत्थप्पयासओ धीरो ।
बुहसेवियपयजुयलो तप्पयवरकमलमसलो य ॥ ५१ ॥

श्रीविजयकीर्तिदेवो नानाशास्त्रप्रकाशको धीर ।
बुधसेवितपदयुगल तत्पदवरकमल ॥

तप्पयसवणमणो तेविज्जो उहयभासपरिवेई ।
सुहचंदो तेण इणं रइयं सत्थं समासेण ॥ ५२ ॥

तत्पदसेवनमनस्क त्रैविद्य उभयभाषापरिवेदी ।
शुभचन्द्रस्तेन इदं रचितं शास्त्रं समासेन ॥

मयविरुद्धं किं पि य जं तं सोहंतु सुदहरा भव्वा ।
परउवयारणिविट्ठा परकज्जपरा सुहावट्ठा ॥ ५३ ॥

शास्त्रविरुद्ध 'किमपि च यत्तत् शोधयन्तु श्रुतधरा भव्या' ।
परोपकारनिविष्टा' परकार्यकरा सुभावाढ्याः ॥

जो णाणहरो भव्वो भावइ जिणसासणं परं दिव्वं ।
अचलपयं सो पावइ सुदणाणुवदेसियं सुद्धं ॥ ५४ ॥

यो ज्ञानधरो भव्यो भावयति जिनशासन परं दिव्य ।
अचलपद स प्राप्नोति श्रुतज्ञानोपदेशित शुद्ध ॥

इदि अंगपण्णत्तीए सिद्धंतसमुच्चये बारहअंगसमराणावराभिहाणे तइओ परिच्छेदो सम्मत्तो ॥ ३ ॥

इदि अगपण्णत्ती सम्मत्ता ।

स. १८६४ पूषवदी १५ सुरतवदरे चन्द्रप्रभचैत्यालये लिखित पडितरूपचन्द्रेण स्वज्ञानावरणीयकर्मक्षयार्थं । शुभ भवतु, कल्याणमस्तु ।

अथ श्रुतावतार ।

अत्र भरतक्षेत्रे वांमिदेशे वसुंधरानामनगरी भविष्यति। तत्र नरवाहनो राजा तस्य सुरूपा राज्ञी तस्यां पुत्रमलभमानो राजा हरिं खेदं करिष्यति। अत्र प्रस्तावे सुबुद्धिनामा श्रेष्ठी तस्य नृपस्योपदेशं दास्यति। यदि देव! पद्मावतीपादार्चनपूर्वां करिष्यति। तदा पुत्रं त्वं प्राप्नोषि अत एव श्रेष्ठिना प्रोक्तं तदेव राजा करिष्यति ततः पुत्रो भविष्यति। तस्य पुत्रस्य पद्म इति नाम विधास्यति। राजा ततश्चैत्यालयं करिष्यति सहस्रकूटं वर्षासहस्रसर्वसोत्सवं चतुःशाले वर्षे वर्षे यात्रां करिष्यति। वसंतमासे श्रेष्ठ्यपि राजप्रसादात्पदे पदे जिनमंदिरैर्मंडितां महीं करिष्यति। अत्रांतरे मघौ प्राप्ते समस्तोपि संघस्तत्रागमिष्यति। राजा श्रेष्ठिना सह जिनस्तवनं विधाय पूजां च नगरीमध्ये महामहोत्सवेन रथं भ्रामयित्वा ततो जिनप्रांगणे स्थापयिष्यति। मित्रमित्रं मगधस्वामिनं मुनीन्द्रं दृष्ट्वा वैराग्यभावनाभावितो नरवाहनोपि श्रेष्ठिना सुबुद्धिनाम्ना सह जैनीं दीक्षां करिष्यति। अत्रांतरं कश्चिल्लेखवाहः समा गमिष्यति। जिनान् प्रणम्य मुनीनां वंदनां कृत्वा धरसेनगुरोर्लेखनां प्रतिपाद्य लेखं समर्पयिष्यति। तत्रस्थास्ते मुनयस्तं गृहीत्वा वाचनां करिष्यंति। तद्यथा। गिरिनगरसमीपे गुहावासी धरसेनमुनीश्वरोऽग्रायणीयपूर्वस्य या पंचमवस्तुकस्तस्य चतुर्थप्राभृतस्य शास्त्रस्य व्याख्यानप्रारंभं करिष्यति। धरसेनभट्टारक कतिपयदिनैर्नरवाहनसुबुद्धिनाम्नोः पठनाकर्णनचिंतनक्रिया कुर्वतोः आषाढश्वेतैकादशीदिने शास्त्रपरिसमाप्तिं यास्यति एकस्य भूता रात्रौ बलिविधिं करिष्यति अन्यस्य दंतचतुष्कं सुंदरं। भूतबलिप्रभावाद्भूतबलिनामा नरवाहनो मुनिर्भविष्यति समदंतचतुष्कप्रभावात् सुबुद्धिः पुष्पदंतनामा मुनिर्भविष्यति। आत्मनो निकटमरणं ज्ञात्वा धरसेन एतयोः क्लेशो मा भवतु इति मत्वा तन्मुनिद्वयं विसर्जनं करिष्यति।

तन्मुनिद्वयं अंकुलेसुरपुरे गत्वा मत्वा षडंगरचनां कृत्वा शास्त्रेषु लिखाप्य लेखकान् संतोष्य प्रचुरदानेन ज्येष्ठस्य शुक्लपंचम्यां तानि शास्त्राणि संघसहितानि नरवाहनः पूजयिष्यति षडंगनामानं दत्वा निजपालितं पुष्पदंतसमीपं नरवाहनस्तं पुस्तकसहितं प्रेषयिष्यति निजपालितदर्शितपुस्तकं तं षडंगनामानं दृष्ट्वा पुष्पदंतः स्वहृदि तोषं करिष्यति नानापुस्तकसमूहं लिखाप्य सोपि पंचमीतिथ्यंगमालोकमानो मुनिभिः समंततः स्थास्यति। अत्रांतरे ग्रीष्मकाले प्राप्ते पुष्पदंतो विचित्रमडंपरचनां करिष्यति । पुस्तकपूजानिमित्तं सिद्धांतपुस्तकं धृत्वा समस्तानन्यान्पट्टकोपरिवरपट्टैः पिधाय क्रियां कृत्वा ततः श्रुतस्तोत्रं करिष्यति। व्रतसमितिगुप्तिमुनिव्रतभाषणं आचारांगमष्टादशसहस्रपदैर्भक्त्याभिवदे इत्यादिस्तोत्र विधाय यावत्पुष्पदंताचार्य्यैः स्थास्यति तावद्भव्यजनैः पृष्टः सम्यगुपवासफलं भव्यानामग्रे भणिष्यति। ये केचित्प्राणिनः शुक्लपंचमीदिने उपवास श्रुतार्थं कुर्व्वंति ते खेचरोरगसुरासुरसुखानि भुक्त्वा तृतीये भवे निर्व्वाणं व्रजंति तद्वचः श्रुत्वा श्रावकाः श्राविकाश्च तं विधिं लास्यंति। अत्रांतरे सूर्योस्तंगमिष्याति चन्द्रोदयो भविष्यति प्रभाते जाते भूयोपि भव्यश्रावकाः श्रुतपूजां कृत्वा गृहं गत्वा साधुभ्यो भोजनं वितीर्य्य स्वयं भोजनं करिष्यति अमुना प्रकारेण दिनत्रयं श्रुतपूजा कृत्वा ततः पुष्पदंतो मुनिः पुस्तकान्पुस्तकस्थाने स्थापयिष्यति। सिद्धांतपुस्तकसृष्टिं कृत्वा नरवाहनमुनि॰ पुष्पदंत॰ पापानि विधूय वीतरागं वीरं स्मृत्वा स्वर्ग्गं यास्यति यथा षट्खंडागमरचनाकारको भूतवलिभट्टारकस्तथा पुष्पदंतोपि विंशतिप्ररूपणाना कर्त्ता। पुनर्रिद्धभूतिगणिना निगदितं भो॰ श्रेणिक। षट्खंडागमसूत्रोत्पत्तिं विमुच्येदांनी प्राभृतसूत्रोत्पत्तिं कथयामि श्रूयता–ज्ञानप्रवादपूर्व्वस्य नामत्रयोदशमो वस्तुकस्तदीयतृतीयप्राभृतवेत्ता गुणधरनामगणी मुनिर्भविष्यति सोपि नागहस्तिमुनेः पुरतस्तेषा सूत्राणामर्थान्प्रतिपादयिष्यति तयोर्गुणधरनागहस्तिनामभट्टारकयोरुपकंठे पठित्वा तानि सूत्राणि यतिनायकाभिधो मुनिस्तेषा गाथासूत्राणा वृत्तिरूपेण षट्सहस्रप्रमाणं चूर्णिनामशास्त्र करिष्यति। तेषा चूर्णिशास्त्राणा समुद्धरणनामा मुनि-

द्वादशसहस्रप्रमितां तट्टीकां रचयिष्यति शिवनामालंकृतं इति सूरि परंपरया द्विविधसिद्धांतो व्रजन् मुनीन्द्रकुंदकुंदाचार्यसमीपे सिद्धांतं ज्ञात्वा कुंदकीर्तिनामा षट्खंडानां मध्ये प्रथमस्त्रे खंडानां द्वादशसहस्रप्रमितं परिकर्म्मं नाम शास्त्रं करिष्यति षट्खंडेन विना तेषां खंडानां सप्तसमाप्तानि: पद्धतिनामग्रंथं द्वादशसहस्रप्रमितं श्यामकुंडनामा भट्टारकः करिष्यति तथा च षट्खंडस्य सप्तसहस्रप्रमिता पञ्जिका च। द्विविधसिद्धांतस्य व्रजतः समुद्धरणे समंतभद्रनामा मुनीन्द्रो भविष्यति सोपि पुनः षट्खण्डपंचखंडानां संस्कृतभाषयाष्टषष्टिसहस्रप्रमितां टीकां करिष्यति द्वितीयसिद्धांतटीकां शास्त्रे लिखापयन् शुभ नन्दिनामा मुनिर्वारयिष्यति द्रव्यादिशुद्धेभावात् इति द्विविधं सिद्धांतं व्रजंतं शुभनंदिभट्टारकपार्श्वे श्रुत्वा ज्ञात्वा च बप्पदेवनामा मुनीन्द्रः प्राकृतभाषया अष्टसहस्रप्रमितां टीकां करिष्यति। कालांतरे एलाचार्यभट्टारकपार्श्वे सिद्धांतद्वयं वीरसेननामा मुनिः पठित्वाऽपराण्यपि अष्टादशाधिकाराणि प्राप्य पंचखंडे षट्खंडं संक्षिप्य संस्कृतप्राकृतभाषया सत्कर्म्मनामटीकां द्वासप्ततिसहस्रप्रमितां धवलनामांकितां लिखाप्य विंशतिसहस्रकर्म्मप्राभृतं विचार्य वीरसेनो मुनिः स्वर्गं यास्यति। तस्य शिष्यो जिनसेनो भविष्यति सोपि चत्वारिंशत्सहस्रैः कर्म्मप्राभृत समाप्तिं नेष्यति अमुना प्रकारेण षष्टिसहस्रप्रमिता जयधवलनामांकिता टीका भविष्यति।

इति श्रीपंचास्तिकायमध्यगते विबुधश्रीधरविरचिते श्रुतावतारप्रकरणं नाम तुर्यः परिच्छेदः ।

अथ शलाकानिक्षेपणनिष्काशनविवरणं ।



अर्हंतं तत्पुराण जिनमुनिचरणान् देवतां क्षेत्रपालं
छायासूनोर्निशायामभिपवनविधैः पूजयित्वा जलाद्यैः ।
जातां हेम्नः शलाकां कुशकुसुममयीं कन्यया दापयित्वा
तत्प्रातः पूजयित्वा पुनरथ शकुनं वीक्ष्यते तत्पुराणं ॥१॥

अत्युग्रशुभकार्य्यार्थं शनिवारो न याति चेत्
अन्यस्मिन्वासरे सौम्ये पुराणं प्रार्चयेत्सुधीः ॥२॥

दुर्व्वचः श्रवणे चैव दुर्न्निमित्तावलोकने
क्षुत्ते प्रदीपनिर्व्वाणे पुराण नार्चयेत्ततः ॥३॥

अष्टाब्दां वा दशाब्दामजनितरजसं कन्यकां वा नवोढा-
मभ्यंगस्नानभूषां मलयजवसनालंकृतां पूजयित्वा ।
मंत्रैर्वागदेवतायास्त्रिगुणितनवकं[1] मंत्रयित्वा शलाकां
तद्दोर्भ्यां दापयित्वा तदनु च दलयोः कार्य्यमालोच्य
मध्ये ॥ ४ ॥

कन्या न लभते यत्र न प्रौढा लभते यदा
शलाकां श्रावकं शुद्धः पुराणे प्रक्षिपेत्तदा ॥५॥

प्राक्पत्रे पूर्व्वपंक्तौ वा पद्ये पूर्व्वाक्षराणि च
सप्त हित्वा पठेच्छ्लोकमिति केषां मतं मतं ॥ ६ ॥

---

१ ॐ रों क्रों श्रीं ह्रीं क्लीं ब्लें ह्रौं ह्रौं श्रीसरस्वति मरालवाहने वीणापुस्तकमालापद्ममण्डितचतुर्भुजे मौक्तिकहारावलिराजितोरोजसरोजकुड्मलयुगले वद वद वाग्वादिनि सर्वजनसंशयापहारिणि श्रीमद्भारति देवि ! तुभ्य नमोस्तु, इति श्री सरस्वतीमंत्र ।

श्रीमत्पंडिताशाधरविरचिता

कल्याण-माला ।

पुरुदेवादिवीरान्तजिनेन्द्राणां ददातु नः ।
श्रीमद्गर्भादिकल्याणश्रेणी निश्रेयसः श्रियम् ॥ १ ॥
शुचौ कृष्णे द्वितीयायां वृषभो गर्भमाविशत् ।
वासुपूज्यस्तथा षष्ठ्यामष्टम्यां विमलः शिवम् ॥२॥
दशम्यां जन्मतपसी नमेः शुक्ले तु सन्मतेः ।
षष्ठ्यां गर्भो भवन्नेमेः सप्तम्यां मोक्षमाविशत् ॥३॥
सुव्रतः श्रावणे कृष्णे द्वितीयायां दिवच्युतः ।
कुन्थुर्दशम्यां शुक्ले तु द्वितीये सुमतिस्थितौ ॥४॥
जन्मनिष्क्रमणे षष्ठ्यां नेमेः पार्श्वः सुनिर्वृतः ।
सप्तम्यां पूर्णिमायां तु श्रेयान्निःश्रेयसं गतः ॥५॥
भाद्रे कृष्णस्य सप्तम्यां गर्भे शान्तिरवातरत् ।
गर्भावतरणं षष्ठ्यां सुपार्श्वस्य सितेऽभवत् ॥६॥
पुष्पदन्तस्य निर्वाण शुक्लाष्टम्यामजायत ।
श्रितः शुक्लचतुर्दश्यां वासुपूज्यः परं पदम् ॥७॥
आश्विनेऽभूद्द्वितीयायां कृष्णे गर्भो नमेः सिते ।
नेमे प्रतिपद्विज्ञानं सिद्धोऽष्टम्यां च शीतलः ॥८॥
अनन्तः कार्त्तिके कृष्णे गर्भेऽभूत्प्रतिपद्दिने ।
चतुर्थ्यां शंभवाधीशः केवलज्ञानमापिवान् ॥९॥

पद्मप्रभस्त्रयोदश्यां प्राप्तो जन्मव्रते शिवम् ।
दर्शे धीरो द्वितीयायां कैवल्यं सुविधिः स्थितः ॥१०॥
पष्ठ्यां गर्भोऽभवन्नेमेस्त्रयोदश्यां केवलोद्भवः ।
अरनाथस्य पक्षान्ते संभवेशस्य जन्म च ॥११॥
मार्गे दशम्यां कृष्णेऽगाद्वीरो दीक्षां जनिव्रते ।
सुविधेः पक्षान्ते शुक्ले दशम्यां त्वरदीक्षणम् ॥१२॥
एकादश्यां जनुर्दीक्षे मल्लेर्ज्ञानं नमेस्तथा ।
अरजन्म चतुर्दश्यां पक्षान्ते सम्भव व्रतम् ॥१३॥
पौषकृष्णे द्वितीयायां मल्लिः कैवल्यमासदत् ।
चन्द्रप्रभस्तथा पार्श्व एकादश्यां जनिव्रते ॥१४॥
शीतलस्तु चतुर्दश्यां कैवल्यमुदमीमिलत् ।
शान्तिनाथो दशम्यान्तु शुक्ले कैवल्यमापिवान् ॥१५॥
एकादश्यान्तु कैवल्यमजितश्चोऽभिनन्दनः ।
चतुर्दश्यां पूर्णिमायां धर्म्मश्च लभते स्म वत् ॥१६॥
माघ पद्मप्रभः कृष्णे पष्ठ्यां गर्भमवातरत् ।
शीतलस्य जनुर्दीक्षे द्वादश्यां वृषभस्य तु ॥१७॥
माघ्या मवचतुर्दश्यां दर्शे श्रेयांसकेवलम् ।
शुक्लपक्षे द्वितीयायां वासुपूज्यस्य केवलम् ॥१८॥
चतुर्थ्यां विमला जन्मदीक्षे पष्ठ्यां च केवलम् ।
नवम्यामजितो दीक्षां दशम्यां जन्म चाभवत् ॥१९॥
अभिनन्दननाथस्य द्वादश्यां जन्मनिष्क्रमौ ।
धर्म्मस्य जन्मतपसी त्रयोदश्यां बभूवतुः ॥२०॥
चतुर्थ्यां फाल्गुने कृष्णे मुक्तिं पद्मप्रभो गतः ।

षष्ठ्यां सुपार्श्वः कैवल्यं सप्तम्यां चाप निर्वृतिम् ॥२१॥
सप्तम्यामेव कैवल्यमोक्षौ चन्द्रप्रभोऽभजत्।
नवम्यां सुविधिर्गर्भमेकादश्यां तु केवलम् ॥२२॥
वृषो जन्मव्रते तद्वच्छ्रेयान्मुक्तिं तु सुव्रतः।
द्वादश्यां वासुपूज्यस्तु चतुर्दश्यां जनिव्रते ॥२३॥
अरः शुक्ले तृतीयायां गर्भं मल्लिस्तु निर्वृतिम्।
पंचम्यां प्रापदष्टम्यां गर्भं श्रीसंभवोऽपि च ॥२४॥
चैत्रे चतुर्थ्यां कृष्णोऽभूत्पार्श्वनाथस्य केवलम्।
पंचम्यां चन्द्रभो गर्भमष्टम्यां शीतलोऽश्रयत् ॥२५॥
नवम्यां जन्मतपसी वृषभस्य बभूवतुः।
कैवल्यमप्यमावास्यां मोक्षोऽनन्तस्य चाभवत् ॥२६॥
शुक्लप्रतिपदा गर्भे मल्लिः कुन्थुस्तृतीयया।
ज्ञाने जिनोऽभूत्पंचम्यां मोक्षे षष्ठ्यां च सम्भवः ॥२७॥
एकादश्यां जनिर्ज्ञानमोक्षान्सुमतिरुद्भवम्।
वीरः प्राप्तस्त्रयोदश्यां पद्माभोंत्येन्हि केवलम् ॥२८॥
पार्श्वः कृष्णे द्वितीयायां वैशाखे गर्भमाविशत्।
नवम्यां सुव्रतो ज्ञानं दशम्यां च जनिव्रते ॥२९॥
धर्मो गर्भं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां नमिः शिवम्।
शुक्ले प्रतिपदि प्राप कुन्थुर्जन्मतपः शिवम् ॥३०॥
प्राप्तोऽभिनन्दनः षष्ठ्यां शुक्लायां गर्भमोक्षणम्।
नवम्यां सुमतिर्वीरो दशम्यां ज्ञानमक्षयम् ॥३१॥
श्रेयान् ज्येष्ठे सिते षष्ठ्यां दशम्यां विमलोऽपि च।
गर्भं समाश्रितोऽनन्तो द्वादश्यां जन्मनिष्क्रमौ ॥३२॥

शान्ति श्रितचतुर्दश्यां जन्मदीक्षाशिवश्रियम ।
अमावास्या दिने गर्भमवतीर्णो जिनेश्वरः ॥२३॥
शुक्ले चतुर्थ्यां निर्वाणं प्राप्तो धर्मो जिनेश्वर ।
सुपार्श्वनाथो द्वादश्यां जनिप्रव्रजिते स्थितः ॥२४
इतीमां वृषभादीनां पुष्यत्कल्याणमालिकां ।
करोति कण्ठे सुधी यः स स्यादाशाधरेडितः ॥२५॥

इत्याशाधरविरचिता कल्याणमाला समाप्ता ।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।